VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.A.
तृतीय वर्ष
(डिग्री कोर्स)
सेमेस्टर-V

समाजशास्त्र

शास्त्रीय समाजशास्त्रीय विचार

SYLLABUS

UNIT-I

Emergence of Sociology, Intellectual Sources : Enlightenment, Philosophy of History, Political History, Social and Political Reform Movements. Revolution: French Revolution and Industrial Revolution.

UNIT-II

August Comte : Positivism, The Hierarchy of Sciences, Law of Three Stages. Herbert Spencer : Social Evolution and Social Darwinism.

UNIT-III

Emile Durkheim : Social Fact, Mechanical Solidarity and Organic Solidarity, Suicide.

UNIT-IV

Vilfredo Pareto : Action-Logical and Non-Logical Action, Residues and Derivatives.

UNIT-V

Karl Marx : Dialectical Historical Materialism, Class Struggle, Theory of Alienation.

UNIT-VI

Max Weber : Social Action, Power and Authority, Protestant Ethics and Spirit of Capitalism.

UNIT-VII

G.H. Mead : Symbolic Interaction, Concept of 'Self' and 'Me'.

UNIT-VIII

Talcott Parsons : Action and Behaviour; Social System, Pattern Variables.

R.K. Merton : Middle Range Theory, Manifest and Latent Function.

TOUCH n PASS

VIDYA UNIVERSITY PRESS

पंजीकृत कार्यालय
विद्या एम्पायर, बागपत रोड,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

लेखन एवं सम्पादन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH 'n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I : समाजशास्त्र का उद्भव ...3
UNIT-II : ऑगस्ट कॉम्टे ...28
UNIT-III : इकाईल दुर्खीम ...53
UNIT-IV : विल्फ्रेड परेटो ...74
UNIT-V : कार्ल मार्क्स ...91
UNIT-VI : मैक्स वेबर ...107
UNIT-VII : जी०एच० मीड ...127
UNIT-VIII : पारसन्स एवं मर्टन ...137

UNIT-I

समाजशास्त्र का उद्भव
Emergence of Sociology

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. समाजशास्त्र का उद्भव और विकास कैसे हुआ?
How did sociology emerge and develop?

उत्तर समाजशास्त्र का तीव्र गति से विकास अमेरिका में हुआ। अमेरिका का समाजशास्त्र आरम्भ से ही अत्यन्त समृद्ध रहा है। क्रान्तिकारी समाजशास्त्र तथा नए समाजशास्त्र का उद्भव भी अमेरिका में ही हुआ है। सर्वप्रथम एक विषय के रूप में समाजशास्त्र का अध्ययन येल विश्वविद्यालय अमेरिका में 1876 में प्रारम्भ हुआ।

प्र.2. समाजशास्त्र का उद्भव कब हुआ था?
When did sociology emerge?

उत्तर एक पृथक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र का उदय उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। यूरोप उस समय फ्रांसीसी तथा औद्योगिक क्रांतियों के कारण अनंत परिवर्तनों के दौर से गुज़र रहा था।

प्र.3. समाजशास्त्र के उद्भव और विकास का अध्ययन क्यों महत्त्वपूर्ण है?
Why is it important to study the evolution and development of Sociology?

उत्तर समाजशास्त्र के उद्गम और विकास ने सामाजिक समस्याओं को समझने तथा उनका समाधान खोजने में राजनीतिज्ञों, समाज-सुधारकों तथा नीति-निर्धारकों को सहायता प्रदान की है। यह सांस्कृतिक लाभ-सांस्कृतिक विकास, सामाजिक विकास में विशेष सहायक होता है।

प्र.4. समाजशास्त्र के जनक कौन थे?
Who was the father of Sociology?

उत्तर ऑगस्ट कॉम्टे एक फ्रांसीसी दार्शनिक थे जिन्हें समाजशास्त्र और प्रत्यक्षवाद के संस्थापक के रूप में जाना जाता है। कॉम्टे ने समाजशास्त्र विज्ञान को इसका नाम दिया और व्यवस्थित तरीके से नए विषय की स्थापना की।

प्र.5. समाजशास्त्र के उद्भव में योगदान देने वाले चार कारक कौन-से थे?
What were the four factors that contributed to the emergence of Sociology?

उत्तर समाजशास्त्र के उद्भव में योगदान देने वाले चार कारक इस प्रकार थे—औद्योगिक क्रांति, अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रांतियाँ, साम्राज्यवाद और प्राकृतिक पर्यावरण के बारे में सवालों के जवाब देने में वैज्ञानिक पद्धति को लागू करने में प्राकृतिक विज्ञान की सफलता।

प्र.6. समाजशास्त्र का क्या अर्थ है?
What is the meaning of Sociology?

उत्तर समाजशास्त्र मुख्य रूप से समाज, सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं, व्यक्तियों के व्यवहार एवं कार्यों, सामाजिक समूहों एवं सामाजिक अन्तर्क्रियाओं का अध्ययन करने वाला विषय है। यह एक आधुनिक विज्ञान है।

प्र.7. समाजशास्त्र का क्या महत्त्व है?
What is the importance of Sociology?

उत्तर समाजशास्त्र समाज में धार्मिक एकता स्थापित करने में भी सहायक सिद्ध हो सकता है। समाजशास्त्र विभिन्न धर्मों की वास्तविकताओं तथा सामान्य तत्त्वों के सम्बन्ध में हमें यथार्थ ज्ञान प्राप्त करता है तथा सामाजिक जीवन एवं धर्म के पारस्परिक सम्बन्ध तथा महत्त्व को भी बनाता है, जिससे धार्मिक एकता बढ़ाने में मदद मिलती है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.8. समाजशास्त्र का मुख्य कार्य क्या है?
What is the main work of Sociology?

उत्तर समाजशास्त्र का मुख्य कार्य समाज और व्यक्ति की परस्पर क्रियाओं की खोज करना है। हमने यह भी देखा कि व्यक्ति समाज में स्वच्छंद रूप से नहीं रहते। वे सामूहिक निकायों; जैसे—परिवार, जनजाति, जाति, वर्ग, कुल, राष्ट्र आदि का हिस्सा होते हैं।

प्र.9. समाज का क्या अर्थ है?
What is the meaning of Society?

उत्तर समाज एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बने एक वृहद समूह को कहते हैं जिसमें सभी व्यक्ति मानवीय क्रिया-कलाप करते हैं। मानवीय क्रिया-कलाप में आचरण, सामाजिक सुरक्षा और निर्वाह आदि की क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। समाज लोगों का ऐसा समूह होता है जो अपने अंदर के लोगों के मुकाबले अन्य समूहों से काफी कम मेल-जोल रखता है।

प्र.10. समाज की विशेषता क्या है?
What is the characteristic of Society?

उत्तर समाज व्यक्तियों का समूह नही हैं, अपितु यह मानवीय अन्त:सम्बन्धों की एक जटिल व्यवस्था है। मानवीय अन्त: सम्बन्धों को न तो देखा जा सकता है और न ही उन्हें स्पर्श किया जा सकता है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. समाजशास्त्र के उद्‌भव का परिचय दीजिए।
Give the introduction of emergence of Sociology.

उत्तर

समाजशास्त्र के उद्‌भव का परिचय
(Introduction of Emergence of Sociology)

समाजशास्त्र का इतिहास एक भिन्न विषय के रूप में 150 वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है। इसके अन्तर्गत समाज का अध्ययन वैज्ञानिक रूप में किया जाता है। अतीत में धर्म का प्रभाव समाज, सामाजिक सम्बन्धों, विवाह, परिवार, सामाजिक संस्थाओं आदि पर था। ईसा पूर्व सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों भारत, चीन, ग्रीस, रोम आदि जैसे देशों में चिन्तन दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रारम्भ हुआ। इस दौरान प्रसिद्ध मनु दार्शनिक सामाजिक कौटिल्य, कन्फ्युशियस, प्लेटो एवं अरस्तू हुए। हालाँकि प्रारम्भ में समाज एवं सामाजिक जीवन को केवल धर्म एवं दर्शन के आधार पर ही समझा जाता था। जिसमें निरीक्षण, परीक्षण को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। इसके पश्चात् समाज और सामाजिक जीवन के अनेक पहलू इतिहास के माध्यम से समझे गए। इतिहास के सहयोग से समाजशास्त्र में बीते हुए युग की जानकारी प्राप्त की गयी। इतिहास एवं दर्शन की अध्ययन विधियों का मिला-जुला रूप 18वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों एवं 19वीं शताब्दी की शुरूआत में देखने को मिलता है। जर्मन दार्शनिक हीगल का इस प्रकार की विश्लेषण पद्धति के विकास में प्रमुख योगदान था। समाजशास्त्र के उद्‌भव एवं विकास में यह प्रमुख योगदान था। यूरोप में तत्कालीन समय में राजनीतिक अर्थतन्त्र नामक विषय को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पक्षों के विश्लेषण हेतु अधिक महत्त्व दिया गया। समाजशास्त्र के विकास में राजनीतिक अर्थतन्त्र से सम्बन्धित अध्ययन अधिक सहायक रहा है।

समाजशास्त्र के उद्‌भव एवं विकास में निम्नलिखित तीन विश्लेषण पद्धतियाँ स्पष्ट होती हैं—

1. प्रथम विश्लेषण पद्धति में समाजशास्त्र के उद्‌भव एवं विकास को प्राचीन काल के सामाजिक चिन्तन के साथ जोड़ने का प्रयास किया गया है। वार्स एवं टिमैरोफ ने चिन्तन के सतत प्रवाह के एक भाग के रूप में समाजशास्त्र का आरम्भ माना है। अत: विश्लेषण की यह पद्धति मानव चिन्तन की निरन्तरता पर बल देती है। इसके अनुसार समाजशास्त्र का प्राचीन युग में उदय ग्रीस, रोम, भारत और चीन में हुआ। समाजशास्त्र की उत्पत्ति विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में प्रयुक्त अध्ययन विधियों के सम्मिलित प्रभावों का परिणाम थी। यह विभिन्न विषय इतिहास, दर्शन, राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र तथा प्राकृतिक विज्ञान थे जो सामाजिक जीवन का विश्लेषण करने में सहायक थे।
2. दूसरी विश्लेषण पद्धति को मर्टन ने प्रतिपादित किया। यह पद्धति सिद्धान्तों एवं तथ्यों के विवेचन पर बल देती है। मर्टन के अनुसार समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों पर विचार हेतु सिद्धान्तों एवं तथ्यों के विश्लेषण पर बल देना चाहिए न कि उसके ऐतिहासिक अध्ययन पर।
3. तीसरी विश्लेषण पद्धति के विद्वानों के अनुसार यूरोप के उस समय के सामाजिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में समाजशास्त्र के उद्‌भव एवं विकास पर सोच-विचार किया जाना चाहिए। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशक में सामाजिक जीवन में

TOUCH 'n PASS

औद्योगीकरण एवं पूँजीवाद के परिणामस्वरूप परिवर्तन के सन्दर्भ में समाजशास्त्र के उद्‌भव एवं विकास को समझा जाना चाहिए।

प्र.2. विभिन्न देशों में समाजशास्त्र के विकास पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
Write a short note on development of sociology in different countries.

उत्तर

विभिन्न देशों में समाजशास्त्र का विकास
(Development of Sociology in Different Countries)

ऑगस्ट कॉम्टे द्वारा 1838 ई० में समाजशास्त्र की स्थापना के पश्चात् विश्व के विभिन्न देशों में विशेषकर फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में अनेक विद्वानों द्वारा इस नए विषय के अन्तर्गत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किए गए। फ्रांस में 1889 में समाजशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन कार्य प्रारंभ हुआ। यहाँ दुर्खीम के अतिरिक्त रूसो, टार्डे मॉन्टैन और मॉस आदि द्वारा समाजशास्त्र के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया गया। जर्मनी में मैक्स वेबर के अतिरिक्त जॉर्ज सिमेल, टॉनीज, वीरकान्त, रैजल, वॉनवीज आदि विद्वानों ने समाजशास्त्र के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। समाजशास्त्र का सर्वाधिक विकास अमेरिका में बार्नस, टालकॉट, पारसन्स, कोजर, रॉस, मैकाइवर, सोरोकिन, ऑगबर्न, निमकॉफ, गिडिंग्स, मर्टन पार्क एवं बर्गेस आदि विद्वानों द्वारा समाजशास्त्र के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किए गए हैं। अमेरिका में समाजशास्त्र का एक विषय के रूप में अध्ययन येल विश्वविद्यालय (अमेरिका) में सन् 1876 में शुरू हुआ। हालाँकि इंग्लैण्ड में इसके विकास की गति धीमी रही, परन्तु यहाँ जॉन स्टुअर्ट मिल तथा हरबर्ट स्पेंसर के अतिरिक्त वेस्टरमार्क, कार्ल मैनहीम, हॉबहाउस, रॉबर्टसन, जिन्सबर्ग, चार्ल्स बूथ, हॉल्सन आदि विद्वानों ने समाजशास्त्र के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यहाँ समाजशास्त्र का अध्यापन-कार्य वर्ष 1907 में प्रारंभ हुआ। इंग्लैण्ड में सामाजिक सम्बन्धों तथा सामाजिक प्रक्रियाओं पर अध्ययन किया गया।
इसके पश्चात, 1924 में मिस्र, 1947 में स्वीडन तथा श्रीलंका में समाजशास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। वर्तमान में समाजशास्त्र का अध्ययन साधारणत: लगभग सभी विकसित और विकासशील देशों में प्रारंभ हो चुका है, यद्यपि कुछ देश अपवाद रूप में अवश्य हैं।

प्र.3. फ्रांस की क्रांति के आर्थिक कारणों का उल्लेख कीजिए।
Explain the economic causes of French Revolution.

उत्तर

फ्रांस की क्रांति के आर्थिक कारण
(Economic Causes of French Revolution)

फ्रांस की क्रान्ति में निम्नलिखित आर्थिक कारण भी महत्त्वपूर्ण रहे हैं—

1. **राजदरबार का अपव्यय** (Court Extravagance)—उस समय फ्रांस में लुई सोलहवें का अधिकार था। राजदरबार पर राष्ट्रीय आय का एक बड़ा भाग व्यय किया जाता था। देश की राजधानी पेरिस में बनाये महल में लुई सोलहवाँ रहा करता था जो देश की राजधानी से लगभग 12 मील दूर स्थित थी। जिसके निर्माण में लगभग 10 करोड़ डॉलर व्यय किए गए थे।
2. **युद्धों पर अपार व्यय के कारण** (Because of the Huge Expenditure on Wars)—युद्धों में फँसकर लुई चौदहवें ने फ्रांस की स्थिति को और अधिक दयनीय बना दिया। वह स्पेन के सप्तवर्षीय युद्धों एवं उत्तराधिकार युद्धों में शामिल हुआ था। उसने अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम में भी भाग लिया एवं युद्ध में अत्यधिक व्यय के कारण फ्रांस पर ऋण का भार और अधिक हो गया। अत: अनेक युद्ध में भाग लेने के कारण ही फ्रांस के राजकोष का समस्त धन लगभग खत्म हो गया था।
3. **कुलीन वर्ग द्वारा करों की अस्वीकृति** (Rejection of Taxes by the Elite Class)—लुई सोलहवें ने फ्रांस की आर्थिक स्थिति को सुधारने हेतु कुलीन वर्ग के सदस्यों की एक सभा बुलाई। उसकी मंशा थी कि विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के सदस्य कर लगाने के प्रस्ताव पर अपनी मंजूरी दे देंगे। किन्तु कुलीन वर्ग के लोगों द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया कि राजा को स्टेट्स जनरल के माध्यम से कर लगाने का अधिकार है। परन्तु बीते 175 वर्षों में ऐसा कोई अधिवेशन नहीं हुआ था। इस समस्या के समाधान हेतु राजा को स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाना पड़ा। इसने क्रान्ति का विस्फोट करने के लिए एक मार्ग तैयार कर दिया था।
4. **अमेरिकी क्रान्ति तथा ब्रिटिश रक्तहीन राज्यक्रान्ति का प्रभाव** (Influence of American Revolution and Bloodless British State Revolution)—अमेरिकी उपनिवेशों ने इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध लड़कर सफलतापूर्वक

TOUCH 'n' PASS

युद्ध जीत कर आजादी प्राप्त कर ली थी। इस युद्ध में फ्रांस ने अमेरिका की सहायता की थी, किन्तु यह सहयोग फ्रांस के शासकों के लिए अत्यधिक हितकर सिद्ध न हो सका, क्योंकि फ्रांसीसी सैनिक सदस्य अमेरिका में प्रचलित शासन पद्धति एवं स्वतंत्रता से अधिक प्रभावित हुए। इसलिए वे फ्रांस के शासक से अमेरिका जैसी शासन व्यवस्था की माँग करने लगे। अत: यह सहयोग फ्रांसीसी राज्यकोष के लिए घातक सिद्ध हुआ इसके परिणामस्वरूप फ्रांस की अर्थव्यवस्था पूरी तरह अस्त-व्यस्त हो गई इससे सामान्य जनता में असंतोष की भावना उत्पन्न हो गयी। प्रो० महाजन का तथ्य है कि 'अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने से फ्रांस का अर्थक्षेत्र पूरी तरह से भंग हो गया। इस तथ्य से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता कि अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में फ्रांस का भाग लेना ही फ्रांस की आर्थिक स्थिति को विकृति प्रदान करने का कारण था और इसी से क्रान्ति का विस्फोट हुआ।'

5. **राजा और रानी के चरित्र का प्रभाव** (Influence of the Character of King and Queen)—लुई सोलहवाँ अस्थिर स्वभाव एवं एक कमजोर मनोवृत्ति का व्यक्ति था। उससे पूर्व जो शासक शासन कर रहे थे उन्होंने सामान्य जनता में जो अपनी नीतियों के कारण जन-असन्तोष फैला रखा था, लुई सोलहवाँ इस असन्तोष को हटाने में सक्षम नहीं था। वह अपना बहुमूल्य समय मनोरंजन, शिकार खेलने तथा विलासितापूर्ण गतिविधियों को करने में व्यतीत करता था। उसमें मुख्य रूप से विवेक, दृढ इच्छा की कमी थी। दरबारियों व कुलीनों के दबाव में आकर उसने कर तथा तुर्गो जैसे मंत्रियों को उनके पद से हटा दिया था। हालाँकि लुई सोलहवें की रानी मेरी अन्तायनेत (Marie Antoinette) कुशाग्र बुद्धि की थी, परन्तु उसमें चंचलता एवं विलासी प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान थी। अत: उसका गहरा प्रभाव लुई सोलहवें पर स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होता था। रानी कुशाग्र बुद्धि होने के बावजूद अपने पति को उचित सलाह देने की जगह गलत नीतियों पर चलने हेतु बाध्य करती थी। रानी सदैव सुधार योजनाओं एवं कटौती प्रस्तावों का खुलकर विरोध करती थी।

प्र.4. समाजशास्त्र में औद्योगिक क्रान्ति का अर्थ एवं परिभाषाएँ लिखिए।
Write the meaning and definitions of industrial revolution in Sociology.

उत्तर

औद्योगिक क्रान्ति का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Industrial Revolution)

ऐसा माना जाता है कि औद्योगिक क्रान्ति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'अर्नोल्ड टॉयनबी' ने 1884 ई. में किया था। जबकि वास्तविकता यह है कि 'औद्योगिक क्रान्ति' शब्द का प्रयोग सन् 1837 ई० में ही फ्रांसीसी लेखक 'ब्लांकी' द्वारा पूर्व में ही किया जा चुका था। इसके बाद कार्ल मार्क्स, एंगेल्स एवं जेवन्स द्वारा भी औद्योगिक क्रान्ति शब्द का प्रयोग किया गया। प्राय: औद्योगिक क्रान्ति शब्द का प्रयोग भाग तथा उत्पादन शक्ति के प्रयोग हेतु किया जाता है। मूलरूप से औद्योगिक क्रान्ति शब्द का अर्थ उत्पादन विधियों में अनेक श्रम-बचत उपायों तथा मशीनों का उत्पादन विधियों में प्रयोग करने से है।

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज (Encyclopaedia of Social Sciences) के खण्ड आठ में औद्योगिक क्रान्ति को परिभाषित करते हुए स्पष्ट किया गया कि 'वह आर्थिक एवं शिल्प वैज्ञानिक विकास जो अठारहवीं शताब्दी में अधिक सशक्त तथा तीव्र हो गया था, जिसके फलस्वरूप आधुनिक उद्योगवाद का जन्म हुआ जिसे औद्योगिक क्रान्ति कहते हैं।' अन्य शब्दों में, औद्योगिक क्रान्ति का अर्थ उद्योग क्षेत्र में हुई अभूतपूर्व उन्नति से है। वैज्ञानिक यंत्रों के विकास एवं खोजों से कारखानों में मशीनों द्वारा उत्पन्न होने एवं कुटीर तथा हस्त उद्योग का स्थान कारखानों ने ले लिया। ग्रामों का नगरीकरण भी औद्योगिक क्रान्ति का ही एक परिणाम है।

हैजन के अनुसार, "औद्योगिक क्रान्ति का अर्थ घरेलू उत्पादन प्रणाली को कारखानों की उत्पादन प्रणाली में बदल देना था।"

प्रोफेसर स्ट्रांग (P. Strong) के अनुसार, "वास्तव में औद्योगिक क्रान्ति से हमारा तात्पर्य केवल आर्थिक क्रियाओं व संस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों से ही नहीं है, अपितु इन क्रियाओं व संस्थाओं में आगे चलकर इंग्लैण्ड तथा अन्य देशों में जो उन्नति हुई और उनके जो महान सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिणाम सामने आये, उन सबको भी शामिल करना चाहिए, इस व्यापक अर्थ में 'औद्योगिक क्रान्ति' अब भी जारी है। 'आद्योगिक क्रान्ति' कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, इसका धीरे-धीरे विकास हुआ एवं यह विकास अब भी जारी है।"

एडवर्ड के विचारानुसार, "औद्योगिक प्रणाली तथा श्रमिकों के स्तर में होने वाले परिवर्तनों को ही औद्योगिक क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है।"

रॉबर्टसन (Robertson) के अनुसार, "औद्योगिक क्रान्ति के अन्तर्गत अन्त: सम्बन्धित परन्तु पृथक् किये जा सकने वाले कारकों व दशाओं का एक सम्मिलित रूप आ जाता है; जैसे—औद्योगिक क्षेत्र में नये अभिकरण और परिवर्तन महान अन्वेषण व अन्वेषक,

यातायात और संचार में परिवर्तन, घेराबन्दी आन्दोलन का प्रारम्भ, अर्थशास्त्र, मुद्रा एवं वित्त सम्बन्धी नये-नये सिद्धान्तों का विकास, मजदूरी एवं मूल्यों में हेर-फेर, पूँजीवाद एवं औद्योगिक श्रमिक-वर्ग का जन्म, श्रमिक संगठनों का प्रादुर्भाव, निर्धनता-उन्मूलन के विधान और केन्द्रीय तथा स्थानीय शासन के नये सिद्धान्तों का प्रचलन आदि महत्त्वपूर्ण विकास सम्मिलित किये जा सकते हैं।''

औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व इंग्लैण्ड भी एक कृषि प्रधान देश था, परन्तु 'औद्योगिक क्रान्ति' के पश्चात् इंग्लैण्ड में कारखानों की स्थापना होने के बाद मजदूरों को कारखानों में रोजगार मिलने लगा जिससे मजदूरों द्वारा नये-नये नगर बसाए जाने लगे। अधिक संख्या में कारखाने एवं मजदूरों की अधिक संख्या के कारण उपयोग हेतु वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा। अधिकाधिक वस्तुओं के उत्पादन के कारण उत्पादित वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने हेतु यातायात के तेज एवं नवीन गति वाले साधनों का विकास हुआ। इस प्रकार समाज पर औद्योगिक क्रान्ति का व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा।

प्र.5. औद्योगिक क्रान्ति के कारणों का उल्लेख कीजिए।
Explain the causes of industrial revolution.

उत्तर

औद्योगिक क्रान्ति के कारण
(Causes of Industrial Revolution)

औद्योगिक क्रान्ति के होने के निम्नलिखित कारण थे, जिन्हें प्रोफेसर पाल तथा प्रोफेसर महाजन एवं अन्य विद्वानों द्वारा निम्नलिखित तरीकों से समझाने का प्रयास किया गया है—

1. अन्य यूरोपीय देशों के विपरीत, इंग्लैण्ड में लोगों को विचार एवं भाषण की स्वतंत्रता प्राप्त थी, इसलिए वहाँ नित-नवीन परीक्षण किए जाने सम्भव हो सके। यह वही समय था जब इंग्लैण्ड में प्रायोगिक विज्ञान एवं अध्ययन काफी विकसित हो चुका था। इस प्रकार अनुसंधानकर्त्ताओं को नए आविष्कारों के उद्भव में प्रोत्साहन तथा सहायता मिली।
2. आवश्यक वस्तुओं के अधिक उत्पादन एवं जनसंख्या में कमी होने के कारण इंग्लैण्ड में मशीनों द्वारा उत्पादन को अधिक बढ़ावा मिला। इससे वस्तुएँ अपेक्षाकृत अधिक सस्ती भी पड़ती थी और इनकी माँग बढ़ती गई।
3. किसी वस्तु को एक निश्चित ढंग से तैयार करने पर सरकार द्वारा इस पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जाता था। इसके परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड में अलग-अलग क्षेत्रों में उत्पादन करने के नवीन तरीकों के विषय में लोगों को सोचने की आवश्यकता पड़ी। इस प्रकार नए-नए परीक्षण भी हुए एवं देश में भारी संख्या में नवीन यन्त्रों का आविष्कार किया गया।
4. औद्योगिक आविष्कारों का आरम्भ सर्वप्रथम वस्त्र उद्योग में सम्भव हुआ, चूँकि उस समय इंग्लैण्ड, वस्त्र उद्योग में अग्रणी था। कपड़े की अधिक खपत, कपास की कमी का अनुभव, हस्तशिल्प द्वारा बहुत कम उत्पादन आदि के कारण ब्रिटिश शोधकर्त्ताओं का ध्यान सबसे पहले कपड़ा उत्पादन एवं विकास की ओर केन्द्रित हुआ एवं इस क्षेत्र में नवीन आविष्कार एवं उपकरण विकसित हुए।
5. इंग्लैण्ड में लोहे एवं कोयले की खदानों के पास-पास होने से पक्का लोहा बनाने एवं लोहे से मशीनें बनाने में अधिक सुविधा होती थी। इस कारण इंग्लैण्ड में अन्य यूरोपीयन देशों की अपेक्षा मशीनों का निर्माण पहले प्रारम्भ हुआ। जिससे मशीनों में बड़े-बड़े कारखाने चलने लगे। इसके साथ ही देश में पर्याप्त धन भी उपलब्ध था एवं राजनीतिक सुरक्षा भी। ये समस्त स्थितियाँ देश के उद्योग-धन्धों को विकसित करने में सहायक सिद्ध हुई।

प्र.6. औद्योगिक क्रान्ति के प्रमुख प्रभावों का उल्लेख कीजिए।
Explain the major effects of industrial revolution.

उत्तर

औद्योगिक क्रान्ति के प्रमुख प्रभाव
(Major Effects of the Industrial Revolution)

औद्योगिक क्रान्ति ने मानव समाज को अत्यधिक प्रभावित किया। यह वही समय था जब मानव समाज के इतिहास में दो प्रमुख प्रसिद्ध क्रान्तियाँ हुईं जिसने मानव इतिहास को बदलकर रख दिया। प्रथम क्रान्ति तब हुई जब उत्तर पाषाण युग में मानव ने शिकार करना छोड़कर पशुपालन एवं कृषि करना प्रारम्भ किया। द्वितीय क्रान्ति वह है जब आधुनिक युग में कृषि व्यवसाय को प्रधानता दी गई। इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति से उत्पादन कार्यप्रणाली अधिक प्रभावित हुई।

इस पर प्रोफेसर रैम्से म्योर ने उचित ही कहा है कि 'औद्योगिक क्रान्ति एक बड़ी भारी परन्तु शान्तिपूर्वक बिना किसी हल्ले-गुल्ले के हुई क्रान्ति थी। इसने न केवल अंग्रेजी समाज में अपितु सम्पूर्ण विश्व में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ला दिए। देश में पूँजीपतियों का एक नया वर्ग बन गया, बड़े-बड़े कारखानों का रिवाज चल पड़ा, स्त्रियों और बच्चों के लिए भी रोजगार की सुविधाएँ उपलब्ध

TOUCH 'n PASS

हो गईं और लोगों में नई राजनीतिक चेतना जाग्रत हुई।' कार्य के क्षेत्र में मानवों का स्थान मशीनों ने ले लिया। उत्पादन एवं पैकेजिंग में परिवर्तन हुए। धन सम्पदा में भारी वृद्धि हुई। जिसके परिणामस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भी वृद्धि हुई।

डॉ० (श्रीमती) एल०सी०ए० नोल्स के मतानुसार, "औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप छः महान परिवर्तन अथवा विकास हुए जो परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर थे।" जिसका विवरण निम्न प्रकार है—

1. **लोहा निर्माण में क्रान्ति** (Revolution in Iron Making)—क्रान्ति के बाद मशीनों के निर्माण व अन्य निर्माणीय कार्यों हेतु लोहे की माँग में बढ़ोत्तरी हुई। यह वही युग था जिसमें लोहे के निर्माण में आश्चर्यजनक सुधार हुए।
2. **इंजीनियरिंग का विकास** (Development of Engineering)—औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप इंजीनियरिंग का विकास औद्योगिक व्यवस्था में मशीनीकरण को बढ़ाने एवं इंजीनियरिंग ज्ञान तथा इंजीनियरों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई।
3. **वस्त्र उद्योग में वाष्पशक्ति का प्रयोग** (Use of Steam Power in Textile Industry)—इस युग के अन्तर्गत वस्त्र उद्योग में वाष्पशक्ति चालित यन्त्रों का उपयोग प्रारम्भ हो गया था। सर्वप्रथम वाष्पशक्ति द्वारा चलने वाले यन्त्रों का प्रयोग सूत कातने से किया गया था। तत्पश्चात् बुनाई करने हेतु इसका प्रयोग किया जाने लगा। सूती वस्त्र उद्योग के पश्चात् रेशमी तथा ऊनी वस्त्र उद्योगों में भी इस शक्ति का प्रयोग करना प्रारम्भ हो गया था।
4. **रासायनिक उद्योगों का विकास** (Development of Chemical Industries)—कपड़ा उद्योग के बढ़ते उत्पादन के साथ तालमेल बिठाने हेतु रंगाई एवं छपाई के कार्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। जिससे रासायनिक उद्योगों का उदय तथा विकास हुआ।
5. **कोयला उद्योग का विकास** (Development of Coal Industry)—सभी विकास तथा परिवर्तन कोयला उद्योग पर निर्भर थे जो विभिन्न उद्योगों हेतु तत्कालीन प्रमुख संचालक शक्ति का साधन था। परिणामस्वरूप कोयला परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल बनकर विकसित हुआ। यन्त्रीकरण या मशीनीकरण का प्रयोग धीरे-धीरे कोयला खनन में किया जाने लगा था जिससे कम लागत व कम समय व्यर्थ किए बिना कोयला निकाला जा सके।
6. **यातायात के साधनों में परिवर्तन** (Change in the Means of Transport)—यातायात के साधनों में भी वाष्पीकरण तथा यन्त्रीकरण का प्रयोग किया जाने लगा था जिससे नवीन साधनों का विकास हुआ। औद्योगिक क्रान्ति ने जीवन के समस्त क्षेत्रों; जैसे—आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों को अत्यधिक प्रभावित किया।

प्र.7. औद्योगिक क्रान्ति का राजनीतिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा? उल्लेख कीजिए।
What impact did the industrial revolution have on political life? Explain.

उत्तर

औद्योगिक क्रान्ति का राजनीतिक जीवन पर प्रभाव
(Impact of Industrial Revolution on Political Life)

औद्योगिक क्रान्ति का राजनीतिक जीवन पर जो प्रभाव पड़े वे निम्न प्रकार हैं—

1. **वैयक्तिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का विकास** (Development of the Principle of Individual Liberty)—औद्योगिक क्रान्ति का एक महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय प्रभाव व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का विकास था। **मिल** तथा **बेंथम** (Mill and Bentham) जैसे अंग्रेजी लेखकों ने इस आवश्यकता पर विशेष बल दिया कि मनुष्य के जीवन का उद्धार उसके स्वयं के ऊपर छोड़ दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार यह भी कहा गया कि व्यवसाय का जीवन प्रतिस्पर्धा को माना गया है। व्यापार को आगे बढ़ाने का एकमात्र उपाय मुक्त व्यापार को अपनाना है।
2. **जनतन्त्र का विकास** (Development of Democracy)—उन्नीसवीं शताब्दी में मात्र इंग्लैण्ड में 40 से अधिक कारखानों में अधिनियम बनाए गए थे जिसमें काम के घंटे न्यूनतम मजदूरी एवं अन्य चीजों का प्रावधान था। लगभग 1767 में इंग्लैण्ड सरकार को शहरी मजदूरों को मतदान करने का अधिकार प्रदान करना पड़ा। इसके बाद लगभग 1884 ई० में ग्रामीण मजदूरों को भी यह अधिकार प्राप्त हुआ। अतः राजनीतिक शक्ति जमींदारों के हाथों से मुक्त हो गई एवं औद्योगिक क्रान्ति से उभरे वर्गों के प्रभाव के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड में लोकतन्त्र का विकास संभव हुआ।
3. **राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास** (Development of Nationalism and Internationalism)—राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता इन दोनों का विकास औद्योगिक क्रान्ति के कारण ही संभव हुआ है। इस क्रान्ति के पश्चात् हुए समस्त आविष्कारों को सम्पूर्ण विश्व ने स्वीकार किया और इसके आधार पर सम्पूर्ण विश्व न केवल एक हुआ, बल्कि एक-दूसरे पर निर्भर भी हो गया। औद्योगिक क्रान्ति के अभाव में यह असम्भव था। चूँकि इसी क्रान्ति के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर व्यापार, क्रय-विक्रय, यातायात आदि का विकास हुआ।

TOUCH 'n' PASS

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. समाजशास्त्र के उद्भव हेतु उत्तरदायी कारकों का वर्णन कीजिए।

Describe the factors responsible for the emergence of Sociology.

उत्तर

समाजशास्त्र के उद्भव हेतु उत्तरदायी कारक
(Factors Responsible for the Emergence of Sociology)

समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास में 18वीं शताब्दी के यूरोप की ऐतिहासिक एवं तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ व बौद्धिक परिस्थितियाँ विशेष रूप से सहायक रही हैं। इन कारकों को निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं—

1. ऐतिहासिक कारक (Historical Factor)
2. बौद्धिक कारक (Intellectual Factor)
3. सामाजिक कारक (Social Factor)

ऐतिहासिक कारक (Historical Factor)

इसके अन्तर्गत दो मुख्य क्रान्तियाँ– वाणिज्यिक क्रान्ति एवं वैज्ञानिक क्रान्ति सहायक रही हैं, जिन्हें निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं—

1. **वाणिज्यिक क्रान्ति** (Commercial Revolution)—इस क्रान्ति का सम्बन्ध सन् 1450 से लगभग सन् 1800 के मध्य हुई घटनाओं से है। मध्यकाल की यूरोपीय अर्थव्यवस्था में विकास की सम्भावनाएँ बहुत कम थी। इन घटनाओं ने यूरोप की स्थिर अर्थव्यवस्था को गतिशीलता प्रदान की। वाणिज्यिक क्रान्ति का तात्पर्य 15वीं शताब्दी के पश्चात् हुए व्यापार एवं वाणिज्य के विस्तार से है। इस विस्तार को ही क्रान्ति कहा गया है।
   क्रान्ति में यूरोप के लोगों द्वारा मसालों, सिल्क एवं अन्य वस्तुओं के नवीन क्षेत्रों की खोज की गयी। इसके अतिरिक्त नवीन राज्यों ने समुद्री यात्रा के माध्यम से व्यापार के नए तरीके खोजे। इससे यूरोपीय लोगों को बड़े व्यापार क्षेत्र एवं आय हेतु नए स्रोतों की प्राप्ति हुई। ये उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु सहायक सिद्ध हुई।
2. **वैज्ञानिक क्रान्ति** (Scientific Revolution)—पश्चिमी देशों में पुनर्जागरण का प्रारम्भ यूरोप के इटली में हुआ। पुनर्जागरण के ही दौरान यूरोप में हुई 'वैज्ञानिक क्रान्ति' ने मनुष्य के भौतिक जीवन में परिवर्तन के साथ प्रकृति और समाज के प्रति मानवीय विचारों में भी परिवर्तन ला दिया। इसकी शुरूआत कॉपरनिकस से हुई जिन्होंने यह कहकर 'ब्रह्माण्ड के केन्द्र में सूर्य है न कि पृथ्वी' रूढ़िवादी एवं धार्मिक विचारों को चुनौती दी। अर्थात् सूर्य स्थिर है और पृथ्वी उसके चारों ओर घूमती है। कॉपरनिकस के पूर्व यह आम धारणा थी कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य तथा नक्षत्र आदि इसके चारों ओर घूमते हैं। इस क्रान्ति के पश्चात् मनुष्य को ब्रह्माण्ड का केन्द्र नहीं बल्कि उसका अंश मात्र समझा जाने लगा।

उपर्युक्त दोनों क्रान्तियाँ पुनर्जागरण से सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त न्यूटन के गति का नियम एवं सार्वभौमिक गुरूत्वाकर्षण के नियम ने भी लोगों को नए सिरे से सोचने हेतु बाध्य किया। यूरोप में इन परिवर्तित मनोवृत्तियों के काल को पुनर्जागरण कहा गया। समाजशास्त्र इन्हीं उद्भवों का परिणाम है।

बौद्धिक कारक (Intellectual Factor)

यूरोप में 18वीं एवं 19वीं शताब्दी के दौरान हुए परिवर्तनों के परिणामस्वरूप समाजशास्त्र का उदय हुआ। 19वीं शताब्दी में हीगेल एवं सेट साइमन का लेखन यहाँ एक बौद्धिक आन्दोलन का रूप बन गया। हीगेल के अनुसार, अस्तित्व का निर्माण चेतना से होता है। यूरोप की जनता को इसके माध्यम से वह यह संदेश देना चाहते थे कि व्यक्ति यदि स्वयं की सोच को वास्तविकता में दृढ़तापूर्वक बदलने की कोशिश करे तो वह अपनी निर्धनता की स्थिति से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। वह मुक्ति या आजादी ईश्वरीय सत्ता से नहीं प्राप्त कर सकता है। हीगेल की पुस्तक 'फिलासॉफी ऑफ राइट' में राज्य एवं नागरिक समाज के सम्बन्धों को स्पष्ट किया गया है। उनके अनुसार कर्त्तव्य एवं अधिकार दोनों राज्य में एक साथ एक ही सम्बन्ध में बंधे रहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति यदि अपने कर्त्तव्यों का पालन राज्य के प्रति कर रहा है तो उन कर्त्तव्यों से जुड़े उनके अधिकार भी होने चाहिए। सेण्ट साइमन के अनुसार, हालाँकि यूरोप में विज्ञान मौजूद है, परन्तु व्यक्तियों को समझने हेतु कोई विज्ञान उपलब्ध नहीं है। इसलिए समाज का वैज्ञानिक अध्ययन होना चाहिए।

यूरोपीय सामाजिक व्यवस्था से यह बौद्धिक आन्दोलन भिन्न नहीं था, क्योंकि समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। इसका कारण हो रहे तीव्र सामाजिक परिवर्तन एवं समुद्री मार्ग से बढ़ते व्यापार के द्वारा दूसरे देशों से प्राप्त संस्कृतियों में भिन्नता थी। इस दौरान लोग यह मानने लगे कि वह ज्ञान जो सत्यापनीय नहीं है उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। यह परिवर्तित विचार का समय

TOUCH 'n PASS

प्रबोधन युग (Age of Enlightenment) कहलाया। जिसका परिणाम औद्योगिक एवं फ्रांसीसी क्रांति रही है। प्रबोधनकालीन दार्शनिक मांटेस्क्यू एवं रुसो के विचारों से ही समाजशास्त्र की शुरूआत हो जाती है। उनके अनुसार मनुष्य ब्रह्माण्ड को स्वयं नियन्त्रित कर सकता है। इस प्रकार उसे नए सिरे से विचार करना चाहिए और परम्परा व अंधविश्वास को त्याग देना चाहिए। इस प्रकार विज्ञान के बढ़ते प्रभाव से लोगों में पुरानी परम्पराओं एवं संस्थाओं से स्वयं को अलग करने की प्रवृत्ति बढती जा रही थी। इससे सामाजिक समस्याओं को वैज्ञानिक ढंग से सुलझाने हेतु विज्ञानी समाज प्रेरित हुए। इसी वैज्ञानिकता का परिणाम समाजशास्त्र का उद्भव रहा है।

ऑगस्ट कॉम्टे भी प्रबोधनकालीन विचारधारा से प्रभावित होकर आनुभाविक ज्ञान एवं तथ्यों पर आधारित सिद्धान्तों का निर्माण करना चाहते थे। वे ऐसे सामाजिक विज्ञान को निर्मित करना चाहते थे जो सम्पूर्ण समाज का अध्ययन कर सके। क्योंकि अन्य सभी सामाजिक विज्ञान समाज के किसी एक विशेष पक्ष का अध्ययन करते हैं। कॉम्टे ने वैज्ञानिकता को महत्त्वपूर्ण मानते हुए सर्वप्रथम अपने विषय को सामाजिक भौतिकी नाम दिया।

सामाजिक कारक (Social Factor)

इसके अन्तर्गत औद्योगिक एवं फ्रांस की क्रान्ति को शामिल किया जाता है जो कि प्रबोधन युग के ही अन्तर्गत आती है—

1. **औद्योगिक क्रान्ति** (Industrial Revolution)—सन् 1760 के आस-पास ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति की शुरूआत हुई। इससे इंग्लैण्ड तथा अन्य यूरोपीय देशों तथा अन्य महाद्वीपीय लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में परिवर्तन आया। यह क्रान्ति विशेषकर कपास, खनन और परिवहन के क्षेत्र में प्रारम्भ हुई। लोगों ने मशीनों का आविष्कार किया और इस औद्योगीकरण के युग में मशीनीकरण, विनिर्माण एवं ऊर्जा तथा टेक्स्टाइल उद्योग में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। वस्त्र जैसी वस्तुओं का निर्माण पूर्व में परम्परागत तरीके से घरेलू स्तर पर होता था। उत्पादन की घरेलू परम्परा में भी परिवर्तन हुआ। इसने लोगों के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित किया। सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति शब्द का प्रयोग ब्लांकी ने किया था, वस्तुत: ब्रिटिश के इतिहासकार अर्नाल्ड टायनबी ने जब इस शब्द का प्रयोग ब्रिटेन में लगभग 1760-1840 के मध्य हुए आर्थिक विकास के वर्णन हेतु किया तब से यह शब्द अधिक चर्चित हुआ।
2. **फ्रांस की क्रान्ति** (French Revolution)—यह क्रान्ति सन् 1789 में शुरू हुई। इस क्रान्ति ने लोगों के समक्ष स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व का लक्ष्य प्रस्तुत किया। क्रान्ति कभी भी अचानक नहीं घटित होती है। क्रान्ति से ठीक पहले फ्रांस की आर्थिक स्थिति कमजोर थी। गरीब जनता भूख से मर रही थी और राजवंश परिवार के लोग अपना जीवन विलासितापूर्ण व्यतीत कर रहे थे। निर्धन लोगों पर लगाए गए कर (Tax) ने ही इसका स्वरूप क्रान्ति में बदल दिया था। इस क्रान्ति ने फ्रांस की स्थिति ही बदल दी। इसमें धनी एवं निर्धन लोगों के मध्य का अन्तर समाप्त करने का प्रयास किया गया। जमींदारों व पादरियों का शासन समाप्त कर दिया गया। क्रान्ति ने प्राचीन नियमों एवं विशेषाधिकारों को छोड़ कर और सामन्तवाद के स्थान पर नई व्यवस्था को निर्मित किया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उपर्युक्त घटनाएँ समाज को बदलने में प्रयासरत रहीं। इस परिवर्तित समाज को समझने हेतु समाजशास्त्र का उद्भव हुआ। फ्रांसीसी दार्शनिक ऑगस्ट कॉम्टे ने सन् 1838 में नए विषय को समाजशास्त्र नाम दिया। औद्योगिक एवं फ्रांसीसी क्रान्ति के पश्चात समाज में अनेक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों ने समाज में अनेक समस्याओं को भी उत्पन्न किया जिन्हें समझने हेतु कॉम्टे द्वारा 1838 में नए विषय का उद्भव किया गया। इस विषय के उद्भव में बौद्धिक एवं सामाजिक कारण मुख्य कारण रहे हैं। बौद्धिक कारणों के अन्तर्गत हीगल, रूसो, माण्टेस्क्यू आदि के विचार शामिल हैं और सामाजिक कारणों में औद्योगिक एवं फ्रांस की क्रान्ति महत्त्वपूर्ण रही है।

प्र.2. समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
Describe the different stages of origin and development of Sociology.

उत्तर

समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास
(Origin and Development of Sociology)

समाजशास्त्र की उत्पत्ति का श्रेय फ्रांस के विद्वान ऑगस्ट कॉम्टे को दिया जाता है। जिन्होंने इस नवीन विज्ञान को सन् 1838 में समाजशास्त्र नाम दिया। विज्ञान परिवार में पृथक नाम तथा स्थान सहित क्रमबद्ध ज्ञान की प्राय: सुनिश्चित शाखा के रूप में समाजशास्त्र को शताब्दियों पुराना नहीं, बल्कि इसे अन्य पूर्व विज्ञानों पर निर्भर माना जाना चाहिए। चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिए समाज में उसका व्यवहार सदैव सामाजिक नियमों द्वारा प्रभावित होता आया है। व्यक्ति जिस समाज में रहता है उस समाज के प्रति जानकारी प्राप्त करने की उसमें लालसा हमेशा ही बनी रहती है। इसीलिए सदियों से अनेक धर्मशास्त्री,

विचारक तथा दार्शनिकों ने सामाजिक जीवन के प्रति अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। समाजशास्त्र की उत्पत्ति तो हजारों वर्षों पहले से हुई है। इतिहास से वर्तमान समय तक विभिन्न अवस्थाओं में किस प्रकार से समाजशास्त्र का उद्भव एवं विकास हुआ है, इसका वर्णन निम्नलिखित अवस्थाओं में किया गया है—

1. समाजशास्त्र के विकास की पहली अवस्था (First Stage of the Development of Sociology)
2. समाजशास्त्र के विकास की दूसरी अवस्था (Second Stage of the Development of Sociology)
3. समाजशास्त्र के विकास की तीसरी अवस्था (Third Stage of the Development of Sociology)
4. समाजशास्त्र के विकास की चौथी अवस्था (Fourth Stage of the Development of Sociology)

समाजशास्त्र के विकास की पहली अवस्था (First Stage of the Development of Sociology)

समाजशास्त्र एक नवीन विज्ञान है, परन्तु यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि सन् 1838 से पूर्व भी सामाजिक सम्बन्धों तथा मानव व्यवहार को समझने का प्रयास किया गया था। हालाँकि वह प्रयास वैज्ञानिक कम काल्पनिक अधिक था। समाजशास्त्र में **प्लेटो** (427-347 ई०पू०) की कृति **'द रिपब्लिक'** (The Republic) को अनमोल कृति माना जाता है जिसमें उनके द्वारा नगरीय समुदाय के भिन्न-भिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया गया है। प्लेटो की यह कृति दार्शनिक दृष्टिकोण में लिखी हुई है। **प्लेटो** के अनुसार, व्यक्ति जिस समाज में जन्म लेता है तथा जिसमें विकसित होता है उसका व्यवहार उसी समाज की उपज होता है, व्यक्ति समाजीकरण की प्रक्रिया अपनाकर व्यवहार करता है। किसी भी व्यक्ति के व्यवहार में समाज द्वारा दिया गया प्रशिक्षण महत्त्वपूर्ण होता है। प्लेटो का कथन हैं कि सभी व्यक्तियों में सीखने की क्षमता जन्म से ही पृथक-पृथक होती है। सभी परस्पर शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक रूप में पृथक-पृथक होते हैं इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति सभी कार्यों को नहीं कर सकता है। अत: सामाजिक जीवन में व्यक्तिगत भिन्नताओं के आधार पर ही कार्यों का विभाजन होना चाहिए। इस प्रकार प्लेटो समाज में सामाजिक संस्तरण (उतार-चढ़ाव) है, इसको सुनियोजित मानते हैं जबकि सामाजिक जीवन में कुछ भी सुनियोजित नहीं होता है। जिस समाज में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी क्षमता के अनुसार कार्य करने के लिए दिया जाता है वह एक आदर्श समाज माना जाता है क्योंकि समाज सबका एवं सबके लिए है।

प्लेटो के शिष्य अरस्तू की कृति 'इथिक्स' तथा 'पॉलिटिक्स' (Ethics and Politics) भी समाजशास्त्र से सम्बन्धित है। जिसमें कानून, समाज एवं राज्य का व्यवस्थित अध्ययन प्राप्त होता है। अरस्तू के अनुसार, "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।" जो व्यक्ति दूसरों के साथ मिलजुल कर नहीं रह सकता वह मनुष्य निम्न स्तर (पशु) का है या उच्च स्तर (भगवान) का। वह प्रारम्भ में स्वयं की शिक्षा, सुरक्षा, भरण-पोषण तथा व्यक्तित्व विकास हेतु अपने परिवार पर तथा उसके बाद अपने समाज पर निर्भर रहता है। इससे पता चलता है कि यूनानी दार्शनिकों ने राज्य से पृथक समुदाय को नही माना है। इन्होंने राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन किया है। यह पक्ष इनका कमजोर रहा है। हालाँकि अरस्तू का दृष्टिकोण अधिक यथार्थ रहा है किन्तु आदर्श सामाजिक व्यवस्था की वह भी एक कल्पना ही करते हैं।

प्लेटो के अनुसार, व्यक्ति का व्यवहार उसका समाज तय करता है; वहीं अरस्तू इसके विपरीत विचार देते हैं कि व्यक्ति का व्यवहार समाज की प्रकृति को तय करता है। समाज का बदलना असम्भव है क्योंकि व्यक्ति के व्यवहार को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार अरस्तू सामाजिक जीवन की मूलभूत इकाई परिवार को मानते है अर्थात वह राज्य से पहले परिवार को महत्त्व देते हैं। अरस्तू के पश्चात् समाजशास्त्रीय सिद्धान्त पर लुक्रेटियस, सिसरो, मारकस आरेलियस, सेन्ट अगस्टाइन आदि ने अपनी-अपनी पुस्तकों में चर्चा की है।

सिसरो (रोम के प्रसिद्ध लेखक) की पुस्तक 'डी ऑफिसिस' (De Officiis), यूरोप वासियों हेतु दर्शनशास्त्र, राजनीति, कानून तथा समाजशास्त्र सम्बन्धी विचारों का वर्णन करती है। परन्तु इसमें समाज के गैर कानूनी पक्ष की अपेक्षा कानूनी पक्ष पर अधिक ध्यान दिया गया है। इनके द्वारा राज्य तथा समाज के मध्य कोई अन्तर स्पष्ट नहीं किया गया है। ये मनुष्य को भगवान की विशेष रचना मानते थे। ईश्वर को प्रतिनिधि मानते थे, इनका विश्वास था स्वयं राज्य और उसका कानून ईश्वरीय कानून, नैतिक कानून अथवा प्राकृतिक कानून के अधीन है।

समाजशास्त्र के विकास की दूसरी अवस्था (Second Stage of the Development of Sociology)

छठी शताब्दी से 14वीं शताब्दी तक का काल समाजशास्त्र के विकास की दूसरी अवस्था मानी जाती है। इस समय समाज में एक ओर दर्शन तथा दूसरी ओर कल्पना पर अधिक विश्वास किया जाता था जिसका सम्बन्ध समाज के साथ सामाजिक समस्याओं से भी था। पूर्व समाज में घटित होने वाली प्रत्येक घटना का कारण ईश्वर व अलौकिक शक्तियों को ही माना जाता था। किन्तु 13वीं

शताब्दी से धीरे-धीरे सभी घटित होने वाली सामाजिक घटनाओं के कारणों को तर्क के आधार पर समझने का प्रयास किया जाने लगा। समाजशास्त्र के विकास की दूसरी अवस्था में यह माना जाने लगा कि समाज तथा सामाजिक जीवन परिवर्तनशील है, क्योंकि अन्य प्राकृतिक वस्तुओं की भाँति इसमें भी परिवर्तन होता रहता है। समाज में होने वाले परिवर्तन के पीछे कुछ निश्चित सामाजिक नियम होते हैं। अत: इस अवस्था में सामाजिक विचारकों ने धीरे-धीरे वैज्ञानिक विधियों से सामाजिक घटनाओं को समझने का प्रयास प्रारम्भ किया। आध्यात्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण को कम महत्त्व दिया जाने लगा। थॉमस एक्यूनस तथा दांते की कृतियों में इस प्रकार का अध्ययन दिखाई देता है। इन्होंने मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी माना और कहा कि समाज में परिवर्तन कुछ निश्चित नियमों तथा शक्तियों के अनुसार होता है।

समाजशास्त्र के विकास की तीसरी अवस्था
(Third Stage of the Development of Sociology)

प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन धीरे-धीरे वैज्ञानिक विधि के आधार पर प्रारम्भ होने लगा और धीरे-धीरे ईश्वर तथा कल्पनाओं पर विश्वास कम होने लगा। अब प्रत्येक घटना का आधार विज्ञान को माना जाने लगा। इस दौरान प्राकृतिक विज्ञान तथा दर्शन का क्षेत्र भिन्न-भिन्न हो गया और समाज के विभिन्न पक्षों या सामाजिक जीवन की घटनाओं का विशिष्ट तथा पृथक अध्ययन किया जाने लगा। पहले जहाँ व्यक्ति का सामाजिक जीवन सरल था वह अब सभ्यता के विकास के साथ ही जटिल होने लगा। सामाजिक घटनाएँ भी जटिल तथा विस्तृत होने लगीं। ऐसे में समाज की विभिन्न घटनाओं एवं पक्षों; जैसे—आर्थिक, धार्मिक, राजनीति का अध्ययन, अलग-अलग होने से अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र आदि सामाजिक विज्ञानों की उत्पत्ति हुई।

समाज एवं सामाजिक जीवन के बारे में चर्चा करने में अनेक विद्वानों में मारकस आरेलियस, सेण्ट आगस्टाइन, जॉन लॉक, रूसो, हॉब्स, माण्टेस्क्यू आदि का नाम उल्लेखनीय है। हालाँकि इन विचारकों ने स्वयं की कल्पना के आधार पर अपने विचारों को रखा तथा एक 'आदर्श' तक पहुँचने का प्रयत्न किया है। इन्होंने 'आदर्श' एवं 'वास्तविकता' में अन्तर नहीं किया। चूँकि वैज्ञानिक नियमों का सम्बन्ध वास्तविकता से होता है आदर्श से नहीं। अत: इन विचारकों द्वारा दिए गए समाजशास्त्रीय सिद्धान्त में वैज्ञानिकता का अभाव स्पष्ट होता है। साथ ही इन सामाजिक विचारकों के परिणाम, क्रमानुसार व्यवस्थित निरीक्षण पर आधारित नहीं थे, जबकि विज्ञान का सम्बन्ध काल्पनिक परिणामों से न होकर वास्तविक निरीक्षण से है।

राज्य तथा समाज के मध्य अन्तर विभिन्न विद्वानों द्वारा 16वीं शताब्दी से प्रारम्भ किया गया। हॉब्स, लॉक, रूसो ने 'सामाजिक समझौते का सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया। मैकियावेली ने राज्य को सफलतापूर्वक चलाने के सिद्धान्तों का वर्णन अपनी पुस्तक 'दि प्रिंस' (The Prince) में किया है। यह ऐतिहासिक आँकड़ों पर आधारित सिद्धान्त हैं। सर थॉमस मूर एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था तथा प्रतिदिन की सामाजिक समस्याओं का वर्णन स्वयं की कृति 'यूटोपिया' (Utopia) में करते हैं। विको की पुस्तक 'दि न्यू साइन्स' (The New Science) में समाज को कुछ निश्चित कानूनों अथवा नियमों के अधीन बताया गया है। इन नियमों को निरीक्षण के माध्यम से ही समझा जा सकता है। माण्टेस्क्यू ने स्वयं की कृति 'द स्पिरिट ऑफ लॉज' (The Spirit of Laws) में व्यक्ति के सामाजिक जीवन को बाह्य तत्त्व अर्थात् 'जलवायु' किस प्रकार प्रभावित करती है, का वर्णन किया है। हालाँकि माण्टेस्क्यू ने अन्य दार्शनिकों की अपेक्षा अधिक यथार्थ विचार दिए किन्तु उनका भी अरस्तू की भाँति यही रूढ़िवादी निष्कर्ष था कि 'जो है, वह अवश्य रहना चाहिए।'

प्रारम्भिक सामाजिक विचारक विशेष रूप से मानवीय विचारधारा के नैतिक पक्ष में रुचि रखते थे, इनके समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में वैज्ञानिकता का अभाव दिखाई देता है। अत: इस अवस्था तक भी सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में ये कमियाँ बनी रहीं।

समाजशास्त्र के विकास की चौथी अवस्था
(Fourth Stage of the Development of Sociology)

समाजशास्त्र का एक पृथक, व्यवस्थित तथा विज्ञान के रूप में उद्‌भव ऑगस्ट कॉम्टे (फ्रांस के दार्शनिक तथा समाजशास्त्री), द्वारा 19वीं शताब्दी में किया गया। ऑगस्ट कॉम्टे के अनुसार, प्रत्येक विज्ञान का विकास एक निश्चित संस्तरण में हुआ है और इस संस्तरण में समाजशास्त्र सबसे आधुनिक तथा पूर्ण विकसित विज्ञान है।

सर्वप्रथम फ्रांसीसी विचारक ऑगस्ट कॉम्टे (Auguste Comte) ने समाजशास्त्र का अध्ययन 19वीं शताब्दी में 1838 ई० अपनी प्रमुख कृति 'पॉजिटिव फिलॉसफी' में किया। कुछ समय पश्चात ऑगस्ट कॉम्टे फ्रांसीसी विद्वान सेण्ट साइमन के सम्पर्क में आए। सेण्ट साइमन सामाजिक घटनाओं का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध अध्ययन करने के लिए एक विज्ञान को खोजना चाहते थे। सेण्ट साइमन के विचारों के आधार पर ऑगस्ट कॉम्टे ने एक नए विज्ञान की नींव रखी जिसका नाम 'सामाजिक भौतिकी' (social physics) रखा किन्तु बेल्जियम के विद्वान क्वेटलेट ने इस शब्द का प्रयोग 1835 ई० में अपने एक लेख में किया था। इसीलिए

ऑगस्ट कॉम्टे ने 1838-1839 में इस नए विज्ञान का नाम 'समाजशास्त्र' (sociology) रखा। अत: समाजशास्त्र का जनक ऑगस्ट कॉम्टे को कहा जाता है। दर्शन में सकारात्मक राजनीति की प्रणाली और मानवता का धर्म शामिल है। उनके महत्त्वपूर्ण समाजशास्त्रीय विषयों में त्रिस्तरीय नियम, विज्ञान का संस्तरण, प्रत्यक्षवाद, सामाजिक सांख्यिकी और सामाजिक गतिशीलता शामिल है।

इंग्लैण्ड में सन् 1849 में जॉन स्टुअर्ट मिल ने समाजशास्त्र का प्रचार-प्रसार किया तथा इनके बाद हरबर्ट स्पेंसर द्वारा इस क्षेत्र में विशेष योगदान दिया गया। उन्होंने अपनी रचना 'सिन्थेटिक फिलॉसफी' (Synthetic Philosophy) के एक भाग 'प्रिन्सीपल्स ऑफ सोशियोलॉजी' (Principles of Sociology) में कॉम्टे के विचारों को मूर्त रूप देने का प्रयास किया। स्पेंसर ने डार्विन के प्रसिद्ध सिद्धान्त 'सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट' का प्रयोग समाजशास्त्र में किया। स्पेंसर के अनुसार, समाज मानव शरीर की भाँति है। इसके पश्चात हॉबहाउस, गिडिंग्स, कूले, मीड आदि ने सामाजिक विकास की व्याख्या मनोवैज्ञानिक ढंग से की है।

ऑगस्ट कॉम्टे के अनुसार, "समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था तथा प्रगति का विज्ञान है।" वे समाज को एक व्यवस्था मानते हैं जिसके सभी भाग परस्पर निर्भर होते हैं तथा एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं।

समाजशास्त्र के क्षेत्र में अत्यधिक कार्य इमाइल दुर्खीम (Emile Durkheim) (1858-1917) द्वारा किया गया। दुर्खीम को समाजशास्त्र को अन्य सामाजिक विज्ञानों से पृथक एक स्वतन्त्र वैषयिक विज्ञान बनाने का श्रेय दिया जाता है। दुर्खीम के अनुसार, "समाजशास्त्र सामूहिक प्रतिनिधित्व का विज्ञान है।" सामूहिक प्रतिनिधित्व से तात्पर्य ऐसे सामाजिक प्रतीकों से है जो समाज के अधिकांश लोगों द्वारा नियंत्रित होते हैं; जैसे—विचार, भावनाएँ, व्यवहार के ढंग, धारणाएँ इत्यादि। इसके अतिरिक्त दुर्खीम ने समाजशास्त्र को सामाजिक संस्थाओं का विज्ञान भी कहा है। एडवुड के अनुसार, यद्यपि कॉम्टे ने फ्रांस में समाजशास्त्र की नींव रखी, किन्तु इसे वैषयिक विज्ञान बनाने का जनक दुर्खीम को ही माना जा सकता है। उन्होंने ही समाजशास्त्र को अन्य सामाजिक विज्ञानों; जैसे—मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र और इतिहास से स्वतंत्र किया।

मैक्स वेबर [प्रसिद्ध जर्मन समाजशास्त्री (1864-1920)] ने भी समाजशास्त्र को वैज्ञानिक रूप देने का पूर्ण प्रयास किया। विल्फ्रेड परेटो [इटली समाजशास्त्री (1848-1923)] का समाजशास्त्र को व्यवस्थित विज्ञान के रूप में विकसित करने में काफी योगदान रहा है। सर्वप्रथम समाजशास्त्र का एक विषय के रूप में अध्ययन अमेरिका के येल विश्वविद्यालय में प्रारम्भ हुआ।

प्र.3. भारत में समाजशास्त्र के विकास की विभिन्न प्रवृत्तियों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए तथा स्वतन्त्र भारत में समाजशास्त्र के प्रसार को स्पष्ट कीजिए।

Describe the trends of development of sociology in India and spread of sociology in independent India.

उत्तर

भारत में समाजशास्त्र के विकास की प्रवृत्तियाँ
(Trends of Development of Sociology in India)

भारतीय समाजशास्त्र के विकास की निम्नलिखित तीन प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं—

1. **पाश्चात्य समाजशास्त्रीय परम्परा से प्रभावित** (Influenced by Western Sociological Thinking)—इस परम्परा से प्रभावित लोगों का मानना है कि भारत में समाजशास्त्र का विकास, पश्चिमी समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों एवं अध्ययन पद्धतियों का उपयोग कर किया जा सकता है। भारत में जाति, वर्ग, धर्म, विवाह, परम्परा से सम्बन्धित विभिन्न अनुभवात्मक अध्ययन (Empirical Studies) पाश्चात्य समाजशास्त्रीय परम्परा से प्रभावित होकर किए गए हैं। इसमें विशेष रूप से डॉ० हट्टन, रिजले, डॉ० घुरिये, मजूमदार और कपाड़िया के नाम अध्ययनकर्त्ताओं में शामिल हैं। डॉ० के०एम० कपाड़िया ने नातेदारी, परिवार, विवाह पर अध्ययनकर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। इन्होंने 'मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया' (Marriage and Family in India) एवं 'हिन्दू किनशिप' (Hindu Kinship) नामक कृतियों की रचना की है।

   डॉ० हट्टन एवं मजूमदार द्वारा 'भारतीय जाति-व्यवस्था' की सूक्ष्म विवेचना की गई। घुरिये द्वारा विभिन्न समाजशास्त्रीय विषयों पर अनेक लेख लिखे गए हैं; जैसे—परिवार, धर्म, जाति, व्यवसाय आदि उन लेखों में मुख्य हैं। साथ ही इन्होंने Caste, Class and Occupation, Culture and Society, Cities and Civilisation नामक पुस्तक की रचना की है। डॉ० मजूमदार ने अनेक जनजातीय क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण शोध कार्य किए हैं; जैसे—बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बंगाल की जनजातियाँ।

मजूमदार द्वारा लिखित निम्नलिखित समाजशास्त्रीय पुस्तकें हैं; जैसे—

(i) रेसेज एण्ड कल्चर ऑफ इण्डिया (Races and Cultures of India, 1944)

(ii) एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल एन्थ्रोपोलॉजी (An Introduction to Social Anthropology, 1956)

(iii) कास्ट एण्ड कम्युनिकेशन इन एन इंडियन विलेज (Caste and Communication in an Indian Village, 1958)

(iv) ए ट्राइब इन ट्रान्जिसन (A Tribe in Transition, 1937)

पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित होकर अनेक विचारकों ने धार्मिक विश्वासों एवं नैतिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया है। उदाहरण के लिए—डॉ० एम०एन० श्रीनिवास द्वारा दक्षिण के कुर्ग प्रदेश का अध्ययन करना। इन्होंने भारत में जाति व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों में संस्कृतीकरण की अवधारणा का प्रतिपादन किया। श्री निवास द्वारा लिखित निम्नलिखित कृतियाँ हैं—

(i) मैरिज एण्ड फैमिली इन मैसूर (Marriage and Family in Mysore 1942)

(ii) कास्ट इन मॉर्डन इण्डिया एण्ड अदर एसेज (Caste in Modern India and Other Essays, 1962)

(iii) सोशल चेन्ज इन मॉर्डन इंडिया (Social Change in Modern India, 1969)

(iv) इण्डियास विलेजस (India's Villages, 1955)

अमेरिका की समाजशास्त्रीय परम्परा से प्रभावित होकर यहाँ विद्वानों ने अनेक 'ग्रामीण अध्ययन' भी किए हैं। ग्रामीण समाज के अध्ययन में भारत में विशेष रूप से डॉ० एस०सी० दुबे, डॉ० मजूमदार, डॉ० ए०आर० देसाई जैसे समाजशास्त्रियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

डॉ० दुबे की निम्नलिखित पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—

(i) The Kamar (1951)

(ii) India's Changing Villages (1958)

(iii) An Indian Villages (1955)

डॉ० मजूमदार ने स्वयं की कृति 'रुरल प्रोफाइल' (Rural Profile) '1955' में ग्रामीण समाज का समाजशास्त्रीय आधार पर वर्णन किया गया है। इस परम्परा का प्रभाव सामाजिक और आर्थिक कारकों पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन से सम्बन्धित है। इसे 'सामाजिक अर्थशास्त्र' के नाम से जाना जाता है। इसके विकास में राधाकमल मुखर्जी एवं प्रो० डी०पी० मुखर्जी द्वारा 'अर्थशास्त्र का संस्थापक सिद्धान्त' प्रतिपादित किया गया। इसके अनुसार आर्थिक जीवन को सामाजिक मूल्य एवं परम्पराएँ अधिक प्रभावित करती हैं। अत: भारत में पाश्चात्य परम्परा का समाजशास्त्रीय चिन्तन पर अधिक प्रभाव पड़ने के कारण समाजशास्त्र का स्वतन्त्र विकास न हो सका। एस०सी० दुबे का मानना है कि भारत में अब भी समाजशास्त्रीय चिन्तन एवं लेखन पर उपनिवेशवाद का प्रभाव दिखायी पड़ता है। हालाँकि वर्तमान में समाजशास्त्र स्वतन्त्र रूप से धीरे-धीरे विकास की ओर बढ़ रहा है।

2. **परम्परागत भारतीय चिन्तन से प्रभावित** (Influenced by Traditional Indian Thinking)—भारतीय समाजशास्त्र के विकास की दूसरी प्रवृत्ति के अनुसार भारतीय समाजशास्त्रीय चिन्तन का आधार पाश्चात्य धारा की अपेक्षा भारतीय परम्परागत सिद्धान्तों को होना चाहिए। इन विचारकों के अनुसार, परम्परागत भारतीय सिद्धान्तों के आधार पर ही हम भारतीय समाज को समझ सकते हैं। इन विचारकों में डॉ० भगवानदास, प्रो० ए०के० सरन, श्री आनन्द कुमार आदि शामिल हैं। इन सभी विद्वानों का मानना है कि भारतीय समाज, संस्थाएँ, सामाजिक संस्कृति एवं संस्थाएँ इतनी जटिल एवं व्यापक हैं कि इनके अध्ययन मात्र से ही हम सम्पूर्ण भारतीय समाज को समझ सकते हैं। आज अधिकांश समाजशास्त्री यह स्वीकार नहीं करते हैं कि मात्र परम्परागत भारतीय सिद्धान्तों के आधार पर ही भारत में समाजशास्त्र का विकास किया जाना चाहिए। इनके अनुसार लोग आज बौद्धिक समन्वय में विश्वास करते हैं। भारतीय समाजशास्त्र में पाश्चात्य देशों में किए गए समाजशास्त्रीय कार्यों को शामिल किया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय परम्परागत सिद्धान्त छोड़ने चाहिए, बल्कि जहाँ तक भारतीय परम्परागत सिद्धान्त, समाजशास्त्र को एक वैज्ञानिक विषय के रूप में विकसित करने में आवश्यक एवं लाभदायक हो वहाँ पाश्चात्य समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के साथ इसको भी शामिल कर लेना चाहिए।
3. **पाश्चात्य एवं भारतीय समाजशास्त्रीय परम्पराओं के समन्वित चिन्तन से प्रभावित** (Influenced by Synthetical Thinking of Western and Indian Sociological Traditions)—इस प्रवृत्ति के विचारकों या समर्थकों में

TOUCH 'n PASS

डॉ० जी०एस० घुरिए, डॉ० राधाकमल मुखर्जी, प्रो० डी०पी० मुखर्जी के नाम उल्लेखनीय हैं जिनके विचारों का वर्णन निम्नलिखित है—

डॉ० जी०एस० घुरिए के अनुसार, भारतीय समाज के अध्ययन में पाश्चात्य एवं भारतीय दोनों परम्पराओं को शामिल करना चाहिए। भारतीय समाजशास्त्र के विकास में पाश्चात्य परम्पराओं या सिद्धान्तों को संशोधित कर प्रयोग करना चाहिए अन्यथा उसे उसी प्रकार जिस रूप में वह पाश्चात्य समाजशास्त्र के विकास में अपनायी गयी है, के अपनाने पर अध्ययन किसी भी दृष्टि से लाभकारी नहीं होगा।

डॉ० राधाकमल मुखर्जी के अनुसार, समाजशास्त्र को उचित ढंग से समझने के लिए ऐतिहासिक दृष्टिकोण का भी अध्ययन करना चाहिए। समाज की संस्तरणात्मक प्रणाली का प्रयोग कर समाज के सामान्य सिद्धान्त को समझ सकते हैं। साथ ही समाज में मौजूद अलौकिक विश्वासों की जानकारी प्राप्त करना अनिवार्य है। उन्होंने पारिस्थितिकीय समाजशास्त्र को भी विकसित करने का प्रयास किया। डॉ० राधाकमल मुखर्जी द्वारा प्रवासिता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। इन्होंने अपने प्रमुख विचार निम्नलिखित पुस्तकों में प्रतिपादित किए हैं—

(i) द डायनामिक ऑफ मॉरल्स (The Dynamics of Morals, 1950)
(ii) सोशल इकोलॉजी (Social Ecology)
(iii) सोशल स्ट्रक्चर ऑफ वैल्यूज (Social Structure of Values)

भारत में समाजशास्त्र के विकास प्रवृत्तियों में मार्क्सवादी चिन्तन को भी शामिल कर सकते हैं। प्रो० डी०पी० मुखर्जी इसी प्रवृत्ति से प्रभावित हैं। हालाँकि इन्होंने सामाजिक व्यवस्था को सांस्कृतिक परम्पराओं के माध्यम से समझने का प्रयास किया है।

उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त भारत में समाजशास्त्र के विकास में डॉ० पी०एन० प्रभु, डॉ० योगेन्द्र सिंह, प्रो० एम०एम० राव, डॉ० श्रीमती इरावती कार्वे, डॉ० टी०के०नन आदि नाम भी महत्त्वपूर्ण रहे हैं।

स्वतन्त्र भारत में समाजशास्त्र का प्रसार (Spread of Sociology in Independent India)

भारत में समाजशास्त्र का व्यापक प्रसार स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 1947 से शुरू हुआ। इसके बाद समाजशास्त्र का अध्ययन लगभग सम्पूर्ण भारत में एक स्वतन्त्र विषय के रूप में किया जाने लगा। परिणामस्वरूप आज भारत के अधिकांश विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र का अध्ययन एवं अध्यापन कार्य प्रारम्भ हुआ है। अन्नामलाई विश्वविद्यालय में वर्ष 1957 में 'केवल मोटवानी' (Kewal Motwani) की अध्यक्षता में समाजशास्त्र विभाग की स्थापना की गयी। प्रो० एम०एन० श्रीनिवास की अध्यक्षता में 'दिल्ली विश्वविद्यालय' में लगभग 1958-1959 के आस-पास समाजशास्त्र विभाग की स्थापना हुई। वर्तमान में दिल्ली, मुम्बई, पुणे, गुजरात, पटना, उत्तर प्रदेश, काशी विद्यापीठ, राजस्थान, जोधपुर आदि विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र विभाग की स्थापना हुई है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त समाजशास्त्र विषय का राजकीय एवं अराजकीय महाविद्यालयों में अध्ययन एवं अध्यापन कार्य चल रहा है। अनेक विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर शोधकार्य किए जा रहे हैं।

प्र.4. प्रबोधन युग से क्या तात्पर्य है? समाजशास्त्र के विकास में प्रबोधन युग तथा उसके बाद के बौद्धिक प्रभावों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
What is the mean by Enlightenment Period? Describe the Intellectual Impact of Post Enlightenment Period in development of Sociology.

उत्तर

प्रबोधन युग
(Enlightenment Period)

यूरोपीय समाज में 18वीं शताब्दी में कई परिवर्तन हुए, जिसमें विशेष रूप से एक परिवर्तन यूरोपीय दर्शन में भी हुआ और इसी शताब्दी में कई सामाजिक आन्दोलन भी हुए। इसी को विद्वानों ने प्रबोधन का नाम दिया। इस युग को विवेक या ज्ञानोदय युग के नाम से भी जाना जाता है। इस युग के विचारकों ने धार्मिक एवं तात्विक दृष्टिकोण तथा उसकी व्याख्या की आलोचना की है। इसी दौरान एक क्रान्तिकारी परिवर्तन यह भी देखा गया कि सामन्तवादी यूरोप के परम्परागत चिन्तन में परिवर्तन आया। इसमें दार्शनिकों ने कई प्रगतिशील विचारों को प्रकाशित किया। लोगों ने धार्मिक, तात्विक चिन्तन की आलोचना की और यथार्थ की नई दृष्टि और चिन्तन के नवीन तरीके अपनाए। लोग जीवन के सभी पहलुओं पर तार्किक ढंग से विचार करने लगे। सामान्य विज्ञानों में वैज्ञानिक विचारधारा प्रत्यक्षवाद, अनुभववाद आदि का विकास हुआ।

TOUCH 'n PASS

इस युग में यह विश्वास किया गया कि प्रकृति एवं समाज का वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन किया जा सकता है। मनुष्य अनिवार्य रूप से एक तर्कसंगत प्राणी है। मनुष्य को अपनी क्षमताओं की पहचान करवाने में वह समाज अधिक सहायक होगा जो समाज तर्कपूर्ण सिद्धान्तों पर आधारित होता है। यूरोप में इससे पूर्व तर्कपूर्ण सिद्धान्त और विचार विज्ञान एवं वाणिज्य के विकास में उपलब्ध थे। ज्ञानोदय के पूर्व में हुई वैज्ञानिक एवं वाणिज्यिक क्रान्ति के फलस्वरूप एक नए दृष्टिकोण का उदय हुआ। यह दृष्टिकोण औद्योगिक क्रान्ति एवं फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रभाव से और आगे विकसित हुआ।

मूल रूप से कहा जा सकता है कि प्रबोधन युग से पूर्व प्राचीन यूरोप में धर्म का प्रभुत्व, आर्थिक व्यवस्था का मूल आधार भूमि, राजा को भगवान मानना, महिलाओं की निम्न स्थिति आदि परिस्थितियाँ मौजूद थी। इन सभी का प्रबोधन युग में विरोध किया गया और समाज की परम्परागत धारणाओं की नई व्याख्या की गयी। इसके पश्चात् धर्म का प्रभुत्व कम हुआ, लोकतन्त्र का प्रादुर्भाव हुआ, किसानों की स्थितियों में सुधार हुआ (उनको नवीन अवसर व नए अधिकार प्राप्त होना) और महिलाओं की स्थिति में भी कुछ सुधार हुआ। अत: प्रबोधन युग में धार्मिक और तात्विक दर्शन का विरोध करके वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उद्भव हुआ।

बौद्धिक सन्दर्भ की समीक्षा (Review of Intellectual Context)

समाजशास्त्र का 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में उद्भव हुआ था। इस पर कुछ बौद्धिक चिन्तनों का प्रभाव पड़ा है जिसे सार रूप में दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. प्रबोधन युग का बौद्धिक प्रभाव
2. प्रबोधन युग के बाद का बौद्धिक प्रभाव

प्रबोधन युग के बाद का बौद्धिक प्रभाव (Intellectual Impact of Post Enlightenment Period)

19वीं शताब्दी में समाजशास्त्र के विकास में कई बौद्धिक एवं सामाजिक (फ्रांस की क्रान्ति एवं औद्योगिक क्रान्ति) परिस्थितियों ने मिल-जुलकर योगदान दिया जिनमें से बौद्धिक कारकों में निम्नलिखित चार को महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

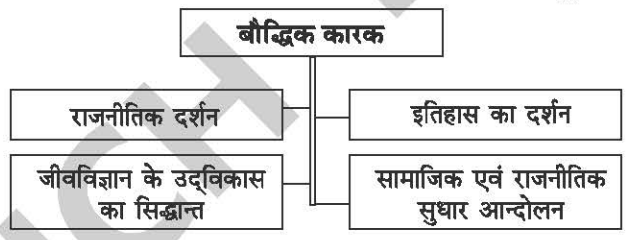

1. **राजनीतिक दर्शन** (Political Philosophy)—यह शाखा प्रमुख बौद्धिक परम्परा के रूप में विकसित हुई। राजनीतिक दर्शन में वे विचार शामिल हैं जो 18वीं शताब्दी में राज्य, शासन एवं प्रजा से सम्बन्धित थे। राजनीतिक दार्शनिकों ने राज्य के विकास, राज्य प्राधिकरण की वृद्धि, प्रकृति और राजनीतिक प्रकृति की विभिन्न समस्याओं की जाँच की। इस दृष्टिकोण में मॉण्टेस्क्यू (Montesquieu), वॉल्टेयर (Voltaire) एवं रूसो (Rousseau) जैसे विचारकों के विचारों का अध्ययन किया जाता है।
   (i) **मॉण्टेस्क्यू** (Montesquieu)—मॉण्टेस्क्यू एक फ्रांसीसी राजनीतिक एवं ऐतिहासिक विचारक थे। प्रबोधन विचारकों में सबसे महत्त्वपूर्ण विचारक मॉण्टेस्क्यू की सबसे प्रमुख 'द स्प्रिट ऑफ लॉज' (The Spirit of Laws) (1748) को उच्च प्रबोधन की शुरूआत करने वाली कृति माना जाता है। इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने फ्रांस की जनता को एक आदर्श शासन व्यवस्था के लक्षणों से परिचित कराने के साथ देश की तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था के दोषों से भी अवगत कराया। मॉण्टेस्क्यू का विचार था कि शासन व्यवस्था किसी प्रकार की सामाजिक स्थिति से प्रभावित होती है। उन्होंने सामाजिक संरचना को समझने हेतु इतिहास के महत्त्व को एक साधन की भाँति मान्यता दी। एक समाज के इतिहास का अध्ययन करके तत्पश्चात उसका कानून बनाना चाहिए। 'द स्प्रिट ऑफ लॉज' में उन्होंने कानून के सम्बन्ध में विचार दिया है। 'कानून को एक राष्ट्र की विशेषताओं द्वारा निर्धारित किया जाना चाहिए ताकि वे प्रत्येक देश की जलवायु, प्रत्येक आत्मा की गुणवत्ता, उसकी स्थिति और सीमा के संबंध में हो'। इन्होंने 'अधिकारों का पृथक्करण' सिद्धान्त दिया और व्यक्ति की स्वतन्त्रता को महत्त्व प्रदान किया। उनके अनुसार राज्य की तीनों

TOUCH 'n' PASS

शक्तियों कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका को एक व्यक्ति में केन्द्रित न होकर अलग-अलग होना बहुत आवश्यक है। मॉण्टेस्क्यू का यह सिद्धान्त मानव विज्ञान एवं समाजशास्त्र का एक अग्रणी कार्य था। यह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने लोकाचार, कानून और धर्म के मध्य अन्तर्सम्बन्ध स्पष्ट किया।

(ii) **वॉल्टेयर** (Voltaire)—यह एक लेखक, व्यंग्यकार तथा नाटककार थे। इन्होंने अपनी व्यंग्यात्मक शैली में ही फ्रांसीसी तत्कालीन राजनीतिक अव्यवस्था, आर्थिक स्थिति, भ्रष्टाचार, सामाजिक असमानता तथा धार्मिक आडम्बरों पर कई लेखों का वर्णन किया। वॉल्टेयर ने चर्च की अव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार पर सर्वाधिक प्रहार किया है। यह भी मॉण्टेस्क्यू की भाँति व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अधिक समर्थक थे। यह कार्यों की शुद्धता में अधिक विश्वास करते थे। वॉल्टेयर के अनुसार, जनता को सरकार के अनुचित कार्यों एवं नीतियों का विरोध बड़े साहस के साथ करना चाहिए। अत: जनता को उसके अधिकारों के प्रति जाग्रत करने के लिए वॉल्टेयर ने 'आत्मनिर्णय के सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया। इन्होंने अपने लेख के माध्यम से राजा की निरंकुशता एवं भ्रष्टाचार को सभी के समक्ष प्रस्तुत किया। अत: वॉल्टेयर के विचार फ्रांस के बौद्धिक जागरण तथा जन जागृति में महत्त्वपूर्ण रहे हैं।

(iii) **रूसो** (Rousseau)—रूसो ही सम्भवत: वह विचारक थे जिन्हेंने फ्रांस की क्रान्ति के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया। मौलिक विचारों की दृष्टि से मॉण्टेस्क्यू व वॉल्टेयर से भी वह श्रेष्ठ थे। मॉण्टेस्क्यू के विचार शुद्ध राजनीतिक थे। वॉल्टेयर तत्कालीन भ्रष्ट एवं भ्रष्ट संस्थाओं को समाप्त करना चाहता था। इन सबसे पृथक रूसो के मस्तिष्क में एक रचनात्मक तथा मौलिक योजना थी, जिसके द्वारा वह नवीन समाज की रचना करना चाहता था। उन्होने स्वयं की रचना 'द सोशल कान्ट्रैक्ट' The Social Contract (1762) में कहा कि प्रकृति की स्थिति में मानव अनुचित और कुछ स्तर तक अविकसित थे और उनमें नैतिकता एवं जिम्मेदारी की भावना थी। हालाँकि, लोगों ने आपसी सुरक्षा के लिए कार्यवाही की, व्यक्तिगत स्वतंत्रता को आत्मसमर्पण करने और कानून तथा सरकार स्थापित करने के लिए सहमति व्यक्त की, फिर उन्होंने नैतिक एवं नागरिक दायित्व की भावना हासिल की। अपने अनिवार्य रूप से नैतिक चरित्र को बनाए रखने के लिए सरकार को इस प्रकार के शासन की सहमति पर विचार करना चाहिए। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द सोशल कॉन्ट्रैक्ट' में 18वीं शताब्दी के फ्रांसीसी लेखक रूसो ने लिखा है कि प्रकृति की स्थिति में मनुष्य एक महान साहसी व्यक्ति था जिन्होंने आदिम सादगी और सुखद जीवन का नेतृत्व किया। वे स्वतंत्र, संतुष्ट, आत्मनिर्भर, स्वस्थ, निडर थे। यह केवल आदिम वृत्ति और सहानुभूति थी जो उन सभी को सम्बन्धित करती थी। वे न तो सही या गलत जानते थे और न ही पुण्य और उपाध्यक्षों की सभी धारणाओं से स्वतन्त्र थे। मनुष्यों ने पूर्ण स्वतंत्रता और प्रकृति की समानता के शुद्ध, अपरिष्कृत, निर्दोष जीवन का आनंद लिया। लेकिन ये स्थिति दीर्घ समय तक नहीं रही। इसका कारण जनसंख्या में वृद्धि थी। लोगों की सादगी और सुखद आनंद समाप्त हो गया। परिवारों की स्थापना की गई, संपत्ति का संस्थान उभरा और मानव समानता समाप्त हो गई। मानव निजी स्वामित्व के संदर्भ में सोचने लगा। जब समानता और प्रारंभिक अवस्था समाप्त हो गई, युद्ध, हत्या, संघर्ष दिन का क्रम बन गया। इससे पलायन एक सभ्य समाज के निर्माण में पाया गया। प्राकृतिक स्वतंत्रता ने सामाजिक अनुबंध द्वारा नागरिक स्वतंत्रता को स्थान दिया। इस अनुबंध के परिणामस्वरूप व्यक्तियों की भीड़ एक सामूहिक एकता बन गई, एक सभ्य समाज की स्थापना हुई। रूसो के अनुसार, इस अनुबंध का गुण सभी को अपने आप को या स्वयं को एकजुट करते हुए पहले की तरह ही स्वतन्त्र रखता है। यह अनुबंध सामाजिक एवं साथ ही राजनीतिक भी था। व्यक्ति ने स्वयं का पूरी तरह से और बिना शर्त के आत्मसमर्पण कर दिया, जिस समूह का वह सदस्य बन गया। इस तरह व्यक्ति एक नैतिक और सामूहिक व्यक्ति था और रूसो ने इसे सामान्य इच्छाशक्ति कहा था। सामान्य इच्छा की अनूठी विशेषता यह थी कि यह सामूहिक प्रतिनिधित्व करती थी तथा इसके सदस्यों के निजी हितों से अलग होता है। प्रारंभिक कानून व्यक्ति की तुलना में अधिक सांप्रदायिक था और समाज की इकाई व्यक्ति नहीं बल्कि परिवार थी। सामाजिक अनुबंध के सिद्धांतकारों ने तर्क दिया है कि समाज स्थिति से अनुबंध की ओर बढ़ा है न कि अनुबंध से स्थिति की ओर।

(iv) **दिदरो** (Diderot)—दिदरो का भी वैचारिक क्रान्ति के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वह भी अन्य दार्शनिकों की भाँति क्रान्तिकारी विचारों का समर्थन करते थे। उन्होंने विवेक के महत्त्व पर बल दिया और इसके साथ ही 'फिलॉसाफिक थॉट' (Philosophical Thoughts) नामक पुस्तक लिखी। उनका कहना था कि सत्य ज्ञान से

TOUCH 'n PASS

समस्त दोषों का समाधान और सुख की वृद्धि हो सकती है। वह जनता के समक्ष सम्पूर्ण ज्ञान व्यक्त करना चाहते थे। इस प्रकार विभिन्न विषयों पर सरल एवं सुगम तरीके से इसे स्पष्ट किया जा सके और लोगों को सत्य का ज्ञान प्राप्त हो सके, इसके लिए उन्होंने विश्वकोष (Encyclopaedia) का सम्पादन किया। यह विश्वकोष 17 खण्डों में 1751-1772 में प्रकाशित हुआ। जिसके कई लेख स्वयं दिदरो ने लिखे। उसने एकतन्त्रात्मक शासन, सामन्त प्रथा, कर पद्धति, अन्धविश्वास, असहिष्णुता, कानून तथा दास प्रथा पर विशुद्ध रूप से इस विश्वकोष में विचार किया है। उनके विचारों एवं विश्वकोष ने फ्रांस में क्रान्तिकारी भावनाओं को फैलाने में विशेष योगदान दिया। मूल रूप से दर्शन की इस शाखा में राज्य एवं मनुष्य के सम्बन्ध की चर्चा की जाती है। इस राजनीतिक दर्शन का प्रभाव विभिन्न समाजशास्त्रियों; जैसे—मैक्स वेबर के सत्ता और नौकरशाही, परेटो द्वारा राजनीतिक अभिजन, सिद्धान्तों आदि पर दिखाई पड़ता है।

2. **इतिहास का दर्शन** (Philosophy of History)—इतिहास के दर्शन के प्रवर्तक अबे डी सेन्ट पियरे (Abbe de Saint Pierre) और गिआम्बतिस्ता विको (Giambattista Vico) थे। इन्होंने प्रगति का विचार प्रतिपादित किया है, जिसमें मानव इतिहास की अवधारणा सन्दर्भित है। इस विचार का प्रभाव जर्मनी हरडर, फ्रांस के मॉण्टेस्क्यू और वॉल्टेयर, स्कॉटलैण्ड के इतिहासकारों एवं दार्शनिकों पर पड़ा है। इसके अतिरिक्त रॉबर्टसन और मिलर की रचनाओं पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। सैद्धान्तिक रूप से इन विद्वानों ने यह बताने का प्रयास किया कि समाज की प्रगति कई स्तरों से गुजरकर हुई है। 19वीं शताब्दी के इतिहास दर्शन का हीगल और सेण्ट साइमन के कार्य पर भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस बौद्धिक प्रभाव का क्रमश: मार्क्स एवं ऑगस्ट कॉम्टे जैसे आधुनिक समाजशास्त्रियों के विकास एवं प्रगति की धारणा सम्बन्धी दार्शनिक विचारों पर भी प्रभाव पड़ा है। समाजशास्त्र के उद्भव से पूर्व रूसो, एडम, फारगून एवं हीगल के चिन्तन ने सेंटसाइमन और कॉम्टे को प्रभावित किया। रूसो के सामाजिक समझौता सिद्धान्त और स्वतन्त्रता समानता एवं बन्धुत्व की विचारधारा ने यूरोप के उस समय के बौद्धिक जीवन को अधिक प्रभावित किया।

इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक कालखण्डों में विभाजित सामाजिक जीवन के स्वरूपों को भी इतिहास के दर्शन ने वैज्ञानिक आधार दिया। दार्शनिक इतिहासकारों के अनुसार समाज की संकल्पना राज्य या राजनीतिक समाज से कहीं अधिक बड़ी है। इन्होंने राज्य एवं नागरिक समाज में अन्तर स्पष्ट करने के लिए कई सामाजिक संस्थाओं का भी अध्ययन किया है। समाज को समझने हेतु हीगल जैसे दार्शनिक इतिहासकार की शब्दावली; जैसे—विचार, प्रतिविचार तथा समन्वित विचार और इसके अतिरिक्त उपागम सहायक रहे हैं। पारस्परिक रूप से सम्बद्ध फारगून कहते हैं कि समाज पारस्परिक रूप से सम्बद्ध संस्थाओं की एक व्यवस्था है। उन्होंने इसके सन्दर्भ में समाज की प्रकृति, परिवार एवं नातेदारी, जनसंख्या, सामाजिक स्तरीकरण, सरकार, प्रथा, नैतिकता एवं कानून का वर्णन भी किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने समाज की विभिन्न श्रेणियों और विकास के स्तरों को भी विश्लेषित किया है जिससे हीगल के विचारों पर भी प्रभाव पड़ा है। इस दर्शन का मुख्य आधार यही है कि समाज सरल अवस्था से जटिल अवस्था में परिवर्तित होता है और इस दौरान वह कई चरणों से होकर गुजरता है। इतिहास के दर्शन का समाजशास्त्र में योगदान को संक्षिप्त में अवलोकन कर सकते हैं। दार्शनिक पक्ष पर इसने विकास एवं प्रगति के विचार प्रस्तुत किए हैं और वैज्ञानिक पक्ष में ऐतिहासिक काल एवं सामाजिक प्रारूपों की अवधारणाएँ प्रस्तुत की हैं। इतिहास के दर्शन का विकास अबे सेंट पियरे जैसे समाजशास्त्रियों ने किया है। ये सम्पूर्ण समाज के अध्ययन के लिए विचारशील थे।

बाटोमोर के अनुसार, किसी एक पक्ष (केवल आर्थिक, सांस्कृतिक या राजनीतिक) के अध्ययन के प्रति विचारशील न होकर इतिहास का दार्शनिक वर्णन करने वाले लेखकों का केन्द्रबिन्दु सामाजिक परिवर्तन की दिशा का विवेचन करना रहा है। कॉम्टे, मार्क्स एवं स्पेन्सर के विचारों में इस दृष्टिकोण की छाप दिखाई पड़ती है।

3. **उद्विकासीय सिद्धान्त** (Evolutionary Theory)—प्रबोधन युग के बाद के दार्शनिकों एवं विद्वानों ने उद्विकास का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। वे उद्विकास क्रम को सरल से जटिल एवं निश्चित अवस्थाओं में स्पष्ट करते हैं। इस विचारधारा ने समाजशास्त्र को प्रभावित किया जिसके परिणामस्वरूप समाजशास्त्र में भी उद्विकासीय दृष्टिकोण को अपनाकर समाज परिवार, विवाह एवं विभिन्न संस्थाओं का अध्ययन किया जाने लगा। समाजशास्त्रियों के अनुसार जीवविज्ञान के समान समाज भी जीव के समरूप है। समाज भी सरल से जटिल, निपुणता से पूर्ण निपुणता, न्यून श्रम विभाजन से अधिकतम श्रम विभाजन के रूप में विकसित हुआ है। इन्होंने समाज का वर्णन इसी स्वरूप में किया है। इस प्रकार से समाज की व्याख्या में प्रमुख रूप से स्पेन्सर एवं दुर्खीम जैसे समाजशास्त्रियों का वर्णन प्रमुख रहा है।

TOUCH 'n PASS

4. **सामाजिक एवं राजनीतिक सुधार आन्दोलन** (Social and Political Reform Movement)—इस दौरान कई समाज सुधार आन्दोलन ने जन्म लिया। समाज सुधार में 'सामाजिक सन्देश' तथा 'मुक्ति वाहिनी' जैसे धार्मिक आन्दोलनों का महत्त्वपूर्ण कार्य रहा। इसके अतिरिक्त श्रमिकों के हितों की रक्षा और कार्य की दशाओं में सुधार हेतु कुछ प्रमुख श्रम संघों का उदय हुआ। नए राजनीतिक दलों का उदय हुआ जो नव-चेतना पर आधारित विचार-दर्शन के आधार पर गठित हुए थे। फ्रांसीसी सामाजिक विचारक सेण्ट साइमन का सुझाव था कि उद्योग और सरकार का उद्देश्य सभी के अधिकतम हितों की पूर्ति होना चाहिए। चार्ल्स फ्युरियर ने राज्य के स्थान पर समाज को छोटी-छोटी आदर्श बस्तियों (Phalanges) में गठित करने तथा प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता एवं क्षमतानुसार कार्य दिलाने हेतु आन्दोलन चलाया। इंग्लैण्ड में रॉबर्ट ओवन ने एक आदर्श फैक्टरी की स्थापना की जिसका प्रशासन स्वयं श्रमिकों को करना था। उन्हें सुखी और स्वस्थ श्रमिकों के प्रति विश्वास था कि वे अधिक उत्पादन करेंगे। परन्तु ओवन का अनुकरण किसी अन्य उद्योगपति ने नहीं किया। इससे उसका उपर्युक्त प्रयोग असफल हो गया।

सामाजिक एवं राजनीतिक सुधार के आन्दोलनों ने पश्चिमी यूरोप के औद्योगिक समाज में उत्पन्न गरीबी जैसी समस्याओं का सर्वेक्षण करना आवश्यक बना दिया। सामाजिक सर्वेक्षण एक नए विज्ञान को समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करने के लिए आवश्यक था। इससे अव्यवस्था को व्यवस्था, स्थिरता एवं जड़ता को गतिशीलता एवं प्रगति में बदलने का प्रयास हुआ, जिससे समाजशास्त्र के उद्भव की पृष्ठभूमि तैयार हुई। समाज को दिशा देने में सामाजिक व राजनीतिक आन्दोलनों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। यूरोप में सामाजिक वैचारिकी के क्षेत्र में इन आन्दोलनों ने कई विचारधाराओं के माध्यम से बौद्धिक संघर्ष से समाजशास्त्र का विकास हो रहा था। राजनीतिक आन्दोलनों में विशेष रूप से औद्योगिक क्रान्ति, फ्रांस की क्रान्ति, ब्रिटेन का साम्राज्यवाद आदि का वहाँ की सामाजिक वैचारिकी पर स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है। फ्रांसीसी बेकन का प्रत्यक्षवाद में विशेष योगदान है। यह प्रत्यक्षवाद आधुनिक वैज्ञानिक समाजशास्त्र के निर्माण में महत्त्वपूर्ण बौद्धिक आन्दोलन है। प्रत्यक्षवाद के जैसे आदर्शवाद की भी समाजशास्त्र के उद्भव में महती भूमिका रही है विशेष रूप से पश्चिमी विचारधारा में। आदर्शवाद की प्रत्येक धारा स्वयं को सावयवी धारणा के साथ जोड़ती है। आदर्शवादी दार्शनिकों के अनुसार वस्तुओं की यथार्थता, मनुष्य का स्वरूप और मानव समाज तथा उसके व्यवहार का अस्तित्व सावयवी रूप में है। इसी प्रकार का एक अन्य बौद्धिक आन्दोलन भी समाजशास्त्र के उद्भव में महत्त्वपूर्ण रहा है, इसे उपयोगितावाद आन्दोलन कह सकते हैं। यह विचारधारा तर्क में विश्वास रखती है। यह सिद्धान्त, समाज विज्ञान सिद्धान्तों में प्रत्येक तरीके से प्रत्यक्षवादी समाजशास्त्र के उद्भव के दौरान तत्कालीन राजव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, उद्योग एवं तकनीक आदि सामूहिक जीवन के समस्त पक्षों में तीव्र परिवर्तन हो रहे थे। उसी नई व्यवस्था के अनुरूप सामाजिक चिन्तन पद्धति की आवश्यकता थी। धार्मिक एवं तत्त्वमीमांसीय पद्धतियाँ नयी औद्योगिक व्यवस्था में अनुपयुक्त थी। लोगों के सामने भौतिक प्रघटना के क्षेत्र में नवीन वैज्ञानिक पद्धति का स्पष्टीकरण प्रत्यक्ष रूप में था। अनेक सुधारवादी एवं व्यावहारिक प्रयासों व आन्दोलनों को इन पूर्ववर्ती सामाजिक व्यवस्था और संक्रमण संक्रान्ति की स्थितियों ने जन्म दिया। इससे एक नवीन सामाजिक विज्ञान विषय की उत्पत्ति सम्भव हुई।

उपर्युक्त के अतिरिक्त समाजशास्त्र के उद्भव में सामाजिक सर्वेक्षण का अध्ययन करना भी महत्त्वपूर्ण है। प्रबोधन युग के पश्चात् सामाजिक विज्ञानों में कई विधियों का प्रयोग अध्ययन हेतु किया जाता था। इसी समय लोगों में यह भी विश्वास उत्पन्न हुआ कि सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन क्षेत्र में प्राकृतिक विज्ञानों की विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। इसी के आधार पर समाजशास्त्र में सामाजिक अध्ययन हेतु सामाजिक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया जाने लगा। इस धारणा के प्रभावस्वरूप मानव सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन, वर्गीकरण एवं मूल्यांकन शुरू हुआ।

इसके अतिरिक्त सामाजिक वैज्ञानिक गरीबी की समस्या से भी वह चिन्तित थे, जिसके अध्ययन एवं उसमें सुधार हेतु समाजशास्त्र में प्राकृतिक विज्ञान की विधि सर्वेक्षण का प्रयोग किया जाने लगा। सामाजिक सर्वेक्षण की विधि आगे चलकर सामाजिक समस्याओं के समाजशास्त्रीय शोध में अध्ययन की महत्त्वपूर्ण विधि बन गयी। परिणामस्वरूप कह सकते हैं कि प्रबोधन पश्चात् समय में समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास की पृष्ठभूमि अधिक प्रभावी रही है।

प्र.5. क्रान्ति का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से फ्रांस क्रान्ति व इसके सामाजिक और राजनीतिक कारणों का वर्णन कीजिए।

Make clear the meaning of revolution and describe French revolution and its social and political causes from sociological perspective.

उत्तर

क्रान्ति
(Revolution)

विशेष रूप से 'क्रान्ति' शब्द का प्रयोग सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों में अचानक हुए परिवर्तनों हेतु किया जाता है। ये परिवर्तन मुख्यत: हिंसक घटनाओं एवं रक्तपात द्वारा होता है या कभी-कभी क्रान्तियाँ अहिंसक घटनाओं के माध्यम से भी होती हैं। उन्हें रक्तहीन क्रान्ति कहते हैं। समाजशास्त्र के उद्‌भव में क्रांतियाँ भी महत्त्वपूर्ण रही हैं, जिसके कारण समाजशास्त्र को 'क्रांति युग की संतान' भी कहा जाता है। इसके पीछे यह तर्क दिया जाता है कि समाजशास्त्र का जन्म पश्चिमी यूरोप में हुआ, जहाँ का पिछले लगभग 300 वर्षों का दौर क्रांतिकारी परिवर्तनों से सम्बन्धित रहा, जिससे वहाँ का समाज पूर्णत: बदल दिया गया था। ये बड़े परिवर्तन तत्कालीन समाज में फ्रांस की क्रान्ति एवं औद्योगीकरण के मूल कारण तो थे, परन्तु इससे उत्पन्न हुई आशावादी एवं निराशावादी परिस्थितियों ने एक तरह के विरोधाभास को भी जन्म दिया। वास्तविक रूप से देखा जाए तो समाजशास्त्र के उदय में दो क्रान्तियों की भूमिका सबसे महत्त्वपूर्ण है—

1. फ्रांस की क्रान्ति
2. औद्योगिक क्रान्ति

फ्रांस की क्रान्ति (French Revolution)

लगभग सन् 1789 में फ्रांस की क्रान्ति हुई थी। राज्य के सम्पूर्ण शासन व्यवस्था को फ्रांस की क्रान्ति ने हिला कर रख दिया था। इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप पूरे यूरोप में अनेक छोटी-बड़ी क्रान्तियाँ हुई थी। **चर्चिल** का मानना था कि फ्रांस की क्रान्ति सम्पूर्ण विश्व के विभिन्न देशों से बिल्कुल ही भिन्न थी। जहाँ अन्य देश की क्रान्तियाँ देश की व्यवस्थाओं को अत्यधिक प्रभावित न कर सकीं। वहीं फ्रांस की क्रान्ति से देश की अर्थव्यवस्था तथा संस्थाएँ प्रभावित होकर अस्त-व्यस्त हो गई। उदाहरण के लिए, अमेरिका तथा इंग्लैंड की क्रान्तियाँ आन्तरिक क्रान्तियाँ थीं, किन्तु फ्रांस की क्रान्ति का प्रभाव सम्पूर्ण यूरोप पर दिखाई देता है। इस क्रान्ति का प्रभाव मात्र 19वीं शताब्दी में ही नहीं बल्कि इसके बाद भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। फ्रांसीसी क्रान्ति सामन्तवाद की जीर्ण-शीर्ण सामाजिक व्यवस्था, वर्गीय विशेषाधिकार, निरंकुश शासन एवं नौकरशाही के विरोध तथा मनुष्य मात्र की समानता के दावे और अधिकार के सिद्धान्तों के आधार पर मानव समाज के नवनिर्माण के प्रयत्न का साकार रूप थी। यह क्रान्ति गोला बारूद के साथ विचारों की भी लड़ाई थी क्योंकि इसने स्वतन्त्रता, समानता एवं बंधुत्व के विचारों को मानव के समक्ष प्रस्तुत किया था।

फ्रांसीसी क्रान्ति के कारण व प्रभाव (Causes and Effects of French Revolution)

किसी भी देश में होने वाली क्रान्ति उस देश की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्थिति एवं जनता की मनोदशा या स्थिति पर निर्भर करती है। जब किसी देश तथा समाज की दशा बिगड़ने लगती है या अत्यधिक दयनीय हो जाती है तो उस देश के निवासियों एवं समाज के सदस्यों में असंतोष की भावना उत्पन्न होने लगती है। असन्तोष को जन्म देने वाली परिस्थितियाँ क्रान्ति के लिए आवश्यक कारणों को तैयार करती हैं एवं बौद्धिक चेतना बहुजन को उनकी दयनीय परिस्थितियों से मुक्ति पाने के लिए प्रेरित करती हैं। इतिहासकारों का यह मानना था कि सन् 1789 ई० में फ्रांसीसी क्रान्ति बौद्धिक जागरण तथा जनता की आर्थिक कठिनाइयों का परिणाम थी।

फ्रांसीसी क्रान्ति मात्र गोला-बारूद की ही क्रान्ति नहीं थी बल्कि विचारों की भी क्रान्ति मानी जाती है, क्योंकि इस क्रान्ति ने मनुष्य के समक्ष समानता, स्वतंत्रता तथा बन्धुत्व के विचारों को प्रस्तुत किया जो आधुनिक विश्व के कोने-कोने तक फैल चुका था। अत: फ्रांसीसी क्रान्ति मात्र फ्रांस या यूरोप के इतिहास की ही नहीं बल्कि समस्त मानवता के इतिहास में भी एक अति महत्त्वपूर्ण घटना थी। यह क्रान्ति निम्नलिखित कारणों से प्रभावी हुई जो निम्न प्रकार है—

1. **सामाजिक कारण** (Social Causes)—सन् 1789 ई० की फ्रांसीसी क्रांन्ति का अति महत्त्वपूर्ण कारण सामाजिक असमानता था। यूरोप के तत्कालीन फ्रांसीसी समाज में अत्यधिक सामाजिक असमानता फैली हुई थी। वास्तव में यह क्रान्ति मात्र तानाशाही के विरुद्ध नहीं थी अपितु असमानता के विरुद्ध विद्रोह की क्रान्ति थी। उस समय फ्रांसीसी समाज में स्तरीकरण तथा विभाजन का आधार प्राचीन सामन्तवादी व्यवस्था थी जो कि असमानता एवं विशेषाधिकार के सिद्धान्त पर आधारित थी। समाज उस समय निम्न तीन वर्गों में विभाजित था—
   (i) **विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग** (Privileged Class)—उस समय फ्रांस में विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग में सामन्त, कुलीन तथा पादरी आदि शामिल थे। राज्य के लगभग 40% भाग पर इनका अधिकार था, किन्तु ये सभी करों से मुक्त थे। राज्य के समस्त उच्च पदों पर ये कार्य करते थे इस कारण इनकी आय असीमित थी एवं ये विलासमय एवं वैभवपूर्ण

जीवन यापन करते थे। ये प्राय: किसानों से कर व लगानों की वसूली किया करते थे तथा उनसे बेगार लेते थे। पादरियों का अधिकार चर्च के महत्त्वपूर्ण पदों पर होता था जिससे ये चर्च की सम्पत्ति का दुरुपयोग करते थे।

(ii) **मध्यम वर्ग** (Middle Class)—फ्रांस के मध्यम वर्ग का सम्बन्ध व्यापार एवं उद्योगों से था। मध्यमवर्ग के अन्तर्गत बैंकर, साहूकार, शिक्षक, व्यापारी, वकील तथा डॉक्टर आदि आते थे। मध्यम वर्ग के सदस्यों को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। इस वर्ग का किसानों एवं सामान्य जनता से घनिष्ठ सम्बन्ध था यही सम्बन्ध क्रान्ति के दौरान लोगों व उनका सहयोग तथा विश्वास प्राप्त करने में सहायक रहे।

(iii) **सर्वसाधारण वर्ग** (Common Class)—समाज का तीसरा वर्ग सर्वसाधारण जनता का था। यह वर्ग सर्वथा अधिकारहीन था। इस वर्ग में मुख्यत: किसान, मजदूर, शिल्पकार, कारीगर आदि आते थे। इनकी स्थिति दयनीय थी। किसानों की दशा भी शोचनीय थी। किसानों को पादरियों, सामन्तों तथा राज्य को अनेक करों का भुगतान करना पड़ता था। अत: फ्रांसीसी समाज में सब जगह असमानता फैली हुई थी। किसानों को दिनभर जमींदारों की जमीन पर कार्य करना पड़ता था फिर जमींदार अनेक प्रकार से किसानों का आर्थिक शोषण करते थे। जमींदार ही किसानों के मुकदमों का फैसला करते थे और यह इच्छानुसार किसानों पर जुर्माना लगा सकता था। जमींदार किसानों को सख्त दण्ड देते थे। इसके साथ ही जनसाधारण को नागरिक अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया था। इससे सामान्यजन में असन्तोष की भावना उत्पन्न हो गई इसी कारण उन्होंने एक साथ मिलकर निरंकुश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए क्रान्ति का सहारा लिया।

2. **राजनीतिक कारण** (Political Causes)—फ्रांस की क्रान्ति का आधारभूत कारण राजनीतिक ही था। यह वही समय था जब राजनीतिक व्यवस्था निरंकुश, वंशानुगत, स्वेच्छाचारी तथा दैवीय अधिकारों पर आधारित राजतंत्र की थी। लुई चौदहवें का कथन था, "देश की सर्वोच्च सत्ता व्यक्तिगत रूप से मुझ में है, कानून बनाने की शक्ति एक मात्र मेरे में ही विद्यमान है, मेरी प्रजा का अस्तित्व मेरे साथ ही है और समस्त राष्ट्रीय अधिकार केवल मेरे हाथों में ही है।" इस समय दोषपूर्ण शासन व्यवस्था थी। शासक किसी के भी प्रति उत्तरदायी नहीं होता था। प्रेस को भी स्वतन्त्रता नहीं थी कि वह सरकार की आलोचना कर सके। इस क्रान्ति के प्रमुख राजनीतिक कारण निम्नलिखित थे—

(i) **प्रशासनिक अव्यवस्था** (Administrative Disorder)—फ्रांस की शासन व्यवस्था अयोग्य हाथों में थी क्योंकि राज्य के महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पदों को नीलामी द्वारा ऊँचे दामों में बेच दिया जाता था। इन पदाधिकारियों को असीमित अधिकार प्राप्त होते थे। किसी-किसी प्रान्त में राज्यपाल होते थे किसी प्रान्त में कौंसिल की भी व्यवस्था नहीं होती थी। नगरों में नगरसभा होती थी किन्तु प्रत्येक नगरसभा में निर्वाचन प्रणाली एक समान नहीं होती थी। प्रत्येक नगरसभा के लिए पृथक-पृथक नियम बने हुए थे। यदि एक नगर में कोई बात नियमाकूल होती थी तो वहीं दूसरे नगर के लिए उसे गैर-कानूनी माना जाता था। फ्रांस के विभिन्न प्रान्तों में लगभग 400 प्रकार के नियम एवं कानून प्रचलित थे अर्थात् सम्पूर्ण देश के लिए एक संविधान नहीं था।

(ii) **प्रशासन में कुशलता का अभाव** (Lack of Efficiency in Administration)—योग्य प्रशासक के अभाव में धीरे-धीरे प्रशासन का अंत होता गया तथा सैनिक शक्ति भी क्षीण होती गई। लुई चौदहवें ने जो विदेशों में प्रतिष्ठा कमाई थी उसका अंत लुई सोलहवें के शासनकाल तक हो गया।

(iii) **शासकों की निरंकुशता** (Autocracy of Rulers)—फ्रांस में लुई चौदहवें के शासनकाल में स्वेच्छाचारी एकतन्त्र की स्थापना हुई थी। शासक का पद वंशानुगत होता था। सम्राट राजा के दैवी अधिकारों के सिद्धान्त में विश्वास रखता था। वह स्वयं को पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था। फ्रांस के शासकों का मानना था कि यदि राजा दयालु है तो प्रजा का सौभाग्य है, यदि वह अत्याचारी है तो प्रजा को सहन करना पड़ेगा। जिस प्रकार परमात्मा का क्रोध भूकम्पों, आंधियों, तूफानों, अकाल एवं महामारियों तथा सूखा एवं बाढ़ के रूप में प्रकट होता है, उसी प्रकार प्रजा को शासक दण्डित करता है, जेलों में डालता है, जुर्माना लगाता है।

18वीं सदी के अंत तक दैवी अधिकारों का सिद्धान्त प्रभावहीन हो चुका था। यदि सम्राट शक्तिशाली, निपुण, योग्य एवं दूरदर्शी हो तभी निरंकुश एकतन्त्र शासन प्रणाली सफल हो सकती है। किन्तु फ्रांस में लुई पन्द्रहवें एवं लुई सोलहवें के शासनकाल में शासन दुर्बल हो गया था। लुई चौदहवें द्वारा स्थापित निरंकुश एकतन्त्र शासन व्यवस्था उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल तक चलती रही। लुई का मानना था कि 'मैं ही राज्य हूँ, मेरी आज्ञा ही कानून

TOUCH 'n' PASS

है।' सम्राट अपनी इच्छानुसार शासन व्यवस्था चलाता था। उस पर न जनसाधारण, न संसद अंकुश लगा सकता था। उसके निकट सम्बन्धियों को भी असीमित अधिकार प्राप्त थे जिसका वह दुरुपयोग करते थे। सम्राट एक विशेष प्रकार के मुद्रित पत्र (Letters de Cachet) जारी करता था जिस पर सम्राट के हस्ताक्षर या मुद्रा अंकित रहती थी। किसी भी व्यक्ति को इन पत्रों के आधार पर गिरफ्तार किया जा सकता था। जनसाधारण अथवा जनता का जीवन इन मुद्रित पत्रों के कारण सम्राट एवं उसके सम्बन्धियों के हाथों की कठपुतली बन गया था।

(iv) **अपव्यय** (Wastage)—राज्य का व्यय, आय से अधिक था। सम्पूर्ण आय राजदरबार में विलासिता पर खर्च होता था। सम्राट की सेवा हेतु लगभग 1600 सेवक तथा महारानी की सेवा के लिए 500 दासियाँ नियुक्त थी। जिस पर राज्य का अधिकांश धन खर्च कर दिया जाता था। सम्राट के लिए 1800 घोड़े एवं गाड़ियाँ थी। सम्राट अपने शुभचिंतकों को उपहारस्वरूप अपार धन देता था जिससे राजकोष खाली होता गया।

(v) **अव्यवस्थित प्रशासन** (Disorderly Administration)—फ्रांस का शासन दो प्रकार के प्रान्तों में विभाजित था। पहला प्रान्त गवर्नमेंट कहलाता था एवं दूसरा जनरेलिटी कहलाता था। सम्राट इन प्रान्तों में इंटैण्डैण्ट (Intendant) नामक अधिकारी को नियुक्त करता था। ये अधिकारी कुलीन वर्ग से सम्बन्धित होते थे। ग्रामीण पुलिस इनके अधीन होती थी, स्थानीय शासन का वर्णन कहीं भी नहीं मिलता है। जनता एवं शासन के मध्य सम्बन्ध मधुर नहीं थे तथा केन्द्रीयकरण (Centralization) अधिक बढ़ गया था। प्रान्तों एवं केन्द्र में अव्यवस्थित शासन व्यवस्था विद्यमान थी।

(vi) **करों की अधिकता** (Excess of Taxes)—राज्य में करों का भार समान रूप से नहीं था। कुलीन वर्ग को कर नहीं देना होता था जबकि जनसाधारण पर करों का भार अत्यधिक था। कृषकों को अपनी आय का 85 प्रतिशत भाग राज्य चर्च एवं जमींदारों को देना पड़ता था। किसानों को आवासीय स्थिति के अनुसार आय कर भी देना होता था। इन भारी करों के कारण जनसाधारण का राज्य के प्रति विश्वास समाप्त हो चुका था। यही जनता का असंतोष भविष्य में क्रान्ति का कारण बना।

(vii) **लोकसभा का अभाव** (Absence of Lok Sabha)—फ्रांस में कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखने एवं कानून बनाने हेतु लोकसभा का अभाव था। अर्थात् फ्रांस में प्रजातान्त्रिक संस्था नहीं थी। प्रेस एवं जनता को स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी जिसके कारण सम्राट के आदेशों एवं कार्यों की आलोचना नहीं हो पाती थी। इसलिए सम्राट द्वारा लिए जा रहे निर्णय राष्ट्र हित में है अथवा नहीं, इसका पता नहीं चलता था। फ्रांस में एस्ट्टेस जनरल नामक एक राजनैतिक संस्था थी जो तीन भागों में विभाजित थी। ग्रांट एवं टैम्परली के अनुसार, 'तीनों एस्ट्टेस पादरी, कुलीन तथा जनसाधारण अलग-अलग सदनों में बैठते थे। इस तरह से अधिकतर युक्त वर्ग के दो सदन होते थे और जनसाधारण का केवल एक। एस्टेट्स जनरल की कोई महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ न थीं। वे अपनी माँगे तथा सुझाव प्रस्तुत कर सकते थे। फ्रांस की सरकार ने उन्हें कानून बनाने तथा कर लगाने में कोई अधिकार नहीं दिया था। प्रत्येक सदस्य अपने निर्वाचन क्षेत्र से शिकायतों की एक सूची तैयार करके लाता था। प्रत्येक एस्ट्टेस का कर्त्तव्य होता था इन शिकायतों की सूची बना कर अलग से राजा को प्रस्तुत कर देना। इसके पश्चात् उसका काम समाप्त हो जाता था। नि:संदेह फ्रांस की वैधानिक नाव तूफानी समुद्र की लहरों में डोल रही थी।

(viii) **न्यायालयों के अधिकार** (Jurisdiction of Courts)—फ्रांस में 1789 ई० में 17 न्यायालय थे। प्रत्येक न्यायालय में एक रजिस्टर होता था जिस पर कानून लिखा जाता था। सम्राट द्वारा बनाए गए कानून को इस रजिस्टर में लिखा जाता था। जनसाधारण इन कानूनों को मानते थे। फ्रांस में लगभग 400 प्रकार के कानून प्रचलन में थे। किसी प्रान्त में एक कानून नियमानुकूल था तो वही कानून समीप के प्रान्त में गैर-कानूनी था। यदि किसी कानून को न्यायाधीश अनुचित समझता था तो उसे रजिस्टर में लिखकर सम्राट से अनुरोध करते थे कि उन पर विचार करें। सम्राट उन नियमों में संशोधन भी करते थे।

(ix) **राष्ट्रीयता की भावना का अभाव** (Absence of Nationalism)—फ्रांस मध्य काल में छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। राजा एवं सामन्त इन क्षेत्रों में शासन करते थे। 18वीं सदी तक लगभग सभी प्रान्त नष्ट हो चुके थे। लोगों को अपने-अपने प्रान्तों से अधिक लगाव था। उनमें एक राष्ट्र की भावना नहीं थी। अभी भी प्रान्तीय कानून

TOUCH 'n' PASS

प्रचलन में थे। प्रत्येक स्थान पर पृथक-पृथक न्यायप्रणाली एवं कर व्यवस्था थी। इस प्रकार फ्रांस में राष्ट्रीय एकता के अभाव के फलस्वरूप राजनैतिक अराजकता विद्यमान थी। जिससे राष्ट्र का विकास शिथिल पड़ गया था।

(x) **फ्रांस का सैनिक प्रबन्ध** (French Military Management)—फ्रांस का सैनिक प्रबन्ध भी दोषरहित था। कुलीन वर्ग के लोगों को ही प्रशासन में उच्च पदों पर रखा जाता था। लगभग 35,000 अधिकारी फ्रांसीसी सेना में थे जिसमें से लगभग 1171 उच्च अधिकारी थे। इन अधिकारियों पर वार्षिक व्यय लगभग 4 करोड़ 60 लाख होता था। सैनिकों की संख्या सिर्फ 1,35,000 थी जिस पर वार्षिक व्यय 4 करोड़ 40 लाख किया जाता था। सेना का अनुशासन बहुत कठोर था। सिपाहियों को कम वेतन एवं निम्न स्तर का भोजन दिया जाता था। यूरोपीय युद्धों में इंग्लैण्ड के साथ कई युद्धों में फ्रांसीसी सेना पराजित हुई थी जिससे उनका मनोबल कमजोर हो गया था। किन्तु जब फ्रांसीसी सेना अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम में ब्रिटिश सेना के विरुद्ध सफलता प्राप्त करके स्वदेश लौटी तो उनका मनोबल सुदृढ़ हुआ और वह स्वतन्त्रता के नए विचारों से उत्प्रेरित हुए। इन सैनिकों ने धीरे-धीरे गाँवों तक क्रान्ति एवं स्वतन्त्रता का संदेश पहुँचाया।

प्र.6. समाजशास्त्र में औद्योगिक क्रान्ति का आर्थिक जीवन एवं सामाजिक जीवन पर प्रभावों का वर्णन कीजिए।
Describe the effects of industrial revolution on economic life and social life.

उत्तर

औद्योगिक क्रान्ति का आर्थिक जीवन पर प्रभाव
(Effects of Industrial Revolution on Economic Life)

1. **उत्पादन में विशाल वृद्धि** (Huge Increase in Production)—अधिक वृद्धि के साथ पत्थरों का उत्पादन बड़ी मात्रा में तथा शीघ्र होने लगा था। आंतरिक रूप से एवं विदेशों में व्यापार करने हेतु इन औद्योगिक उत्पादों का व्यवसाय के रूप में उपयोग करके तीव्र गति से ये देश धनी बनने लगे। इंग्लैण्ड एक उद्योग प्रधान देश घोषित हो गया। औद्योगिक पूँजी विकसित होने से वहाँ औद्योगिक तथा वाणिज्यिक नियमों का विस्तार हुआ। इन नियमों ने विस्तार करने हेतु अपनी पूँजी की प्रतिभूतियों को बेचना प्रारम्भ कर दिया। अत: उत्पादन के असाधारण विकास हेतु एक नवीन आर्थिक व्यवस्था का जन्म हुआ।
2. **आर्थिक विषमता** (Economic Disparity)—समाज में आर्थिक विषमता औद्योगिक क्रान्ति के कारण अत्यधिक बढ़ गई थी। मजदूर वर्ग की स्थिति और अधिक दयनीय हो गई तथा पूँजीपति आर्थिक रूप से मजबूत एवं धनवान होते गए। श्रमिक वर्ग के लोग अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए बच्चों एवं स्त्रियों को भी काम में लगाने लगे। पूँजीपति श्रमिक वर्ग के लोगों की सुविधाओं के प्रति बिल्कुल उदासीन हो गए थे। मजदूरों को कारखाने बंद होने के कारण काम व मजदूरी नहीं मिल पाती थी जिससे उनका जीविकोपार्जन मुश्किल हो जाता था। वे खाली बैठे रहते थे। यदि कार्य स्थल पर कोई दुर्घटना हो जाती थी तो उसकी क्षतिपूर्ति भी मजदूरों को नहीं दी जाती थी। प्राय: श्रमिकों में एकता की भावना का अभाव था। मजदूरों की स्थिति में सुधार करने के लिए प्रशासन भी कोई कदम नहीं उठाती थी।
3. **श्रमिक वर्ग का उदय** (Rise of the Working Class)—औद्योगिक क्रान्ति होने के पश्चात् एक ऐसे नवीन वर्ग का उदय हुआ जिसका नाम था श्रमिक वर्ग। इस वर्ग की संख्या अत्यधिक थी। यह वर्ग समाज में अपना अलग स्थान रखता था। इस वर्ग के लोगों की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। इस वर्ग के लोग अपने हितों की रक्षा के लिए एकजुट हुए जिससे 'श्रमिक संगठन' विकसित हुए।
4. **समाजवादी विचारधारा का उदय** (Rise of Socialist Ideology)—श्रमिकों या मजदूरों द्वारा आन्दोलन करने का प्रमुख कारण श्रमिकों तथा पूँजीपतियों में बढ़ती आर्थिक विषमता थी। जो मजदूर वर्ग के लोगों को आन्दोलन करने के लिए प्रेरित करता था। इसी आन्दोलन को समाजवादी आन्दोलन कहा गया। समाजवादी आन्दोलन से ही समाज में समानता लाने के लिए प्रयत्न किए गए। कार्ल मार्क्स को समाजवादी विचारधारा को उचित रूप प्रदान करने का श्रेय प्राप्त है। कार्ल मार्क्स के अनेक प्रयासों से ही श्रमिकों (मजदूरों) में समाजवाद की भावना का प्रचार व प्रसार हुआ।
5. **साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद** (Imperialism and Colonialism)—इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति से हुए बड़े पैमाने पर उत्पादन के माल की खपत करने हेतु नए-नए बाजारों की आवश्यकता हुई। इसलिए अंग्रेजों ने नवीन उपनिवेश बनाए तथा धीरे-धीरे अंग्रेजी साम्राज्य पश्चिम से पूर्व तक लम्बे चौड़े क्षेत्र में फैल गया। ऐसा माना जाता था कि अंग्रेजी शासन में सूर्य कभी अस्त नहीं होता था। साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद की इस दौड़ में यूरोप शीघ्र ही अन्य देशों; जैसे— हॉलैण्ड, फ्रांस, स्पेन,

पुर्तगाल, इटली एवं जर्मनी शामिल हो गए। अनेक देशों के निवासियों ने अफ्रीका एवं एशिया व अमेरिका जैसे देशों में उपनिवेशों की स्थापना की जिससे कच्चा माल यूरोप के देशों में पहुँचता था। यहाँ से पक्का माल बनाकर इन्हीं देशों की बाजारों में विक्रय किया जाता था। अत: उपनिवेशों का धन यूरोप के देशों में जाने से शीघ्र ही यूरोप के पूँजीपति सम्पूर्ण विश्व पर छा गए। इससे संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी का उदय हुआ। प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने के दृष्टिकोण से संयोजन (Combination) प्रारम्भ हुआ। इससे उत्पादक संघ जैसे संस्थाओं की स्थापना होने लगी।

6. **उद्योगों के स्थानीकरण में परिवर्तन** (Change in Localisation of Industries)—औद्योगिक क्रान्ति होने के कारण उद्योगों को ऐसे स्थानों पर स्थानान्तरित किए जाने की प्रवृत्ति प्रचलन में आ गई जिससे यातायात के साधनों से कम व्यय हो एवं श्रमिक सरलतापूर्वक उपलब्ध हो जाए।
7. **मध्यम वर्ग का उदय** (Rise of the Middle Class)—औद्योगिक क्रान्ति का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम था समाज में मध्यम वर्ग का उदय होना। उद्योगों में ठेकेदार तथा दलाल श्रमिकों एवं पूँजीपतियों में मध्यस्थता करते थे। ये मध्यम वर्गीय लोग पढ़े-लिखे होने के कारण दफ्तरों, दुकानों एवं विद्यालयों में कार्य करते थे। इनकी संख्या बढ़ने से अधिक ठोस आधार बनता था। हालाँकि राजनीतिक क्रान्ति में मजदूरों की भूमिका रहती है परन्तु अधिकतर नेता मध्यम वर्ग से सम्बन्धित होते हैं। अत: मध्यम वर्ग का विकास ही मूल रूप से सामाजिक विकास का आधार है।
8. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की मात्रा, प्रकृति एवं दिशाओं में परिवर्तन** (Changes in the Volume, Nature and Directions of International Trade)—उत्पादन अधिक मात्रा में होने के कारण उत्पादित माल को बड़ी मात्रा में निर्यात करने एवं इसके बदले कच्चे माल तथा खाद्यान्न आदि का आयात करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार होने लगा।
9. **तेजी व मन्दी का प्रादुर्भाव** (Outbreak of Boom and Bust)—समाज में कभी तेजी का दौर तो कभी मंदी का दौर उसके आर्थिक सन्तुलन को अव्यवस्थित कर देता है।
10. **बैंक व्यवस्था** (Banking System)—औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप अनेक व्यापारिक कम्पनियों की स्थापना हुई इससे पूँजी की माँग में भी वृद्धि हुई और पूँजी को सुरक्षित रखने हेतु बैंकों की स्थापना की गई।
11. **मजदूरों को लाभ** (Benefits to Labourers)—नवीन उत्पादन प्रणालियों के विकास से अनेक मजदूरों को एक स्थान पर काम मिलने लगा। इससे मजदूरों में सामूहिक शक्ति का विकास हुआ।
    अत: औद्योगिक क्रान्ति से मजदूरों को निम्नलिखित लाभ हुए जो निम्न प्रकार हैं—
    (i) काम का समय निश्चित हो गया।
    (ii) मजदूरी में काम के अनुसार वृद्धि हुई।
    (iii) मजदूरों को स्वयं के मानसिक विकास हेतु पर्याप्त समय मिलने लगा।
    श्रमिक सदस्यों से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की समस्याओं को सुलझाने हेतु मजदूर संघों का विकास किया गया। इससे श्रमिक अपनी समस्याओं के समाधान हेतु सहायता की माँग कर सकते थे।
12. **गृह उद्योगों का पतन** (Decline of Home Industries)—गृह उद्योग-धन्धों पर औद्योगिक क्रान्ति का सबसे बुरा प्रभाव पड़ा, क्योंकि इससे गृह उद्योग धन्धों का पतन हो गया। नवीन उत्पादन प्रणाली आने से पूर्व प्रत्येक घर में एक छोटे पैमाने पर उद्योग चलता था। औद्योगिक क्रान्ति ने इन लघु उद्योग-धन्धों को एक विशाल रूप प्रदान किया। उद्योगों की प्रतिस्पर्धा में लघु-उद्योगों का धीरे-धीरे पतन होने लगा। वर्तमान समय में लघु उद्योग-धन्धे पूर्ण रूप से समाप्त हो गए हैं।
13. **बेरोजगारी** (Unemployment)—नवीन उत्पादन प्रणाली का द्वितीय कुप्रभाव बेरोजगारी की समस्या थी। गृह उद्योगों के पतन होने से इसमें कार्य कर रहे सदस्य बेरोजगारी का शिकार हो गए। औद्योगिक क्रान्ति आने से पूर्व जो कार्य अनेक सदस्यों द्वारा मिलकर सम्पन्न किया जाता था, वही कार्य अब कुछ व्यक्तियों द्वारा मशीनों की सहायता से किया जाने लगा था। इसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी की समस्या बढ़ गई।

औद्योगिक क्रान्ति के सामाजिक जीवन पर प्रभाव
(Impacts of Industrial Revolution on Social Life)

1. **जनसंख्या में वृद्धि** (Increase in Population)—औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप देश की आय में पर्याप्त वृद्धि संभव हुई। कृषि क्षेत्र में तकनीकी प्रयोगों ने खाद्य उत्पादन को बढ़ाकर भोजन की आवश्यकताओं को पूर्ण किया। उत्तम

TOUCH 'n PASS

आहार तथा विकसित स्वास्थ्य व औषधि विज्ञान के कारण नवजात शिशु तथा जीवन की औसत आयु में वृद्धि संभव हुई। जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु दर में कमी आई और जनसंख्या में वृद्धि हुई।

2. **नए सामाजिक वर्गों का उदय** (Rise of New Social Classes)—औद्योगिक क्रान्ति के कारण मुख्य रूप से तीन नवीन वर्गों का उदय हुआ—
   (i) **प्रथम (पूँजीवादी वर्ग)**—इसके अन्तर्गत पूँजीपति तथा व्यापारी वर्ग सम्मिलित थे।
   (ii) **द्वितीय (मध्यम वर्ग)**—द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत दलाल, कारखानों के निरीक्षक, ठेकेदार, इंजीनियर तथा वैज्ञानिक आदि शामिल थे।
   (iii) **तृतीय (श्रमिक वर्ग)**—तृतीय वर्ग में मजदूर व किसान आते हैं जो अपने श्रम एवं कौशल से उत्पादन करते थे।
3. **स्त्रियों की स्थिति में सुधार** (Improvement in the Status of Women)—औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप स्त्रियों की स्थिति में अनुकूल परिवर्तन हुए। जिससे स्त्रियों को अधिक स्वतन्त्रता मिलने लगी। शिक्षा का स्तर महिलाओं में काफी अधिक बढ़ा। यह वही समय था जब महिलाएँ कारखानों तथा कार्यालयों में कार्य करने लगी थी।
4. **परम्पराओं में परिवर्तन** (Change in Traditions)—समाज में औद्योगिक क्रान्ति के कारण तीव्र गति से परिवर्तन होने प्रारम्भ हो गए थे। उदाहरण के लिए, रहन-सहन के तरीके, परम्परागत रीति-रिवाज, साहित्य, कला, धार्मिक विश्वास तथा पोषक आदि सभी में परिवर्तन हो गए थे। औद्योगिक क्रान्ति के कारण समाज के एक नवीन रूप का उदय हुआ जिससे मनुष्य अंधविश्वासों को त्यागकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कार्य करने एवं सोच-समझकर कार्य करने में विश्वास करने लगा था। आवागमन एवं संचार के साधनों में विकास हुआ। लोगों के विचारों में परस्पर आदान-प्रदान होने लगा। इससे लोगों ने समाज में व्याप्त बुराइयों को समझा एवं उसे दूर करने का प्रयास किया।
5. **संयुक्त परिवार प्रथा का विघटन** (Disintegration of Joint Family System)—ग्रामीण समाज के लोग कार्य की खोज में शहर में आने लगे तथा शहरों में ही रहकर कार्य करने लगे जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार प्रणाली पूरी तरह अस्त-व्यस्त हो गई। अत: संयुक्त परिवार के स्थान पर एकल परिवार विकसित हो गए। इन छोटे परिवारों का लगाव मात्र युगल दम्पत्तियों तक ही सीमित रहता है 'हम दो हमारे दो' के सिद्धान्त का प्रभाव विकसित हुआ।
6. **मानवीय सम्बन्धों में गिरावट** (Decline in Human Relations)—परम्परागत तथा भावनात्मक मानवीय सम्बन्धों का स्थान आर्थिक सम्बन्धों ने ग्रहण कर लिया था। जिससे श्रमिकों के कठिन परिश्रम से उद्योगपति और अधिक धनवान एवं समृद्ध हो रहे थे, उन श्रमिकों से ये उद्योगपति बिल्कुल भी परिचित नहीं थे और न ही परिचित होने की कोशिश ही करते थे। उद्योगों में इस्तेमाल होने वाली मशीनों तथा तकनीकी ने इंसान को भी एक मशीन का हिस्सा बना दिया। इससे मानवीय सम्बन्धों में गिरावट स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होती है।
7. **नैतिक मूल्यों में गिरावट** (Decline in Moral Values)—समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास औद्योगिक क्रान्ति के कारण ही हुआ। भौतिक प्रगति के साथ शराब एवं जुए का प्रचार-प्रसार बढ़ा। अधिक शारीरिक परिश्रम करने से श्रमिकों को शारीरिक व मानसिक थकावट हो जाती थी, इसी थकावट को मिटाने के लिए श्रमिकों ने शराब व नशे का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। इतना ही नहीं औद्योगिक केन्द्रों पर वेश्यावृत्ति फैलने लगी जिससे बढ़ती हुई उपभोक्तावादी प्रवृत्ति से अपराध तथा भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला।
8. **शहरी जीवन में गिरावट** (Decline in Urban Life)—नगरों में अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि के कारण निम्न वर्ग के लोगों को भोजन, पेयजल तथा आवास आदि का अभाव होने लगा था। अत्यधिक जनसंख्या के कारण कल कारखानों के आस-पास ही कच्चे मकान या बस्तियों को बनाकर ये श्रमिक वर्ग रहते थे। वहाँ गंदे पानी के निकास की उचित व्यवस्था का अभाव होने से गंदगी व बीमारियाँ अधिक फैलती थीं। जिसके परिणामस्वरूप स्वस्थ जीवन में गिरावट होने लगी थी।
9. **बाल-श्रम** (Child Labour)—औद्योगिक क्रान्ति ने बाल मजदूरी को बढ़ावा दिया तथा बच्चों से उनका 'बचपन' छीन लिया। वर्तमान समाज में इस समस्या से पूरी दुनिया संघर्ष कर रही है।
10. **श्रमिकों के महत्त्व में कमी** (Reduction in the Importance of Workers)—औद्योगिक क्रान्ति के अस्तित्व में आने के पश्चात् उत्पादन क्षमता के स्तर में वृद्धि हुई जिससे अधिकाधिक मशीनों का प्रयोग किया जाने लगा। इससे श्रमिकों का महत्त्व भी कम हो गया तथा उनकी स्वतन्त्रता भी धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। अब वे उद्योगपतियों की इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य हो गए थे।

TOUCH 'n' PASS

11. **महिला आन्दोलनों का जन्म** (Birth of Women's Movement)—औद्योगिक क्रान्ति होने के कारण अधिक श्रमिकों की आवश्यकता हुई जो मात्र पुरुष वर्ग से पूर्ण नहीं हो पा रही थी। इसलिए श्रमिक वर्ग में स्त्रियों की भागीदारी संभव हुई। कुछ समय में महिलाओं में भी चेतना जागृत हुई और वे भी अपने अधिकारों की माँग करने लगी थीं। जिसके परिणामस्वरूप महिला आन्दोलनों का जन्म हुआ।
12. **आवश्यकताओं में वृद्धि** (Increase in Requirements)—औद्योगिक क्रान्ति होने के बाद समाज की आवश्यकताओं में अत्यधिक वृद्धि होने लगी। औद्योगिक क्रान्ति ने उपभोग की अनेक वस्तुओं का उत्पादन किया एवं उसे जन सामान्य के उपयोग हेतु उपलब्ध करवाया। उस समय समाज में चमक-दमक, तड़क-भड़क एवं भोग विलास की वस्तुओं की माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी। साधन सम्पन्न व्यक्ति अपनी मान प्रतिष्ठा तथा प्रभाव को स्थायी बनाए रखने तथा शान-शौकत से रहने के लिए निम्न साधनों का उपयोग करने लगा था। इससे समाज अत्यधिक प्रभावित हुआ एवं इसका प्रभाव सामान्य लोगों पर भी स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होता है। सामान्य व्यक्ति भी उत्तम जीवन पाने की कोशिश करने लगा।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. समाजशास्त्र के उद्‌भव हेतु उत्तरदायी कारकों में शामिल नहीं है–
(क) ऐतिहासिक कारक (ख) धार्मिक कारक (ग) बौद्धिक कारक (घ) सामाजिक कारक
उत्तर (ख) धार्मिक कारक

प्र.2. समाजशास्त्र की उत्पत्ति का श्रेय किसे दिया जाता है?
(क) इमाईल दुर्खीम (ख) मैक्स वेबर (ग) ऑगस्ट कॉम्टे (घ) पारसन्स
उत्तर (ग) ऑगस्ट कॉम्टे

प्र.3. 'द रिपब्लिक' (The Republic) ..... की अनमोल कृति मानी जाती है।
(क) प्लेटो (ख) अरस्तू (ग) सिसरो (घ) सेन्ट ऑगस्टाइन
उत्तर (क) प्लेटो

प्र.4. समाजशास्त्र शब्द का प्रयोग ऑगस्ट कॉम्टे ने किस वर्ष में किया?
(क) 1837 (ख) 1838 (ग) 1842 (घ) 1843
उत्तर (ख) 1838

प्र.5. समाजशास्त्र एक विज्ञान है, क्योंकि इसमें उपयोग होता है–
(क) ऐतिहासिक पद्धति का (ख) वैज्ञानिक पद्धति का
(ग) सांख्यिकी पद्धति का (घ) तुलनात्मक पद्धति का
उत्तर (ख) वैज्ञानिक पद्धति का

प्र.6. 'प्रिन्सीपल्स ऑफ सोशियोलॉजी' किसकी रचना है?
(क) ऑगस्ट कॉम्टे (ख) हरबर्ट स्पेन्सर (ग) इमाईल दुर्खीम (घ) मैक्स वेबर
उत्तर (ख) हरबर्ट स्पेन्सर

प्र.7. डॉ० राधाकमल मुखर्जी की अध्यक्षता में उत्तर प्रदेश के लखनऊ विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का अध्ययन कब आरम्भ हुआ?
(क) 1919 (ख) 1915 (ग) 1921 (घ) 1916
उत्तर (ग) 1921

प्र.8. ऑगस्ट कॉम्टे की प्रमुख कृति मानी जाती है—
(क) पॉजिटिव फिलॉसफी (ख) द रिपब्लिक
(ग) प्रिन्सीपल्स ऑफ सोशियोलॉजी (घ) इथिक्स तथा पॉलिटिक्स
उत्तर (क) पॉजिटिव फिलॉसफी

TOUCH 'n PASS

प्र.9. फ्रांस की क्रान्ति का समय माना जाता है—
(क) 1780 (ख) 1789 (ग) 1770 (घ) 1750

उत्तर (ख) 1789

प्र.10. रेलगाड़ी के इंजन का आविष्कार किया था—
(क) हम्फरी डेवी (ख) न्यूकामन (ग) अब्राहम डर्बी (घ) जॉर्ज स्टीफेन्सन

उत्तर (घ) जॉर्ज स्टीफेन्सन

प्र.11. निम्नलिखित में से कौन-सी विशेषता प्राथमिक समूह से संबंधित है?
(क) व्यक्तियों का बड़ा समूह (ख) घनिष्ठ एवं आमने-सामने का मेल-मिलाप
(ग) अपनत्व की भावना का अभाव (घ) औपचारिक संबंध

उत्तर (ख) घनिष्ठ एवं आमने-सामने का मेल-मिलाप

प्र.12. वह प्रक्रिया, जिसके तहत एक संस्कृति प्रभावशाली संस्कृति के साथ विलीन हो जाती है, ... कहलाती है।
(क) अनुकूलन (ख) संस्कृति संक्रमण (ग) आत्मसात्करण (घ) समायोजन

उत्तर (ग) आत्मसात्करण

प्र.13. इनमें से कौन-सी सामाजिक अक्षमता है?
(क) कुओं से जल लेने पर प्रतिबंध (ख) उच्च जातियों से संबंध रखने पर प्रतिबंध
(ग) शिक्षा प्राप्त करने पर प्रतिबंध (घ) ये सभी

उत्तर (घ) ये सभी

प्र.14. सामाजिक विनिमय सिद्धांत किसके द्वारा प्रस्तुत किया गया?
(क) जॉर्ज होमन्स (ख) जी०एच०मीड (ग) इरविंग गोफमैन (घ) पीटर एम० ब्लाउ

उत्तर (क) जॉर्ज होमन्स

प्र.15. रैडक्लिफ-ब्राउन ने सामाजिक संरचना और ..... में अंतर नहीं किया।
(क) सामाजिक व्यवस्था (ख) सामूहिक अनुभूति (ग) सामाजिक संबंध (घ) सामाजिक संघर्ष

उत्तर (क) सामाजिक व्यवस्था

प्र.16. समाज को विभिन्न परतों में विभाजित करने की प्रक्रिया कहलाती है–
(क) समाजीकरण (ख) विभेदीकरण (ग) स्तरीकरण (घ) असमानता

उत्तर (ग) स्तरीकरण

प्र.17. एक सामाजिक मानदंड के लिए क्रिया-उन्मुख है–
(क) स्वीकार्यता (ख) नियंत्रण (ग) अनुरूपता (घ) अनुमोदन

उत्तर (ग) अनुरूपता

प्र.18. समाजशास्त्र की कौन-सी शाखा समाज में समस्याओं से संबंधित है?
(क) सामाजिक आकृति विज्ञान (ख) अपराध विज्ञान
(ग) समाज विकृति विज्ञान (घ) कानून

उत्तर (ग) समाज विकृति विज्ञान

प्र.19. भूमिका संबंधी अपेक्षा से संबद्ध पुरस्कार और दण्ड को क्या कहा जाता है?
(क) मानदंड (ख) मूल्य (ग) प्रतिबंध (घ) रुढ़ियाँ

उत्तर (ग) प्रतिबंध

TOUCH 'n PASS

UNIT-II

ऑगस्ट कॉम्टे

Auguste Comte

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. ऑगस्ट कॉम्टे की समाजशास्त्रीय अवधारणाओं एवं सिद्धान्तों को संक्षेप में लिखिए।
Write in short of Auguste Comte's Sociological Concepts and Principles.

उत्तर ऑगस्ट कॉम्टे की प्रमुख समाजशास्त्रीय अवधारणाएँ एवं सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

1. चिन्तन की तीन अवस्थाओं का नियम (Law of three States of thought)।
2. सामाजिक विज्ञानों का वर्गीकरण और उनका संस्तरण (Classification and hicrarchy of Social Science)।
3. समाजशास्त्र एक नवीन विषय (Sociology a new Subject)।
4. सामाजिक स्थिति विज्ञान तथा सामाजिक गति विज्ञान (Social Situational Science and Social Dynamics)।
5. मानवता धर्म (Humanity Religion)।
6. प्रत्यक्षवाद (Positivism)।

प्र.2. 'समाजशास्त्र एक नवीन विज्ञान' से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by 'Sociology a new Science'?

उत्तर प्रारम्भ में कॉम्टे द्वारा समूह जीवन का अध्ययन करने वाले विज्ञान को सामाजिक भौतिकशास्त्र (Social Physics) कहा गया। किन्तु कुछ समय पश्चात् इसे समाजशास्त्र के नाम से पुकारा जाने लगा। सन् 1838 ई. में कॉम्टे द्वारा सर्वप्रथम 'समाजशास्त्र' शब्द का प्रयोग किया गया था इसलिए इन्हें 'समाजशास्त्र' का जनक माना जाता है। विज्ञानों के वर्गीकरण में 'समाजशास्त्र' को कॉम्टे द्वारा एक नवीनतम विज्ञान माना गया है। जो गणित तथा अन्य प्रमुख विज्ञानों पर निर्भर है। अत: किसी विशेष विज्ञान के ज्ञान की प्राप्ति में उन विज्ञानों का ज्ञान होना अति आवश्यक है जिन पर वह विज्ञान आश्रित है।

प्र.3. हरबर्ट स्पेन्सर की प्रमुख रचनाएँ संक्षेप में लिखिए।
Write in short main works of Herbert Spencer.

उत्तर हरबर्ट स्पेन्सर की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. सोशल स्टैटिक्स (Social Statics), 1850
2. फर्स्ट प्रिंसिपल्स (First Principles), (1863)
3. प्रिंसिपल्स ऑफ साइकोलॉजी (Principles of Psychology), 1870-72
4. प्रिंसिपल्स ऑफ़ सोशियोलॉजी (Principles of Sociology), 1873
5. डिस्क्रिप्टिव सोशियोलॉजी (Descriptive Sociology), 1890
6. नैतिकता का सिद्धान्त (Principles of Ethics)
7. संस्थागत राजनीति (The Political Institutions)।

प्र.4. स्पेन्सर की समाजशास्त्रीय अवधारणाओं एवं सिद्धान्तों को संक्षेप में लिखिए।
Write in short of Spencer's Sociological Concepts and theories.

उत्तर 1. उद्विकास का नियम (Law of Evolution)
2. समाज एक सावयव के रूप में (Society is an Organisms)
3. सामाजिक नियन्त्रण के साधन (Agencies of Social Control)
4. सैनिक और औद्योगिक समाज (Militant and Industrial Society)।

TOUCH 'n' PASS

प्र.5. स्पेन्सर के उद्विकास के कितने सिद्धान्त है?
How many Spencer's theory of Evolution?

उत्तर स्पेन्सर ने सामाजिक उद्विकास सिद्धान्त का प्रतिपादन अपने दो प्रमुख सिद्धान्तों (भौतिक उद्विकास एवं प्राणीशास्त्रीय उद्विकास) को ज्ञात कर और उन्हें समाज पर लागू करके किया। इस प्रकार स्पेन्सर ने उद्विकास से सम्बन्धित तीन प्रमुख सिद्धान्त दिए हैं—

1. भौतिक उद्विकास का सिद्धान्त (Theory of Physicals Evolution),
2. प्राणीशास्त्रीय उद्विकास सिद्धान्त (Theory of Biological Evolution)
3. सामाजिक उद्विकास सिद्धान्त (Theory of Social Evolution)।

प्र.6. ऑगस्ट कॉम्टे को समाजशास्त्र का अध्ययन करने के लिए किसने प्रभावित किया?
Who influenced Auguste Comte to study sociology?

उत्तर वैज्ञानिक पद्धति ने कॉम्टे को बहुत प्रभावित किया और उन्होंने तर्क दिया कि लोगों और समाज का अध्ययन औपचारिक टिप्पणियों जैसे वैज्ञानिक सिद्धांतों का उपयोग करके किया जाना चाहिए। उनके विचारों की जड़ें 'तर्क के युग' के नाम से पहचाने जाने वाले काल में थीं, जहाँ यह माना जाता था कि समाज का अध्ययन वस्तुनिष्ठ और तर्कसंगत दृष्टि से किया जा सकता है।

प्र.7. ऑगस्ट कॉम्टे के तीन स्तर कौन कौन-से हैं?
What are the three levels of Auguste Comte?

उत्तर ऑगस्ट कॉम्टे के तीन स्तरों का नियम (Auguste Comte's law of three levels)

1. धार्मिक स्तर में समाज की सभी घटनाओं की व्याख्या धार्मिक आधार पर की जाती है। मनुष्य प्रत्येक घटना के पीछे किसी-ना-किसी अलौकिक शक्ति की कल्पना करता है।
2. तात्विक स्तर यह अवस्था धार्मिक अथवा वैज्ञानिक अवस्था के बीच की है।
3. प्रत्यक्षवाद स्तर इसका अर्थ वैज्ञानिक है जिसमें ब्रहमाण्ड अपरिवर्तनशील प्राकृतिक नियमों द्वारा व्यवस्थित तथा निर्देशित होता है।

प्र.8. कॉम्टे के अनुसार समाजशास्त्र क्या है?
What is sociology according to Comte?

उत्तर कॉम्टे के अनुसार समाजशास्त्र उन सभी बौद्धिक, भौतिक एवं नैतिक नियमों की खोज व स्थापना करता है, जिसके द्वारा समाज में प्रगति की जा सके। इसलिए कॉम्टे के समाजशास्त्र को सामाजिक प्रगति का विज्ञान भी कहा गया है।

प्र.9. कॉम्टे के सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत क्या हैं?
What are Comte's principles of social change?

उत्तर एक अलग दृष्टिकोण का पालन करते हुए, फ्रांसीसी दार्शनिक और सामाजिक सिद्धांतकार ऑगस्ट कॉम्टे ने 'तीन चरणों का नियम' आगे बढ़ाया, जिसके अनुसार मानव समाज एक धार्मिक चरण से, जिस पर धर्म का प्रभुत्व है, एक आध्यात्मिक चरण के माध्यम से प्रगति करता है, जिसमें अमूर्त सट्टा सोच सबसे अधिक होती है।

प्र.10. ऑगस्ट कॉम्टे का पूरा नाम क्या है?
What is the full name of Auguste Comte?

उत्तर ऑगस्ट कॉम्ट का पूरा नाम इन्सिडोर ऑगस्ट मेरिए फ्रैंकोइस जेवियर कॉम्टे था। कॉम्टे का जन्म 19 जनवरी 1798 ई० में हुआ था। उनका जन्म मॉन्टेपेलियर नामक स्थान पर हुआ था।

प्र.11. थियोलॉजिकल स्टेज क्या है?
What is Theological stage?

उत्तर कॉम्टे के मतानुसार, धार्मिक स्तर (Theological Stage) में ये तीनों अवस्थाएँ (प्रेतवाद, बहुदेवत्ववाद और एकेश्वरवाद) एक के बाद एक के क्रम से आती हैं। कॉम्टे द्वारा बताई गयी चिन्तन की यह दूसरी अवस्था एक संक्रमणकालीन अवस्था है।

TOUCH n PASS

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. ऑगस्ट कॉम्टे की रचनाओं का उल्लेख कीजिए।
Explain the works of Auguste Comte.

उत्तर

ऑगस्ट कॉम्टे की रचनाएँ
(Works of Auguste Comte)

ऑगस्ट कॉम्टे ने अनेक मूल ग्रन्थों की रचना की है। इनकी कुछ प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. **'ए प्रोस्पेक्ट्स ऑफ द साइंटिफिक वर्क रिक्वायर्ड फॉर द ऑर्गनाइजेशन्स ऑफ सोसाइटी**—1822 (A Prospects of the Scientific Work Required for the Reorganisation of Society-1822)—यह कॉम्टे की प्रथम रचना है। इसमें सामाजिक पुनर्निर्माण का ढाँचा प्रदान किया गया तथा उसको व्यावहारिक स्वरूप देने हेतु अपने महत्त्वपूर्ण विचारों को प्रदान किया। सेण्ट साइमन ने इस पुस्तक की भूमिका प्रस्तुत की थी।
2. **'द कोर्स ऑफ पॉजिटिव फिलॉसफी'** 1830-42 (The Course of Positive Philosophy 1830-42)—इस पुस्तक का प्रकाशन छः भागों में हुआ था। इसमें कॉम्टे की प्रमुख अवधारणा प्रत्यक्षवाद को प्रस्तुत किया गया है। इसका लक्ष्य सामाजिक अध्ययन को वैज्ञानिक स्वरूप देना था। इस पुस्तक में उन्होंने चिन्तन की तीन अवस्थाओं-विज्ञानों का वर्गीकरण, समाजशास्त्र की प्रकृति, आवश्यकता आदि का वर्णन किया है। कॉम्टे की रचनाओं में यह सर्वाधिक उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण माना जाता है।
3. **'सिस्टम ऑफ पॉजिटिव पॉलिटी'** 1851-54 (System of Positive Polity 1851-54)—इस पुस्तक का प्रकाशन चार भागों में किया गया। इस पुस्तक में अपने सैद्धान्तिक विचारों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न कॉम्टे द्वारा किया गया। इस कृति की रचना का लक्ष्य मानवता के एक नये धर्म का प्रतिपादन कर सामाजिक पुनर्निर्माण का एक व्यावहारिक मानचित्र प्रस्तुत करना था, परन्तु इसी पुस्तक के कारण कॉम्टे के विचारों की वैज्ञानिकता में शंका की जाने लगी। जॉन स्टुअर्ट मिल लिखते हैं कि 'इस पुस्तक में कॉम्टे ने अपने वैज्ञानिक चिंतन की स्वयं ही निर्ममता से हत्या कर दी।' यह प्रतीत होता है कि कॉम्टे ने अपनी महिला मित्र श्रीमती डी० वॉक्स से प्रेरित होकर मानवता के धर्म को सामाजिक पुनर्निर्माण का प्रमुख आधार मानना शुरू कर दिया। इस कृति में उन्होंने स्त्रियों की प्रशंसा की है तथा नैतिक व दैवीय गुणों को प्रस्तुत किया है।
4. **'कैचिस्म ऑफ पॉजिटिविज्म'** 1852 (Catechism of Positivism-1852)—इसको कॉम्टे की अंतिम कृति माना जाता है। इसका प्रकाशन 1852 में हुआ था। इस रचना में कॉम्टे ने जनतंत्र को प्रोत्साहित किया व प्रेस तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता को सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक माना है।

प्र.2. समाजशास्त्र की शाखाओं का उल्लेख कीजिए।
Explain the branches of Sociology.

उत्तर

समाजशास्त्र की शाखाएँ
(Branches of Sociology)

कॉम्टे ने समाजशास्त्र को दो प्रमुख भागों में वर्गीकृत किया है—

1. सामाजिक स्थिति विज्ञान (Social Statics)
2. सामाजिक गतिविज्ञान (Social Dynamics)

1. **सामाजिक स्थिति विज्ञान** (Social Statics)—सामाजिक स्थिति विज्ञान समाजशास्त्र की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत सामाजिक संरचना का अध्ययन किया जाता है, इसमें समाज के विभिन्न क्रियाओं, अंगों, प्रतिक्रियाओं तथा नियमों का अध्ययन शामिल होता है।

बोगार्डस के मतानुसार, 'सामाजिक स्थिति विज्ञान समाजशास्त्र की वह शाखा है जो सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न अवयवों के मध्य क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं की खोज करता है, परन्तु यह उस मूलभूत आन्दोलन में कोई रूचि नहीं रखता जो सदैव उन्हें शनैः शनैः संशोधित करता रहता है।'

TOUCH n PASS

कॉम्टे का विचार है कि एक शान्तिपूर्ण तथा स्वस्थ सामाजिक व्यवसाय करने हेतु समाज के सभी अंगों में एकमतता का होना अति आवश्यक है अर्थात् समाज विभिन्न अंगों से मिलकर बनी हुई एक रचना है जिसके प्रत्येक अंग का संतुलित बना रहना अति आवश्यक है। यह सन्तुलन तभी सम्भव है जब समाज की विशिष्ट इकाइयों में परस्पर संघर्ष तथा विरोध न होकर परस्पर समन्वय स्थापित रहे अर्थात् समस्त अंगों में निर्भरता एवं सामंजस्य बना रहे। इसके साथ ही समस्त व्यक्तियों में नैतिक एवं बौद्धिक एकात्मकता की भावना विद्यमान है। कॉम्टे के जन्म के समय यूरोप की सामाजिक व्यवस्था अनुकूल न थी। समाज में चारों ओर अव्यवस्था का बोल-बाला था। निर्बल वर्ग का शोषण बलशाली व्यक्तियों द्वारा एक व्यापक स्तर पर किया जा रहा था। निर्बल वर्ग प्रतिशोध की प्रतीक्षा में थे। समाज में सर्वत्र अराजकता एवं अन्याय का साम्राज्य फैला हुआ था। समाज में पूर्ण रूपेण बौद्धिकता का ह्रास हो चुका था। कॉम्टे के मतानुसार, सामाजिक स्थिति विज्ञान का यह दायित्व है कि वह इस विषय को स्पष्ट करे कि समाज में एकात्मकता का भाव कैसे उत्पन्न हो।

कॉम्टे कैथोलिक धर्म में स्थापित एकमतता से अत्यधिक प्रभावित थे। कॉम्टे के विचारों के अनुसार कैथोलिक धर्म में एकमतता सम्बन्धी समस्त आवश्यक तत्त्व विद्यमान है। कैथोलिक धर्म में विज्ञान, कला तथा उद्योगों का सन्तुलित विकास तथा समन्वय पाया जाता है अर्थात् कैथोलिक धर्म एक ऐसी धार्मिक संतुलित व्यवस्था है। जिसके अन्तर्गत राजा, प्रजा, स्वामी तथा दास, धनी एवं निर्धन आदि समस्त वर्ग हेतु सम्मानित स्थान है। सामाजिक स्थिति विज्ञान समाजशास्त्र का वह पक्ष है जो सामाजिक स्थिरता को बनाए रखने के लिए सामाजिक संतुलन एकमतता के मूलभूत सिद्धान्तों तथा प्रेरक शक्तियों का वैज्ञानिक अध्ययन करवाता है।

2. **सामाजिक गतिविज्ञान** (Social Dynamics)—सामाजिक प्रगति एवं विकास का अध्ययन सामाजिक गतिविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। कॉम्टे के विचारों के अनुसार, 'यह आवश्यक तथा निरन्तर मानवता की क्रिया का विज्ञान है।' (It is the science of the necessary and continuous moment of humanity)।

   सामाजिक गतिविज्ञान का उल्लेख करते हुए बोगार्डस लिखते हैं, 'सामाजिक गतिविज्ञान प्रगति के नियमों पर विचार करता है।' (Social Dynamics considers the Law of Progress) अत: सामाजिक गतिविज्ञान के अन्तर्गत वे नियम व सिद्धान्त शामिल होते हैं जिसके अनुसार समाज का परिवर्तनशील तथा क्रमिक विकास होता है।

कॉम्टे के अनुसार सामाजिक परिवर्तन एक निरन्तर प्रक्रिया है। सामाजिक गतिविज्ञान के अन्तर्गत व्यक्ति ने किन अवस्थाओं तथा परिस्थितियों को पार करके वर्तमान स्थिति को प्राप्त किया है। मात्र इसका अध्ययन ही नहीं करवाता अपितु वह सामाजिक भविष्य को बताने का प्रयास करता है। वे मानव समाज को एक निश्चित क्रम के आधार पर ही प्रगति करते हुए देखते हैं। अत: इसमें उन सिद्धान्तों एवं नियमों की खोज की जाती है जो मानव समाज में संवर्द्धन तथा संशोधन करते हैं। जो मानव प्रगति की दिशा को निर्धारित करते हैं। ऐतिहासिक तथ्यों का संकलन सामाजिक गतिविज्ञान इतिहास के अन्तर्गत किया जाता है। कॉम्टे के अनुसार, सामाजिक गतिविज्ञान का यह दावा है कि मृत सदैव जीवित मनुष्यों पर शासन करते हैं एवं मनुष्य उत्तरोत्तर धार्मिक होता जा रहा है।

प्र.3. कॉम्टे द्वारा समाजशास्त्र की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
Explain the characteristics of Sociology by Comte.

उत्तर

समाजशास्त्र की विशेषताएँ
(Characteristics of Sociology)

कॉम्टे द्वारा समाजशास्त्र की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया गया है जो निम्न प्रकार हैं—

1. **एक अमूर्त विज्ञान** (An Abstract Science)—कॉम्टे द्वारा प्रस्तुत समाजशास्त्र एक अमूर्त विज्ञान है, अत: समाज का अध्ययन करने का प्रमुख विषय सैद्धान्तिक होना आवश्यक है। अत: इसकी रुचि तथ्यों पर निर्भर न रहकर नियमों व सिद्धान्तों की खोज में होनी चाहिए। कॉम्टे के कथनों के अनुसार, समाजशास्त्र समाज का एक गुणात्मक अथवा अमूर्त विज्ञान है। यह मात्र आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा वैधानिक एवं किसी विशिष्ट प्रकार की घटनाओं का विज्ञान नहीं है अपितु समाज में कार्यरत मूल सिद्धान्तों की खोज करने वाला विज्ञान है। कॉम्टे का मत है कि समाज में व्याप्त अराजकता का कारण सामाजिक अव्यवस्था तथा प्रगति के नियमों के प्रति व्यक्तियों की अज्ञानता है, इसलिए समाजशास्त्र का प्रमुख कार्य समाज में व्याप्त अज्ञानता को मिटाकर सिद्धान्तों व नियमों की खोज करना है।
2. **एक समन्वयात्मक विज्ञान** (A Coordinate Science)—समाज का समग्र रूप से अध्ययन करने के कारण कॉम्टे समाजशास्त्र को एक समन्वयात्मक विज्ञान मानते हैं। इनका मत है सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष एक-दूसरे से

TOUCH 'n' PASS

सम्बन्धित तथा निर्भर होते हैं। इसी कारण इनको पृथक करके अध्ययन करना सम्भव नहीं है। समाजशास्त्र एक समन्वयात्मक विज्ञान है क्योंकि वह अपने से पूर्व समस्त विज्ञानों-प्राणीशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, खगोलशास्त्र एवं गणितशास्त्र द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं नियमों पर आधारित है। कॉम्टे के विचारों के अनुसार, 'हम इस अन्तिम विज्ञान में तब तक कोई प्रगति नहीं कर सकेंगे जब तक हमें बाहरी दुनिया और व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में पर्याप्त अमूर्त ज्ञान, इन नियमों का सामाजिक घटनाओं के विशिष्ट नियमों पर पड़ने वाले प्रभाव को परिभाषित करने के लिए प्राप्त न हो जाए।'

3. **निष्पक्ष अध्ययन** (Objective Study)—कॉम्टे के अनुसार, समाजशास्त्र में समस्त सामाजिक तथ्यों का निष्पक्ष एवं वैषयिक अध्ययन कराया जाता है क्योंकि समाजशास्त्र द्वारा करवाये जाने वाले अध्ययन में भावनाओं का कोई स्थान नहीं होता है। समाजशास्त्र के द्वारा समाज के अध्ययन में यह आवश्यक नहीं कि इसके अध्ययन में समस्त वैज्ञानिक उपकरणों तथा प्रणालियों का प्रयोग किया जाए, जिसका प्रयोग मुख्यत: अन्य विज्ञानों में किया जाता है। समाजशास्त्र के अध्ययन में ऐतिहासिक पद्धति को अधिक उपयोगी माना जाता है।
4. **मानव प्रकृति का ज्ञान** (Knowledge of Human Nature)—कॉम्टे का कथन है कि समाजशास्त्रियों को समाज का अध्ययन करने से पूर्व विभिन्न विषयों जैसे-भौतिकशास्त्र, खगोलशास्त्र, रसायनशास्त्र तथा प्राणीशास्त्र के सामान्य परन्तु महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की जानकारी होनी आवश्यक है जिससे मनुष्य की मूल प्रकृति तथा स्वभाव के विषय में यथार्थ एवं समुचित ज्ञान प्राप्त हो सके। क्योंकि मनुष्य ही सामाजिक अस्तित्व का मुख्य आधार है इसलिए मनुष्य के विषय में सम्पूर्ण जानकारी प्रदान करने वाले विज्ञान-'प्राणीशास्त्र' की सहायता समाजशास्त्र के अध्ययन में ली जा सकती है। समाजशास्त्र मानव की वास्तविक प्रकृति को भली-भाँति समझने योग्य है।
5. **भविष्यवाणी करने वाला विज्ञान** (Predictive Science)—कॉम्टे का मत है कि विज्ञान में भविष्यवाणी करने की क्षमता निहित होती है। जो विज्ञान भविष्यवाणी करने में सक्षम नहीं होता, वास्तव में वह विज्ञान नहीं होता है। वर्तमान सामाजिक घटनाओं, परीक्षणों तथा निरीक्षणों के आधार पर समाजशास्त्र भविष्य की ओर इंगित करता है। समाजशास्त्र वर्तमान ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं के आधार पर भविष्य के विषय में भविष्यवाणी करने की क्षमता रखता है। अन्य विज्ञानों की तुलना में समाजशास्त्र में भविष्यवाणी करने की क्षमता कम है, किन्तु फिर भी यदि परिस्थितियाँ सामान्य रहें तो समाजशास्त्रीय नियम भी अन्य नियमों की तरह सत्य प्रमाणित होता है तथा इसके द्वारा की गई भविष्यवाणी भी सत्य सिद्ध होगी।

प्र.4. हरबर्ट स्पेन्सर के जीवन पर टिप्पणी लिखिए।
Write the note on life sketch of Herbert Spencer.

उत्तर समाजशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत कॉम्टे के विचारों को अधिक स्पष्ट व उन्नत रूप से प्रस्तुत करने में हरबर्ट स्पेंसर (इंग्लैण्ड के विद्वान) का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने सामाजिक विचारधारा को एक नया मोड़ प्रदान किया। प्राणीशास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर समाज का विश्लेषण प्रस्तुत करने का भी स्पेन्सर ने प्रयास किया। कॉम्टे ने समाजशास्त्र के जिस नक्शे को बनाया, स्पेन्सर ने उसमें रंग भरने का काम किया। समाजशास्त्र के संस्थापक के रूप में कॉम्टे के साथ स्पेन्सर का नाम भी महत्त्वपूर्ण रहा है।

जीवन परिचय (Life Sketch)

हरबर्ट स्पेन्सर का जन्म इंग्लैण्ड के डरबी नामक स्थान पर 27 अप्रैल, 1820 को हुआ था। स्पेन्सर के माता-पिता की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण स्पेन्सर उच्च शिक्षा या विश्वविद्यालयी शिक्षा प्राप्त न कर सके। उनकी रुचि बचपन से ही जीवशास्त्र में थी इसलिए वे कीड़े-मकोड़ों को बड़े शौक से पाला करते थे। प्राकृतिक विज्ञान, साहित्य, इतिहास आदि जैसे अन्य विषयों में कोई व्यवस्थित प्रशिक्षण न पाने के बाद भी उन्होंने जैविक तथा मनोविज्ञान पर उच्चकोटी की कृतियाँ लिखी। यंत्रशास्त्र में रुचि होने के कारण स्पेन्सर सन् 1837 में बर्मिंघम तथा लंदन के प्रमुख इंजीनियर बने। सन् 1848 में 'Economist' नामक पत्रिका के उपसम्पादक बनने की इच्छा के कारण उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद उन्होंने चार वर्षों तक इस कार्य को करने के पश्चात् सन् 1850 में 'Social Statics' नाम की महत्त्वपूर्ण कृति प्रकाशित करवाई।

चार्ल्स डार्विन की पुस्तक 'ओरिजन ऑफ स्पीशिस' (The Origin of Species, 1859) का स्पेंसर पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। स्पेन्सर ने डार्विन के विकास सम्बन्धी विचारों को सामाजिक विकास के संदर्भ में देखा। डार्विन द्वारा प्रतिपादित 'प्राकृतिक

चयन' (Natural Selection) तथा योग्यतम की उत्तरजीविता' (Survival of the fittest) सिद्धान्तों के मूलभूत विचारों की उन्होंने सर्वप्रथम विवेचना की है।

स्पेन्सर की 'First Principles' कृति सन् 1863 में प्रकाशित हुई जिसमें उद्विकास सम्बन्धी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। कुछ समय बाद स्पेन्सर एक प्रसिद्ध विचारक के रूप में विख्यात हुए। समाजशास्त्र के क्षेत्र में कॉम्टे की विचारधाराओं को उन्नत, स्पष्ट एवं विस्तृत रूप प्रदान करने में स्पेन्सर ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्पेन्सर ने 19वीं शताब्दी की सामाजिक विचारधाराओं को एक नवीन मोड़ प्रदान किया। उन्होंने विषयों की एक व्यापक श्रेणी में अपना योगदान दिया, जिनमें नीतिशास्त्र, धर्म, मानविकी, अर्थशास्त्र, राजनैतिक सिद्धांत, दर्शनशास्त्र, जीव विज्ञान, समाजशास्त्र व मनोविज्ञान शामिल हैं। 8 सितम्बर, 1903 में 83 वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया।

प्र.5. सामाजिक उद्विकास का अर्थ एवं परिभाषाएँ लिखिए।
Write the meaning and definitions of Evolution.

उत्तर

उद्विकास का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Evolution)

उद्विकास (Evolution) की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'Evolvere' से मानी जाती है। 'E' का अर्थ 'बाहर की ओर' और 'volvere' का अर्थ 'फैलने' से है। इस प्रकार 'Evolution' और Evolvere' अर्थात उद्विकास का अर्थ किसी वस्तु के फैलने या बढ़ने की प्रवृत्ति से है, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से उद्विकास का यह अर्थ पूर्ण नहीं है। वैज्ञानिक सन्दर्भ में उद्विकास की प्रक्रिया में एक सरल वस्तु क्रमिक परिवर्तन के कारण जटिल रूप धारण कर लेती है। उदाहरण के लिए, एक कोशिका (cell) का मानव शिशु के रूप में परिवर्तित हो जाना या एक बीज का अंकुरित होकर वृक्ष का रूप धारण करना उद्विकास है। अत: जब किसी वस्तु की संरचना, गुण और कार्य में एक निश्चित क्रम में निरन्तर परिवर्तन होता है तो वह उद्विकास कहलाता है।

स्पेन्सर के अनुसार, "उद्विकास कुछ तत्त्वों के एकीकरण तथा उससे सम्बन्धित वह गति है जिसके दौरान कोई तत्त्व एक अनिश्चित तथा असम्बद्ध समानता से निश्चित और सम्बद्ध भिन्नता में बदल जाता है।" अत: उद्विकास में कोई वस्तु समता से विषमता की ओर परिवर्तित होती है, इससे वस्तु धीरे-धीरे सरल से जटिल हो जाती है।

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार, "जब परिवर्तन में निरन्तरता ही नहीं वरन् परिवर्तन की एक दिशा भी हो, तो ऐसे परिवर्तन से हमारा तात्पर्य उद्विकास से होता है।" इस प्रकार मैकाइवर ने आन्तरिक शक्तियों द्वारा होने वाले परिवर्तन को उद्विकास माना है।

ऑगबर्न एवं निमकॉफ के अनुसार, एक निश्चित दिशा में होने वाला परिवर्तन' को उद्विकास माना है।

उपर्युक्त आधार पर स्पष्ट है कि किसी एक विशेष दिशा में होने वाला वह परिवर्तन उद्विकास है, जो वस्तु की आन्तरिक शक्तियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है तथा इससे वस्तु की जटिलता में वृद्धि होती है।

प्र.6. उद्विकास की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
Explain the characteristics of evolution.

उत्तर

उद्विकास की विशेषताएँ
(Characteristics of Evolution)

उद्विकास की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन निम्नलिखित रूप में किया गया है—

1. **सरल से जटिल** (From Simple to Complex)—उद्विकास की प्रक्रिया सदैव सरलता से जटिलता की ओर होती है। शुरुआत में कोई वस्तु सामान्य होती है उसका धीरे-धीरे स्वरूप जटिल होता रहता है। उदाहरण के लिए, प्रारम्भ में भ्रूण केवल एक मांस का पिण्ड होता है, उसके हाथ, पैर, नाक, कान, आँख, आदि धीरे-धीरे दिखायी देने लगते हैं।
2. **सतत् एवं मन्द गति से परिवर्तन** (Change at Slow Speed with Continuity)—उद्विकास में परिवर्तन सतत् एवं मन्द गति से होता है। परिवर्तन की गति धीरे होने के कारण उसे देख पाना सम्भव ही नहीं है।
3. **विभेदीकरण की प्रक्रिया के रूप में** (As a Process of Differentiation)—उद्विकास की प्रक्रिया विभेदीकरण के रूप में भी स्पष्ट होती है। उद्विकास की प्रक्रिया में जीव अथवा समाज के भिन्न-भिन्न अंगों में विभिन्नता पैदा होती है। धीरे-धीरे वस्तु के अंग या शाखाएँ स्पष्ट एवं अलग होती जाती हैं।
4. **सार्वभौमिक प्रक्रिया** (Universal Process)—सार्वभौमिक का अर्थ है, प्रत्येक स्थान पर फैला हुआ। उद्विकास भी सभी स्थानों व कालों में पाया जाता है यह भी एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है।

TOUCH 'n PASS

5. **पुनरावृत्ति का अभाव** (Lack of Recurrence)—उद्विकास के चरणों में पुनरावृत्ति का अभाव होता है। जो चरण बीत जाता है, उसकी पुन: प्राप्ति नहीं की जा सकती, जैसे एक शिशु युवा होने के बाद पुन: शिशु की अवस्था प्राप्त नहीं कर सकता।
6. **निश्चित चरण एवं क्रमिक परिवर्तन** (Definite Steps and Successive Change)—उद्विकासीय परिवर्तन कुछ निश्चित चरणों एवं क्रमानुसार होता है। अर्थात् प्रथम-द्वितीय-तृतीय चरण में परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए, एक बालक पहले युवा होगा फिर वृद्ध, न कि वृद्ध पहले और फिर युवा।
   (i) उद्विकास वस्तु की आन्तरिक वृद्धि के कारण होता है।
   (ii) उद्विकास के दौरान वस्तु अथवा समाज में संख्यात्मक की अपेक्षा गुणात्मक परिवर्तन होता है।
   (iii) उद्विकास निम्न से ऊपर के स्तर की ओर बढ़ता है।
   (iv) उद्विकास एक निश्चित दिशा में होने वाला परिवर्तन है।

प्र.7. सामाजिक डार्विनवाद का वर्गीकरण दीजिए।
Give the classification of Social Darwinism.

उत्तर

सामाजिक डार्विनवाद का वर्गीकरण
(Classification of Social Darwinism)

स्पेन्सर का सामाजिक डार्विनवाद निम्नांकित चार भागों में बँटा हुआ है—

1. **अस्तित्व के लिए संघर्ष का सिद्धान्त** (Principle of Survival of the Fittest)—स्पेन्सर के अनुसार प्रकृति शक्तिशाली के लिए कमजोर को नष्ट कर देती है। प्रकृति का यह सिद्धान्त है कि जो योग्य हो उसके लिए स्थान बनाया जाए तथा अयोग्य से मुक्ति प्राप्त की जाए। स्पेन्सर के मतानुसार, सामाजिक जगत में भी अस्तित्व के लिए संघर्ष का सिद्धान्त उसी प्रकार लागू किया जाना चाहिए जिस प्रकार जैव जगत में लागू होता है। प्राकृतिक प्रवरण का यही नियम है कि प्रकृति अयोग्य को समाप्त कर देती है तथा उनका चयन करती है, जो योग्य हो। स्पेन्सर ये मानते हैं कि समाज में अस्तित्व के लिए संघर्ष आवश्यक है। जब समाज में जनसंख्या बढ़ जाती है, तो समाज के सदस्यों को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए दो मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ता है, जिसमें एक ओर समाज के अन्य लोग तथा एक ओर स्वयं प्रकृति ही होती है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ शारीरिक तथा अन्य लक्षण पाए जाते हैं, जो कि या तो संघर्ष के अनुकूल होते हैं या तो प्रतिकूल होते हैं। वहीं व्यक्ति संघर्ष में विजय पाकर जीवित रहते है, जो कि जीवन संघर्ष में सहायक लक्षणों को धारण करते हैं।
2. **अहस्तक्षेप का नियम** (Principle of Non-Interference)—स्पेन्सर के अनुसार, 'सामाजिक डार्विनवाद व्यक्तिवाद का पोषक है तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप के नियम को मानता है।' यह नियम राज्य द्वारा व्यक्ति की किसी भी प्रकार की गतिविधि को अस्वीकार करता है। इसके अनुसार राज्य को अपने धन को उन कार्यों में खर्च करना चाहिए जिनसे कि श्रमिकों को कार्य में सहायता के लिए मशीनों आदि के निर्माण कार्यों पर करना चाहिए न कि शिक्षा प्रदान करने, सफाई, डाक, लोगों के स्वास्थ्य के लिए। स्पेन्सर के अनुसार, 'राज्य तो एक जॉइन्ट कम्पनी की तरह है जिसका कार्य केवल बाह्य आक्रमणों से नागरिकों की रक्षा करना तथा उनके अधिकारों की रक्षा करना है।' स्पेन्सर के अहस्तक्षेप नियम के अनुसार यदि प्रत्येक व्यक्ति को राज्य के दूसरे लागों के अधिकारों का उल्लंघन किए बिना अपने वैयक्तिक हितों की पूर्ति करने की छूट दी जाए तो सामाजिक अर्थव्यवस्था का विकास समुचित रूप में होगा तथा प्राकृतिक प्रवरण के नियम के आधार पर अयोग्य व्यवस्था तथा संस्थाएँ समाप्त हो जाएँगी तथा योग्यतम व्यवसाय और आर्थिक संस्थाएँ ही जीवित बचेंगी।
3. **युद्ध का सिद्धान्त** (Principle of War)—स्पेन्सर के अनुसार, युद्ध के माध्यम से सामाजिक डार्विनवाद अपनी मूर्त अवस्था को प्राप्त करता है। विभिन्न समाज परस्पर युद्ध करते रहते हैं क्योंकि समाज के भीतर भी लोगों में अस्तित्व के लिए संघर्ष स्पष्ट परिलक्षित होता है। विभिन्न राष्ट्रों के मध्य युद्ध चाहे पारस्परिक विरोध तक सीमित हो या अस्त्रों-शस्त्रों के माध्यम से हो, उनमें जीवन के लिए संघर्ष की शृंखला व्यक्त होती है।
4. **सामाजिक उद्विकास सरलता से जटिलता की ओर** (Social Evolution from Simplicity to Complexity)— स्पेन्सर के अनुसार, सामाजिक डार्विनवाद में सामाजिक उद्विकास सरल समाज से जटिल समाज

TOUCH 'n' PASS

की ओर होता है। समाज का उद्विकास विभिन्न चरणों में होता है। इस प्रकार डार्विन के सिद्धान्त को समाज में लागू करके स्पेन्सर ने सामाजिक डार्विनवाद को जन्म दिया है।

प्र.9. प्राणीशास्त्रीय उद्विकास सिद्धान्त का उल्लेख कीजिए।
Explain the theory of Biological Evolution.

उत्तर

प्राणीशास्त्रीय उद्विकास सिद्धान्त
(Theory of Biological Evolution)

प्राणी या जीव जगत पर स्पेन्सर द्वारा अपने उद्विकास के सिद्धान्त को लागू करके यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया कि समस्त प्राणियों को अपने वर्तमान समय के इस स्वरूप को प्राप्त करने में अनेक या असंख्य वर्ष लग गए थे। इस सम्बन्ध में स्पेन्सर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि आरम्भ में वनस्पति एवं प्राणियों के मध्य कोई अन्तर नहीं था, परन्तु उद्विकास के फलस्वरूप प्राणी जगत एवं वनस्पति जगत परस्पर एक-दूसरे से पृथक-पृथक हो गए। विकास के प्रारम्भ में जो जीव था उसके भीतर जीवन के अतिरिक्त न तो कोई रूप था तथा न कोई आकार। समय बीतने के साथ-ही-साथ उसका रूप परिवर्तित हुआ एवं उसी के विकसित रूप में ही हम भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव एवं वनस्पतियों को अपनी नजरों के सामने देख रहे हैं।

स्पेन्सर ने प्राणीशास्त्रीय उद्विकास के सन्दर्भ में 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' (Struggle For Existence) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रकृति के समस्त जीव अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु संघर्षरत् हैं। एक जीव को अन्य जीवों से एवं प्रकृति से भी अपनी रक्षा करनी होती है। इसके लिए जीवों को अपने भौतिक जगत के विभिन्न जीवों तथा प्रकृति से स्वयं की रक्षा करनी होती है। अत: जीवों को अपने भौतिक पर्यावरण से अनुकूलन करना पड़ता है। जो प्राणी प्रकृति से संतुलन स्थापित कर लेते हैं उन प्राणियों को प्रकृति द्वारा चयनित कर लिया जाता है। अत: प्रकृति भी उन्हीं प्राणियों को जीवन हेतु चुन लेती है। अनुकूलन स्थापित करने में अक्षम प्राणियों को प्रकृति द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। इस प्रकार स्पेन्सर द्वारा 'प्राकृतिक पर्यावरण का सिद्धान्त' (Theory of Natural Selection) को प्रतिपादित किया गया। अत: जीवित रहने के लिए प्रत्येक जीव स्वयं को पर्यावरण के अनुसार अनुकूलित करने का प्रयास करता रहता है एवं जो इसके योग्य हो जाता है वही बचता है (Survival of the Fittest)।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रत्यक्षवाद से क्या तात्पर्य है? विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
Discuss in detail what is the meaning of Positivism?

उत्तर

प्रत्यक्षवाद
(Positivism)

प्रत्यक्षवाद का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Positivism)

ऑगस्ट कॉम्टे जो फ्रांस के विचारक थे, उन्हें प्रत्यक्षवाद का जनक कहा जाता है। प्रत्यक्षवाद कॉम्टे की अध्ययन की पद्धति है। इनका विचार है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड 'अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियमों द्वारा व्यवस्थित तथा निर्देशित होता है जिसे धर्म या तत्त्व के आधार पर नहीं वरन् विज्ञान की विधियों द्वारा समझा जा सकता है। वैज्ञानिक विधियाँ निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग तथा वर्गीकरण की एक व्यवस्थित कार्यपद्धति होती है। अत: वैज्ञानिक विधियों के द्वारा सब कुछ समझना तथा उससे ज्ञान प्राप्त करना ही 'प्रत्यक्षवाद' कहलाता है। समाजशास्त्र में प्रत्यक्षवादी उपागम उस व्यवहार पर बल देता है, जिसे प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। इस उपागम के आधार पर जिन कारकों को प्रकट रूप में देखा नहीं जा सके, जैसे—भावनाएँ, अर्थ, आदि महत्त्वपूर्ण नहीं है तथा यह भ्रम उत्पन्न करने वाले प्रतीत हो सकते हैं।

कॉम्टे के अनुसार, 'निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण पर आधारित वैज्ञानिक विधियों के द्वारा सब कुछ समझना और उससे ज्ञान प्राप्त करना ही प्रत्यक्षवाद है।'

कॉम्टे का विचार है कि निरीक्षण, अनुभव, प्रयोग तथा वर्गीकरण की प्रणाली द्वारा न सिर्फ प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन सम्भव है, बल्कि सामाजिक घटनाओं का भी अध्ययन सम्भव है क्योंकि समाज भी प्रकृति का एक अंग है, इसमें भी घटित होने वाली घटनाएँ कुछ निश्चित नियमों पर घटित होती हैं, उसी प्रकार सामाजिक घटनाएँ भी कुछ निश्चित नियमों पर आधारित होती हैं।

TOUCH 'n PASS

प्रत्यक्षवाद की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह स्वयं को धर्म तथा तात्विक विचारों से दूर रखने का प्रयत्न करता है, क्योंकि इनकी अध्ययन पद्धति वैज्ञानिक नहीं हो सकती है। प्रत्यक्षवाद कल्पना या ईश्वरीय महिमा के आधार पर नहीं बल्कि निरीक्षण, परीक्षण तथा प्रयोग की व्यवस्थित कार्य प्रणाली के आधार पर सामाजिक घटनाओं की व्याख्या करता है। कॉम्टे की प्रत्यक्षवाद की विचारधारा बहुत सूक्ष्म और सीमित नहीं है। इस विचारधारा में ही उनके प्रमुख समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों जैसे ज्ञान के विकास के त्रि-स्तरीय नियम, विज्ञान का वर्गीकरण, समाजशास्त्र की व्याख्या, सामाजिक पुनर्निर्माण का सिद्धान्त आदि की चर्चा की है। अत: यह स्पष्ट है कि प्रत्यक्षवाद कॉम्टे की रचनाओं का केन्द्र बिन्दु है। प्रत्यक्षवाद एक जीवन दर्शन या मानव धर्म भी है। उन्होंने बताया जिस प्रकार प्राणी विज्ञान के अन्तर्गत जीवित प्राणियों का अध्ययन किया जाता है, उसी प्रकार समाजशास्त्र सामाजिक सावयव अथवा सावयवी संरचना का अध्ययन करता है। प्रत्यक्षवाद में वस्तुनिष्ठता पर विशेष बल दिया जाता है क्योंकि इसके बिना वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालना किसी भी प्रकार से संभव नहीं है। वस्तुनिष्ठता का तात्पर्य है—घटनाओं का अध्ययन ठीक उसी प्रकार से करना जिस रूप में वे होती हैं। कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद केवल विज्ञान न होकर यह धर्म भी है और वह है 'मानवता का धर्म'। क्योंकि धर्म का भी अन्तिम व परम उद्देश्य मानव-कल्याण है।

कॉम्टे ने समाजशास्त्र को विज्ञान बताया है—

कॉम्टे के अनुसार, प्रत्यक्षवाद प्रणाली के अन्तर्गत सर्वप्रथम हम—

1. अध्ययन करने वाले विषय का चुनाव करते हैं, तत्पश्चात्
2. निरीक्षण द्वारा उस विषय से सम्बन्धित प्रत्यक्ष होने वाले समस्त तथ्यों को एकत्रित करते हैं, और
3. तत्पश्चात् इन तथ्यों का विश्लेषण करके सामान्य विशेषताओं के आधार पर इनको विभाजित करते हैं और अंत में,
4. उस विषय से सम्बन्ध रखने वाला कोई निष्कर्ष निकालते हैं। इस प्रकार निरीक्षण, परीक्षण और वर्गीकरण प्रत्यक्षवाद की आधारशिला है।

प्रत्यक्षवाद की विशेषताएँ (Characteristics of Positivism)

प्रत्यक्षवाद की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **सामाजिक घटनाएँ निश्चित नियमों पर आधारित होती हैं** (Events are Based on Certain Rules)—कॉम्टे के अनुसार जिस प्रकार प्राकृतिक घटनाएँ (पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा, ऋतु चक्र, भूकम्प, ज्वालामुखी का विस्फोट आदि) कुछ निश्चित नियमों के द्वारा होती हैं, उसी प्रकार सामाजिक घटनाओं का संचालन कुछ निश्चित नियमों में होता है। जिस तरीके से अवलोकन व परीक्षण के द्वारा प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन किया जा सकता है, उसी प्रकार सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित नियमों को भी अवलोकन एवं परीक्षण द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।
2. **वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग** (Use of Scientific Method)—कॉम्टे के अनुसार प्रत्यक्षवाद में घटनाएँ अनुमान पर आधारित नहीं होती हैं तथा न ही उन्हें धार्मिक, तात्विक या अलौकिक आधार पर समझा जाता है बल्कि इसमें घटनाओं का अवलोकन एवं परीक्षण किया जाता है तथा उनका यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया जाता है। ईश्वरी इच्छा या दैवीय विधान का प्रत्यक्षवाद में कोई स्थान नहीं है।
3. **वास्तविक ज्ञान** (Exact Knowledge)—प्रत्यक्षवाद का सम्बन्ध सिर्फ वास्तविक ज्ञान से है, यहाँ विश्वास, अनुभव या अनुमान का कोई स्थान नहीं है। यह पद्धति पूर्ण रूप से परीक्षणों पर आधारित निष्कर्ष प्रस्तुत करती है। यहाँ अनुमान, संयोग का कोई स्थान नहीं है, वह किसी भी निरपेक्ष विचार को स्वीकार नहीं करता, क्योंकि सामाजिक जीवन में परिवर्तन स्वाभाविक प्रक्रिया है।
4. **प्रत्यक्षवाद और अनीश्वरवाद** (Positivism and Atheism)—कॉम्टे ने अपनी पुस्तक 'पॉजिटिव पालिटी' में प्रत्यक्षवाद तथा ईश्वरीय अवस्थाओं में पाए जाने वाले चिंतन के स्तर की भिन्नता के बारे में बताया है। उनका मानना है प्रत्यक्षवादी चिंतन या पद्धति ईश्वरीय चिंतन की पद्धति के विपरीत है, परन्तु वह प्रत्यक्षवादियों को अनीश्वरवादी मानने से इन्कार करते हैं। उनका मत है कि प्रत्यक्षवाद का अलौकिकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। अत: ईश्वरीय विश्वासों से इनकी तुलना करने का कोई औचित्य नहीं है।
5. **ज्ञान से सम्बन्ध** (Relation to Knowledge)—प्रत्यक्षवाद का सम्बन्ध ज्ञान से है, अज्ञान और अप्रत्यक्ष से नहीं। प्रत्यक्षवाद में ऐसी घटनाओं का अध्ययन नहीं किया जाता है, जिसे हम प्रत्यक्ष रूप से देख न सकते हों। इसका उद्देश्य अप्रत्यक्ष और अज्ञात शक्ति की खोज करना नहीं है। यह निरीक्षण योग्य घटनाओं के अध्ययन से सम्बद्ध है।

TOUCH 'n PASS

6. **धर्म एवं विज्ञान का समन्वय** (Harmony of Religion and Science)—कॉम्टे का प्रत्यक्षवाद धर्म एवं विज्ञान का मिश्रण है। कॉम्टे विज्ञान को साध्य नहीं बल्कि अध्ययन एवं प्रगति का एक साधन मानता है। इनके अनुसार प्रत्यक्षवाद एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है, जिसका मुख्य उद्देश्य समस्त मानव जाति का भौतिक, बौद्धिक एवं नैतिक उत्थान तथा जनकल्याण में वृद्धि चाहता है। अत: कॉम्टे के प्रत्यक्षवाद में धर्म एवं विज्ञान में परस्पर संघर्ष नहीं अपितु सम्बन्ध पाया जाता है।

प्रत्यक्षवाद के प्रमुख विभाग (Main Divisions of Positivism)

कॉम्टे द्वारा प्रत्यक्षवाद के तीन विभागों का वर्णन किया गया जो निम्नवत् हैं—

1. **विज्ञानों का दर्शन** (Philosophy of the Science)—इसमें प्रत्यक्षवादी विभाग मानवमात्र को जनकल्याण व समाज सुधार के उद्देश्य से मानवीय प्रयत्नों व श्रम के लिए जागरूकता की सूचना देता है। इस विभाग की यह मान्यता है कि मानव स्वयं अपने भाग्य का निर्माण करता है। इस दर्शन के अन्तर्गत खगोलशास्त्र, गणितशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, प्राणीशास्त्र एवं नीतिशास्त्र सम्मिलित किये जाते हैं।
2. **वैज्ञानिक धर्म एवं नीति** (Scientific Religion and Ethics)—प्रत्यक्षवादी धर्म मानव मात्र का धर्म है अत: इसका सम्बन्ध किसी अलौकिक अथवा दैवीय सत्ता से नहीं माना जाता है। प्रत्यक्षवादी धर्म में नैतिक नियमों का मिश्रण परोपकार तथा दूसरों की सेवा के लिए अधिक से अधिक कुशल बनने के लिए बौद्धिक, शारीरिक व शक्तियों का उन्नयन करने पर जोर दिया जाएगा।
3. **प्रत्यक्षवादी राजनीति** (Positive Politics)—कॉम्टे द्वारा प्रतिपादित प्रत्यक्षवादी राजनीति का मौलिक लक्ष्य युद्ध के भय को समाप्त कर यूरोप के समस्त राज्यों को सम्मिलित कर एक मित्र राष्ट्र (Common Wealth) की स्थापना करना है।

सारांश के रूप में कॉम्टे द्वारा प्रत्यक्षवाद को एक विज्ञान, एक धर्म एवं एक राजनीति के रूप में स्वीकार किया है। एक विज्ञान के रूप में अनुभव, अवलोकन, परीक्षण व विभाजन पर बल दिया गया है। धर्म की भूमिका में प्रत्यक्षवाद समाज की भौतिक, बौद्धिक एवं नैतिक प्रगति चाहता है व अधिक से अधिक रूप में लोकसेवा करना चाहता है। एक राजनीति के रूप में प्रत्यक्षवाद का उद्देश्य युद्ध को विराम देकर विश्व तथा मुख्य रूप से यूरोप के राज्यों का एक राष्ट्र मण्डल बनाना है। समाज में परिवर्तन हेतु यह हिंसात्मक उपायों का विरोध है।

प्र.2. कॉम्टे के त्रिस्तरीय नियम का वर्णन कीजिए।
Describe the conte's law of three stages.

उत्तर

कॉम्टे का त्रिस्तरीय नियम
(Comte's Law of Three Stages)

परिचय (Introduction)

कॉम्टे ने त्रिस्तरीय सिद्धान्त का प्रतिपादन स्वयं की पुस्तक 'दी कोर्स इन पॉजिटिव फिलॉसफी' में किया। कॉम्टे का यह नियम सामाजिक उद्विकास (Social Evaluation) की प्रकृति को स्पष्ट करने से सम्बन्धित है। प्रत्येक प्रतिभा स्वयं के पर्यावरण की देन होती है। ज्ञान के विकास का त्रि-स्तरीय नियम सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया तथा समाज की उन्नति की व्याख्या क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करती है। व्यक्ति के ऊपर समाज के प्रभुत्व को कॉम्टे स्वीकार करते हैं, इनका विचार कि मानव जीवन का विकास और मानव विचारों में परिवर्तन सामूहिक जीवन के कारण होता है। यह नियम कॉम्टे के उस विचार को मान्यता प्रदान करता है, जिसमें उनके विचार थे कि समाज का विकास कुछ निश्चित नियमों के माध्यम से होता है।

कॉम्टे की बौद्धिक विलक्षणता का प्रमाण इस बात से ही हो जाता है कि उन्होंने इस नियम का प्रतिपादन अल्पायु में ही कर दिया था। तीन स्तरों के नियम का वर्णन करते हुए कॉम्टे ने बताया कि व्यक्ति के चिन्तन करने के तीन स्तर होते हैं, अर्थात् अलग-अलग समाजों अथवा कालों में व्यक्ति विभिन्न मानसिक अवस्थाओं से गुजरते हुए चिन्तन तथा विकास के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं। कॉम्टे का मत था कि प्रत्येक समाज में अधिकांश व्यक्तियों का मस्तिष्क लगभग एक समान रूप से चिन्तन करता है। इन तीन स्तरों के नियम की चर्चा करते हुए कॉम्टे ने लिखा है कि 'हमारे ज्ञान की प्रत्येक शाखा तीन विभिन्न सैद्धान्तिक अवस्थाओं से होकर गुजरती है, जिन्हें हम आध्यात्मिक अथवा धार्मिक अवस्था, अर्द्ध-तात्विक अवस्था एवं प्रत्यक्षवादी अवस्था कह सकते हैं'।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि मानव ज्ञान में विकास तीन स्तरों के माध्यम से होता है और ये तीन स्तर या अवस्थाएँ क्रमश: अग्रलिखित हैं—

TOUCH n PASS

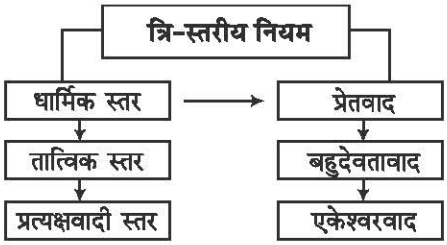

धार्मिक स्तर (Theological Stage)

यह समाज की प्राथमिक अवस्था थी। इस स्तर पर धर्म का अधिक प्रभाव था। व्यक्ति सभी घटनाओं को ईश्वर एवं धर्म के सन्दर्भ में समझने का प्रयास करता था। विश्व की प्रत्येक क्रिया का आधार ईश्वर और धर्म को ही माना गया। उस समय विभिन्न स्थानों पर धर्म के भिन्न रूप जैसे बहुदेववाद, एकदेववाद या प्रकृति की पूजा का प्रचलन था। कॉम्टे के विचार थे, आरम्भ में मानव मस्तिष्क अत्यधिक विकसित नहीं था अथवा उस अवस्था का ज्ञान धार्मिक रूप में था। इसका अर्थ यह है कि उस समय मनुष्य समस्त घटनाओं का वर्णन अलौकिक शक्ति के आधार पर करता था। अत: मानवीय ज्ञान में सिर्फ आस्था एवं विश्वास के तत्त्व मौजूद थे एवं विवेक का अभाव था। अत: मानव किसी घटना के पीछे हुए कार्य कारण सम्बन्ध के बारे में जान ही नहीं पाता था। बल्कि प्रत्येक घटित होने वाली घटना के पीछे ईश्वरीय शक्ति को जिम्मेदार मानता था। हम यह नहीं मान सकते हैं कि इस काल में वैज्ञानिक ज्ञान विद्यमान नहीं थे। मानव ने उस समय पेड़ की दो टहनियों के घर्षण को देखकर स्वयं इस प्रक्रिया के द्वारा आग उत्पन्न की जिससे उसके वैज्ञानिक ज्ञान होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। परन्तु इस तरह के ज्ञान सीमित मात्रा में थे तथा धार्मिक ज्ञान अधिक था। कॉम्टे ने चिन्तन के इस स्तर को तीन विभिन्न उप-स्तरों में वर्गीकृत किया है। जो इस प्रकार हैं—

1. **जीवित सत्तावाद या प्रेतवाद** (Fetishism)—कॉम्टे के इस स्तर में प्राकृतिक चीजों को मानवीकृत किया जाता है। विभिन्न प्राकृतिक संपदाओं पेड़ों, नदियों, पर्वत आदि की पूजा इस कारण की जाती है कि प्राकृतिक चीजें देवी-देवताओं के निवास का स्थान हैं। कॉम्टे का विचार है कि चिन्तन की इस प्रथम अवस्था में व्यक्ति प्रत्येक जड़ अथवा चेतन वस्तु में जीवन को स्वीकार करता है।
2. **बहुदेववाद** (Polytheism)—जैसे-जैसे मस्तिष्क का विकास होता है, उसी रूप में मानव के ज्ञान में परिवर्तन आता है। प्रेतवाद का स्वरूप मिटता जाता है और बहुदेवतावाद की भावना लोगों में आ जाती है। इस प्रक्रिया में घरेलू देवताओं को स्थापित किया जाता है तथा साथ ही साथ लोग एक साथ अनेक देवताओं पर न सिर्फ विश्वास करने लगते हैं, बल्कि देवताओं का क्रम उनकी पदस्थिति के आधार पर निर्धारित किया जाता है। चिन्तन की इस अवस्था में व्यक्ति न केवल अनेकों जादुई शक्तियों में विश्वास करने लगता है वरन् वह यह भी मानने लगता है कि विभिन्न क्षेत्रों में उसकी सभी क्रियाएँ किसी न किसी देवी-देवता की प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता का ही परिणाम है।
3. **एकेश्वरवाद** (Monotheism)—मानव ज्ञान व मस्तिष्क पुन: जैसे-जैसे विकसित होता है, वैसे-वैसे बहुदेववाद का स्थान समाप्त हो जाता है और उसका स्थान एकदेववाद ले लेता है। इस चिन्तन की अवस्था में मनुष्य को यह आभास होने लगता है कि भले ही देवताओं के नाम अनेक हैं, पर देवता एक ही है। कॉम्टे के अनुसार, एक देववाद धार्मिक स्तर के चिंतन का सर्वोच्च स्तर है।

तात्विक स्तर (Metaphysical Stage)

कॉम्टे द्वारा प्रतिपादित यह चिन्तन की दूसरी अवस्था है। कॉम्टे के अनुसार, चिन्तन की इस अवस्था का प्रारम्भ यूरोप में सन् 1300 ई० के पश्चात् हुआ, परन्तु यह अवस्था अधिक समय तक नहीं रही। ज्ञान का यह दूसरा स्तर धार्मिक और प्रत्यक्षवादी स्तर के मध्य एक कड़ी का काम करता है। कॉम्टे के विचारानुसार, धार्मिक स्तर कई हजार वर्षों का काल था, वहीं तात्विक स्तर कुछ सौ वर्षों का काल है। कॉम्टे ने इसे संक्रमण की अवस्था द्वारा परिभाषित किया। इस चिन्तन अवस्था में ज्ञान ना तो पूर्णत: धार्मिक स्तर का था और न ही पूर्णत: प्रत्यक्षवादी स्तर का होता था। अत: अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि चिन्तन के इस स्तर में ज्ञान में विभिन्न घटनाओं का वर्णन ना तो अलौकिक शक्ति के आधार पर की जाती है और ना ही तर्क एवं विवेक के आधार पर। यहाँ घटनाओं की व्याख्या अदृश्य शक्ति के आधार पर की जाती है। कॉम्टे के अनुसार, इस स्तर के चिन्तन में मनुष्य घटनाओं के पीछे

TOUCH 'n PASS

अलौकिक शक्ति का हाथ नहीं मानता वरन् उस घटना के कारण को जानना चाहता है। परन्तु ज्ञान में तर्क एवं विवेक के अभाव के कारण वो जान नहीं पाता है। अत: वह यह मान लेता है कि अलौकिक शक्ति तो नहीं, परन्तु अदृश्य शक्ति इसके पीछे जरूर कार्यरत है।

इस स्तर पर लोगों का अलौकिक शक्तियों से विश्वास कम होने लगा और प्राणियों में व्याप्त अमूर्त शक्तियों को ही सभी घटनाओं हेतु उत्तरदायी माना गया। अत: मानवीय घटनाओं की व्याख्या उनके गुणों के आधार पर करता था।

प्रत्यक्षवादी (Positive Stage)

चिन्तन का यह तीसरा स्तर प्रत्यक्षवादी अथवा वैज्ञानिक स्तर के नाम से जाना जाता है। कॉम्टे के अनुसार, 'उन्नीसवीं सदी का उदय ही प्रत्यक्षवादी स्तर का प्रारम्भ है, जिसमें वैज्ञानिक अवलोकन ने कल्पनात्मक चिन्तन पर विजय प्राप्त की।' इस चिन्तन की अवस्था में व्यक्ति किसी घटना के कार्य कारण सम्बन्धों की खोज दैवीय आधार अथवा भावात्मक आधार पर न करके विश्लेषण, अवलोकन और परीक्षण के आधार पर करता है। व्यक्ति उसी को सत्य मानता है, जो अवलोकन और परीक्षण के आधार पर खरा उतरता है। कल्पना, अनुमान आदि का इस चिन्तन स्तर में कोई स्थान नहीं है। यह विश्व को देखने का बुद्धिजीवियों का विशुद्ध मार्ग है। त्रि-स्तरीय नियमों के बारे में कॉम्टे का मत था कि तीनों प्रकार के चिन्तन का ढंग एक ही मस्तिष्क में अथवा एक ही समाज में अपना अस्तित्व रख सकते हैं। परन्तु यह चिन्तन के तीनों स्तर हमेशा अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफल नहीं होते, अत: यह बात स्पष्ट होती है कि धार्मिक स्तर में भी प्रत्यक्षवादी ज्ञान विद्यमान था, परन्तु उसकी मात्रा कम ही थी और आज के प्रत्यक्षवादी युग में भी अंधविश्वास आदि विद्यमान है, परन्तु धीरे-धीरे इनकी मात्रा घटती जा रही है।

कॉम्टे के मतानुसार, धार्मिक स्तर पर समाज में सैनिकों और पुराहितों का वर्चस्व होता है तथा सामाजिक संगठन परिवार के स्तर का होता है। तात्विक स्तर पर समाज में पादरियों एवं वकीलों का वर्चस्व रहा है तथा समाज के संगठन में जो विस्तार था उसके परिणामस्वरूप लोगों का सम्बन्ध तथा उनकी जिम्मेदारी स्वयं के प्रांत तक सीमित थी। प्रत्यक्षवादी अवस्था के विकास के साथ समाज में पूँजीपतियों और औद्योगिक उद्यमियों का वर्चस्व होने लगा। इस काल में यातायात व संचार के साधनों में अद्‌भुत विकास के चलते वैश्वीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई तथा वर्तमान में ग्लोबल विलेज की कल्पना हम करने लगे हैं। वर्तमान में लोगों का सम्बन्ध तथा उनका उत्तरदायित्व सिर्फ अपने परिवार तक अथवा प्रांत तक ही सीमित नहीं है, बल्कि समस्त विश्व समाज का अंग बन चुका है।

इस प्रकार ऑगस्ट कॉम्टे ने मानव-मस्तिष्क के चिन्तन के तीन स्तरों के आधार पर समाज की प्रगति के विभिन्न चरणों के बारे में उल्लेख किया है। कॉम्टे का विचार था कि विश्व का प्रत्येक समाज चिन्तन की इन तीन अवस्थाओं से होकर गुजरता है तथा उनका यह भी मानना है कि किसी एक काल में, एक समाज में, तीनों प्रकार के चिन्तन के यह स्तर व्यक्तियों के मध्य पाए जा सकते हैं। कॉम्टे चाहते थे कि एक ऐसा विज्ञान होना चाहिए जो सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक तथा प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण से निरीक्षण, परीक्षण तथा वर्गीकरण के माध्यम से सामान्य सिद्धान्तों की खोज करके विघटनकारी परिस्थितियों पर नियंत्रण कर सके तथा इन विघटनकारी परिस्थितियों के समाधान हेतु साधन एकत्रित कर सके। इससे यह स्पष्ट होता है कि कॉम्टे ने यह स्वीकारा है कि किसी भी समाज में चिन्तन की प्रत्येक अवस्था अपने पूर्ण या समग्र रूप में नहीं पाई जा सकती है।

समालोचना (Criticism)

कॉम्टे द्वारा नि:सन्देह सामाजिक परिवर्तन में एक योजनाबद्ध एवं क्रमबद्ध व्याख्या का सराहनीय प्रयास किया गया है, किन्तु उनके इस सिद्धान्त को पूर्णत: सत्य नहीं कहा जा सकता। कॉम्टे के त्रिस्तरीय नियम के तीन स्तरों से विश्व के सभी समाज गुजरे हों, यह अनिवार्य नहीं है। किसी समाज में ये स्तर पहले व किसी में बाद में अथवा दो स्तर एक साथ भी निहित हो सकते हैं।

प्र.3. कॉम्टे के विज्ञानों का संस्तरण की विवेचना कीजिए।
Discuss the Hierarchy of Sciences of Comte.

उत्तर

कॉम्टे-विज्ञानों का संस्तरण
(Comte-Hierarchy of Sciences)

परिचय (Introduction)

कॉम्टे ने समाजशास्त्र के लिए वैज्ञानिक स्थिति को सुनिश्चित करने हेतु 'प्रत्यक्षवाद' के पश्चात् तीसरा आधार विज्ञानों के संस्तरण एवं वर्गीकरण के रूप में तैयार किया। इस वर्गीकरण या संस्तरण का एक प्रमुख उद्देश्य सामाजिक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र को संस्थापित तथा निरूपित करना था, जैसा बोगार्डस का कथन है, 'कॉम्टे की योजना का तीसरा चरण, विज्ञानों का वर्गीकरण था,

जिसके अन्तर्गत समाजशास्त्र की नवीनतम किन्तु सर्वश्रेष्ठ विज्ञान के रूप में दर्शाया गया।'इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि ग्रीक विचारकों ने भी समस्त विज्ञानों का वर्गीकरण भी तीन प्रमुख श्रेणियों में किया था, ये इस प्रकार हैं—

1. भौतिक शास्त्र (Physics)
2. नीतिशास्त्र (Ethics)
3. राजनीतिशास्त्र (Politics)

सुप्रसिद्ध दार्शनिक 'बेकन' द्वारा भी मानसिक शक्तियों के तीन पक्षों जैसे–तर्कशक्ति, कल्पनाशक्ति एवं स्मरणशक्ति से सम्बन्धित तीन अध्ययन-शास्त्रों का उल्लेख भी किया गया है। उदाहरण के लिए—विज्ञान (Science), कवित्व (Poetry) एवं इतिहास (History) का वर्णन किया गया है।

कॉम्टे ने विज्ञानों के वर्गीकरण का विचार सेण्ट साइमन (Saint Simon) से प्रभावित होकर प्रस्तावित किया था। यद्यपि कॉम्टे, सेण्ट साइमन के विचार से सहमत थे कि विज्ञानों का वर्गीकरण वैज्ञानिक तरीके से किया जाना चाहिए, किन्तु फिर भी वह सेण्ट साइमन के वर्गीकरण के विचार से पूर्णत: सहमत न थे। इनका मानना था कि वह सेण्ट साइमन की अपेक्षा अधिक प्रभावी वैज्ञानिक आधारों पर विज्ञानों का वर्गीकरण या संस्तरण की प्रस्तुती कर सकते हैं।

कॉम्टे द्वारा इन प्रमुख आधारों का उल्लेख उनकी सुप्रसिद्ध कृति 'Positive Philosophy' में किया गया था। कॉम्टे द्वारा इस पुस्तक को लिखने का एक प्रमुख उद्देश्य था कि वह अपने नवीन विज्ञान 'समाजशास्त्र' हेतु एक सुदृढ़ एवं वैज्ञानिक नींव को स्थापित करना चाहते थे जिसके परिणामस्वरूप समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र तथा इसके अन्य प्राकृतिक विज्ञानों से सम्बन्ध पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाऐं।

संस्तरण (वर्गीकरण) के दो प्रमुख सिद्धान्त या आधार (Two Main Principles or Bases of Hierarchy)

कॉम्टे द्वारा विज्ञानों का एक नवीन वर्गीकरण निम्नलिखित दो प्रमुख सिद्धान्तों के आधार पर यह संस्तरण प्रस्तुत किया गया है—

1. निर्भरता या पराश्रयता वृद्धि-क्रम का सिद्धान्त
2. घटती हुई सामान्यतया एवं बढ़ती हुई जटिलता का सिद्धान्त।

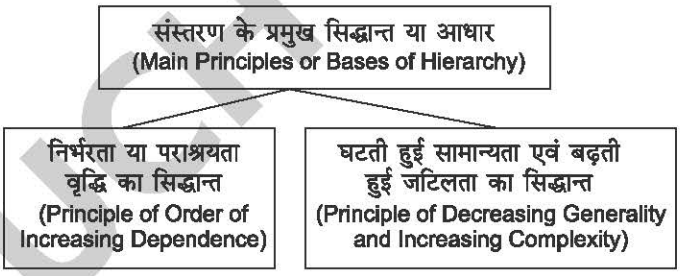

1. **निर्भरता या पराश्रयता वृद्धि-क्रम का सिद्धान्त** (Principle of the Order of Increasing Dependence)— कॉम्टे द्वारा विज्ञानों के वर्गीकरण या संस्तरण की प्रस्तुती हेतु निर्भरता या पराश्रयता वृद्धि-क्रम के सिद्धान्त को चुना। दूसरे शब्दों में कॉम्टे के विचारानुसार, ज्ञान एवं विज्ञान की प्रत्येक शाखा अपने से पूर्व शाखा या विज्ञान के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों पर आश्रित होती है। इस नियम के अनुसार जो ज्ञान या विज्ञान सर्वप्रथम आया वह किसी अन्य पर निर्भर नहीं था। इसके पश्चात् जो दूसरा विज्ञान विकसित होगा वह प्रथम पर आश्रित या निर्भर होगा, जो तीसरा विज्ञान होगा वह प्रथम एवं द्वितीय विज्ञान पर आश्रित होगा, जो चौथा विज्ञान होगा वह प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय विज्ञान पर आश्रित होगा। इस निर्भरता के परिणामस्वरूप ज्ञान या विज्ञान की एक शाखा से दूसरी शाखा को जैसे-जैसे आगे की ओर बढ़ायेंगे, वैसे-वैसे उस शाखा की पराश्रयता (Dependence) में वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार से प्रत्येक नवीन विज्ञान स्वयं से पूर्व विकसित हुए विज्ञानों पर निर्भर होगा। अत: इसी क्रम से विज्ञान की प्रत्येक शाखा की निर्भरता में वृद्धि होती जाएगी। इसी कारण कॉम्टे इसे निर्भरता के वृद्धि क्रम का सिद्धान्त कहते हैं। जो विज्ञान जितना अधिक पराश्रित या निर्भर होता है उसे उतना ही नवीनतम माना जाता है। संक्षेप में विज्ञानों के वर्गीकरण तथा संस्तरण में प्रत्येक विज्ञान की श्रेणी अपने से पूर्व विकसित विज्ञान की श्रेणी के सिद्धान्तों एवं नियमों पर निर्भर होती है। इस निर्भरता के परिणामस्वरूप विज्ञान की एक शाखा नवीन

TOUCH 'n' PASS

विकास के साथ ही साथ अन्य शाखाओं पर भी आश्रित होती चली जाती है। इसलिए कॉम्टे के विज्ञानों के वर्गीकरण के सिद्धान्त को 'निर्भरता या पराश्रयता वृद्धि-क्रम का सिद्धान्त' कहा गया है।

2. **घटती हुई सामान्यता एवं बढ़ती हुई जटिलता का सिद्धान्त** (Principle of Decreasing Generality and Increasing Complexity)—कॉम्टे के मतानुसार, विज्ञानों का विकास एक विशेष क्रम (Definite Order) से होता है और यह क्रम (Order) है घटती हुई सामान्यता एवं बढ़ती हुई जटिलता। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक विज्ञान की स्थिति वस्तुत: उसकी विषय सामग्री के आधार पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे नवीन विज्ञान का जन्म होता है, वैसे-वैसे उस विज्ञान की अध्ययन-वस्तु (Subject-matter) क्रमश: कम सामान्य एवं अधिक जटिल होती जाती है। इस तथ्य का मूल रहस्य यह है कि यदि घटनाएँ सरल प्रकृति की हैं तो उनका अध्ययन भी सरल होगा। कॉम्टे के कथनानुसार 'सर्वाधिक सरल घटनाएँ, सर्वाधिक सामान्य होती हैं, सामान्यत: इस अर्थ में कि वे प्रत्येक स्थान पर उपस्थित होती हैं।' सामान्य घटनाएँ (General Incidents) पहले आती हैं एवं उनका अध्ययन करना भी सरल होता है। अत: यह कहा जा सकता है कि पहला विज्ञान वह है जो सबसे सरल विषयों एवं घटनाओं का अध्ययन कराता है एवं जो घटना सबसे अधिक सरल हैं, यह सर्वाधिक सामान्य भी होती है, सामान्य इस अर्थ में है कि वह सब स्थानों पर विद्यमान होती है। इन नियमों से पूर्णत: स्पष्ट होता है कि सबसे पहले जो विज्ञान अस्तित्व में आया वह सबसे अधिक सामान्य एवं सबसे कम जटिल तथा सबसे कम विषयों से संबंधित था। इसके बाद आने वाले विज्ञान उत्तरोत्तर कम सामान्य एवं अधिक जटिल होते गए, क्योंकि यह स्पष्ट है कि सरल घटनाओं के प्रभाव स्वरूप दूसरी या अन्य घटनाएँ उत्पन्न होती है, जो क्रमश: जटिल होती हैं।

अत: विज्ञानों के विकास क्रम में प्रत्येक विज्ञान अपने पूर्ववर्ती विज्ञानों की खोजों, सिद्धान्तों तथा निष्कर्षों का लाभ उठाते हैं एवं उन पर निर्भर होते हैं। इस प्रकार उसकी निर्भरता या पराश्रियता बढ़ती जाती है। इसलिए प्रत्येक विज्ञान अपने से पूर्व के विज्ञानों पर आधारित रहते हुए अगले विज्ञान हेतु आधार प्रस्तुत करता है। कॉम्टे के कथनानुसार, 'प्रत्येक विज्ञान अपने पूर्ववर्ती विज्ञानों पर केवल निर्भर ही नहीं रहता है वरन् नवीन आविष्कारों तथा खोजों के माध्यम से सींचता एवं समृद्ध बनाता है।' अत: सर्वाधिक जटिल तथा विशिष्ट विज्ञानों का सोपानक्रम या संस्तरण सर्वाधिक अन्त में रहता है।

विज्ञानों का संस्तरण क्रम (Order of Hierarchy of Sciences)

कॉम्टे ने उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों के आधार पर सभी विज्ञानों को एक संस्तरणात्मक क्रम में निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है—

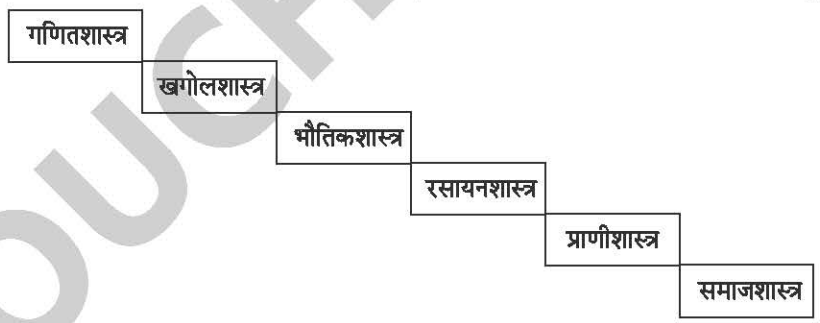

1. **गणितशास्त्र** (Mathematics)—विज्ञान के संस्तरण में सर्वप्रथम स्थान गणितशास्त्र का माना जाता है। कॉम्टे के मतानुसार, गणित अतिप्राचीनतम् प्रथम आधारभूत एवं दोषरहित विज्ञान है। जिसे कॉम्टे 'पूर्ण विज्ञान' (Perfect Science) मानते हैं। गणित ही सर्वशक्तिशाली औजार है जिसका उपयोग किए बिना प्राकृतिक नियमों का अन्वेषण असम्भव है। इस अर्थ में गणितशास्त्र मानव-चिन्तन का सबसे मौलिक उपकरण है। यह सामान्य घटनाओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। गणितशास्त्र को एक मौलिक उपकरण माना गया है इसी मौलिक उपकरण के आधार पर समस्त विज्ञानों का विकास हुआ है। इसके माध्यम से सामाजिक तथा सरल प्राकृतिक घटनाओं के विषय में अन्वेषण तथा नियमों की खोज सम्भव है। यदि गणित का अभाव होगा तो समस्त विज्ञान पंगु हो जाएँगे। अनुसंधान के क्षेत्र में चाहे वह सामाजिक हो या प्राकृतिक, गणितशास्त्र से अधिक निर्भरयोग्य और कोई अन्य विज्ञान नहीं है क्योंकि विभिन्न तथ्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का सुनिश्चित ज्ञान एवं विभिन्न तथ्यों का वास्तविक नाम गणितशास्त्र के माध्यम से ही सुनिश्चित हो सकता है। गणितशास्त्र के अभाव में कोई भी शोध-कार्य (Research work) कदापि सफल नहीं हो सकता। गणितशास्त्र ही

TOUCH 'n' PASS

समस्त विज्ञानों का आधार या बुनियाद है। सभी विज्ञान इसी आधार या बुनियाद पर टिके हुए हैं एवं विज्ञान कहलाने के योग्य हैं। गणितशास्त्र के अन्तर्गत अंकगणित (Arithmatic), रेखागणित (Geometry), बीजगणित (Algebra) एवं यांत्रिक (Mechanics) की शाखाएँ शामिल हैं।

कॉम्टे द्वारा गणित के एक अन्य विभाग समाकलन-आकलन (Calculus) पर भी विचार-विमर्श किया गया है एवं स्पष्ट किया गया कि अन्य समस्त विज्ञानों में इसका न्यूनाधिक प्रयोग किया जाता रहा है। अत: कॉम्टे विज्ञान के संस्तरण में गणितशास्त्र को प्रथम एवं आधारभूत स्थान प्रदान करते हैं।

2. **खगोलशास्त्र** (Astronomy)—कॉम्टे ने गणितशास्त्र के पश्चात् खगोलशास्त्र (Astronomy) को महत्त्व दिया है। खगोल सम्बन्धी घटनाएँ अत्यधिक सामान्य (General) घटनाएँ होती हैं। गृह-नक्षत्रों आदि में बहुत कम परिवर्तन होता है। खगोल-सम्बन्धी घटनाओं से ही खगोलशास्त्र (Astronomy) का सम्बन्ध होता है इसके अध्ययन क्षेत्र में ही उपग्रह (Planets), पुच्छल तारे (Comets), नक्षत्र (Star) तथा उल्काएँ (Meteors) आदि सम्मिलित होते हैं। इस शास्त्र के अन्तर्गत सूर्य (तारा/नक्षत्र), चन्द्र, मंगल, शनि, शुक्र, बृहस्पति, अरुण, वरुण गृह हैं एवं पृथ्वी और चन्द्रमा उपग्रह हैं। ये विभिन्न तारे, ग्रह एवं उपग्रह एक-दूसरे से कितनी दूरी पर स्थित हैं? इनका क्या आधार है? ये किस प्रकार पारस्परिक आकर्षण शक्ति द्वारा एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं? 'नक्षत्र - परिवार' क्या है? इसकी गति कितनी है? धरती के मानव के लिए आकाश तथा धरती से संबंधित घटनाओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए पृथ्वी की प्रकृति एवं उसके अन्य ग्रह नक्षत्रों के मध्य सम्बन्धों को भली-भाँति समझ लेना चाहिए। इस ज्ञान की प्राप्ति खगोलशास्त्र के अन्तर्गत की जा सकती है।
3. **भौतिकशास्त्र** (Physics)—यह विषय स्थलीय है। भौतिक पदार्थों के विषय को जानने के लिए उनका भौतिक या रासायनिक विश्लेषण अति आवश्यक है। भौतिक शास्त्र का अध्ययन रसायन शास्त्र के अध्ययन से अपेक्षाकृत अधिक सरल व सामान्य है। इसका सम्बन्ध तत्त्वों से न होकर पदार्थों से होता है। अधिकतर रासायनिक तत्त्व भौतिकशास्त्र के नियमों पर अधिक निर्भर होते हैं, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि रासायनिक क्रिया ताप, भार एवं विद्युत के नियमों से प्रभावित होती है। अत: जीवनपर्यन्त घटनाओं का अध्ययन तीन विज्ञानों-खगोलशास्त्र, भौतिक शास्त्र एवं रसायन शास्त्र के द्वारा होता है।
4. **रसायन शास्त्र** (Chemistry)—रसायन शास्त्र के अन्तर्गत विभिन्न पदार्थों की रासायनिक संरचना, स्वरूपों तथा रासायनिक क्रियाओं आदि का अध्ययन किया जाता है। यह विषय भी स्थल सम्बन्धित है। भौतिक प्रक्रियाओं तथा गणित का प्रभाव रासायनिक प्रक्रियाओं पर भी दृष्टिगोचर होता है, परन्तु रसायनशास्त्र का प्रभाव गणित तथा भौतिकशास्त्र पर नहीं पड़ता है। ये रासायनिक प्रक्रियाएँ मुख्यत: विद्युत, उष्णता तथा भार आदि से प्रभावित एवं संचालित होती हैं। अत: भौतिकशास्त्र के पश्चात् ही रसायनशास्त्र का स्थान आता है।
5. **प्राणीशास्त्र** (Biology)—कॉम्टे के मतानुसार, अचेतन घटनाएँ चेतन घटनाओं की तुलना में सरल होती हैं। अत: अचेतन घटनाओं का अध्ययन पहले एवं चेतन घटनाओं का अध्ययन बाद में किया जाता है। क्योंकि चेतन घटनाएँ अधिक जटिलतायुक्त होती हैं इसलिए इनका अध्ययन न करने वाले विज्ञानों का क्रम बाद में आता है। चेतन घटनाएँ मुख्यत: दो प्रकार की होती हैं—
   (i) व्यक्तिगत चेतना (Individual Consciousness)
   (ii) द्वितीय सामूहिक चेतना (Secondary Group Consciousness)

   (i) **व्यक्तिगत चेतना** (Individual Consciousness)—व्यक्तिगत चेतना के अन्तर्गत पशु, वनस्पति तथा प्राणीजगत की समस्त शारीरिक रचनाओं तथा क्रियाओं को रखा गया है, अत: इसे प्राणीशास्त्र (Biology) कहा जाता है। इसमें समस्त जीवन एवं उससे सम्बन्धित नियमों का अध्ययन सम्मिलित है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्राणीशास्त्र रसायनशास्त्र पर निर्भर होता है, क्योंकि पोषण एवं ग्रन्थि (Glands) से रस के निकलने के समस्त विश्वसनीय नियम रसायनशास्त्र से ही प्राप्त होते हैं। प्राणीशास्त्र का सम्बन्ध भौतिकशास्त्र से है, क्योंकि भौतिकशास्त्र प्राणीशास्त्र को जीवित प्राणियों के भार, ताप एवं अन्य सम्बन्धित तथ्यों का ज्ञान करवाता है।

   (ii) **द्वितीय सामूहिक चेतना** (Secondary Group Consciousness)—सामूहिक घटनाओं का अध्ययन समाजशास्त्र के द्वारा किया जाता है। जेविस कोजर लिखते हैं कि कॉम्टे द्वारा प्रस्तुत विज्ञानों का संस्तरण उनके त्रिस्तरीय सिद्धान्त से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। कॉम्टे ने बढ़ती हुई निर्भरता एवं घटती हुई सामान्यता के आधार

TOUCH 'n PASS

पर विज्ञानों को बाँटा है। इसके अन्तर्गत गणितशास्त्र को प्रथम तथा समाजशास्त्र को अंतिम स्थान प्रदान किया। कॉम्टे ने इसे समस्त विज्ञानों की रानी कहा है, भले ही इसे सबसे अंत में विकसित किया गया था। क्योंकि यह सभी विज्ञानों में सबसे जटिल है।

6. **समाजशास्त्र** (Sociology)—सामूहिक घटनाओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान समाजशास्त्र (Sociology) है। वर्तमान में ऐसी घटनाओं का अध्ययन करने वाले अन्य विज्ञानों एवं अन्य विषयों का विकास किया जा चुका है। जैसे–राजनीतिकशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा अपराधशास्त्र आदि। इन सभी में समाजशास्त्र (Sociology) या सामाजिक भौतिकी (Social Physics) का स्थान सर्वोपरि है। इस सम्बन्ध में कॉम्टे यह कहते हैं सामाजिक पृष्ठभूमि में घटित होने वाली सामाजिक घटनाएँ अमूर्त असामान्य गुणों से युक्त तथा जटिलतायुक्त होती है जिसका अध्ययन समाजशास्त्र की विषय वस्तु है इसलिए समाजशास्त्र एक विशिष्ट विज्ञान है। कॉम्टे विज्ञानों के वर्गीकरण में 'समाजशास्त्र को नवीनतम विज्ञान मानते हैं जिसका विकास गणितशास्त्र, खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र तथा प्राणीशास्त्र जैसे–विज्ञानों से हुआ है। समाजशास्त्र इन समस्त विज्ञानों से अधिक जटिल विज्ञान है। चूँकि समाजशास्त्र की विषय वस्तु सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित है और सामाजिक घटनाएँ जटिल, अमूर्त तथा असामान्य होती हैं, इसलिए सामाजिक घटनाओं की जटिलता को सुलझाने के लिए समाजशास्त्र को अपने पूर्ववर्ती समस्त विज्ञानों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि 'प्रत्यक्षवादी धर्म' या 'मानवता का धर्म' के सिद्धान्त को विकसित करते समय कॉम्टे ने उपर्युक्त छ: विज्ञानों के अतिरिक्त एक अन्य सातवाँ एवं सबसे ऊपर का विज्ञान आचारशास्त्र (Ethics) को भी उल्लेखित किया है। किन्तु आचारशास्त्र (Ethics) का कोई विशेष स्पष्टीकरण एवं उल्लेख उनकी प्रमुख कृतियों में नहीं मिलता है।

कॉम्टे विज्ञानों का वर्गीकरण या संस्तरण को महानतम बताते हुए लिखते हैं कि 'यह वर्गीकरण यथार्थ के साथ विभिन्न विज्ञानों के सापेक्ष पूर्णता रोशनी डालता है जो ज्ञान की परिशुद्धता की मात्रा में व उसकी विभिन्न शाखाओं के सम्बन्ध में पाई जाती है।'

प्र.4. भौतिक उद्विकास सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
Describe the theory of Physical Evolution.

उत्तर

भौतिक उद्विकास का सिद्धान्त
(Theory of Physical Evolution)

भौतिक उद्विकास के सम्बन्ध में स्पेन्सर का मत है कि भौतिक जगत या ब्रह्माण्ड में अनेक प्रकार की जटिलताएँ शामिल हैं। भौतिक जगत का मूल तत्त्व 'पदार्थ' (Matter) है। भौतिक जगत या ब्रह्माण्ड में समस्त वस्तुएँ परस्पर एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इन्हें एक–दूसरे से अलग करके उनके विषय में ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है अर्थात् रासायनिक पदार्थों की तरह उनको विश्लेषित करना सम्भव नहीं है। स्पेन्सर इस संदेह का समाधान करने हेतु एक सूत्र की खोज की जिसकी सहायता से भौतिक जगत या दृश्य जगत को विश्लेषित कर वास्तविकता को ज्ञात किया जा सकता है एवं इसके आधार पर ब्रह्माण्ड की समस्त समस्याओं को हल किया जा सकता है। स्पेन्सर इसी सूत्र के आधार पर कहते हैं कि भौतिक जगत् का निर्माण दो मूल तत्वों–शक्ति तथा पदार्थ (Force and Matter) से सम्मिलित होकर बना हुआ है। ये तत्त्व इस प्रकार के हैं जिनको विश्लेषित करना सम्भव नहीं है अर्थात् कोई तत्त्व किस स्थान से प्रारम्भ होकर किस स्थान पर समाप्त होगा यह कहना सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में स्पेन्सर के विचार हैं कि शक्ति एवं पदार्थ स्वयं के अस्तित्व हेतु एक–दूसरे पर निर्भर होते हैं। शक्ति एवं पदार्थ के विषय में संक्षिप्त में इस प्रकार समझ सकते हैं—

1. **शक्ति** (Force)—भौतिक विकास का मूल कारण शक्ति (Force) है। शक्ति का स्वयं क्या रूप है? यह हम नहीं जानते, क्योंकि शक्ति अज्ञेय है। शक्ति में गतिशीलता एवं शाश्वतता का नियम (Law of Dynamics and Eternity) विद्यमान होता है। गतिशीलता के सम्बन्ध में स्पेन्सर का विचार है कि शक्ति सदा गतिमान रहती है, यह शक्ति न तो कम होती है एवं इसका विनाश भी सम्भव नहीं है, यह सर्वदा स्थिर बनी रहती है। दूसरे शब्दों में स्पेन्सर का विचार है कि शक्ति शाश्वत है, शक्ति को न तो बनाया जा सकता है एवं न ही इसे समाप्त करना सम्भव है। बस शक्ति परिवर्तित होती है इसलिए शक्ति के स्वरूप में अन्तर आ सकता है, परन्तु राशि या मात्रा में कोई विशेष भिन्नता नहीं आती है। शक्ति का रूपान्तरण होने पर भी शक्ति समाप्त नहीं होती है।
2. **पदार्थ** (Matter)—पदार्थ के विषय में स्पेन्सर स्वयं के मौलिक विचारों को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि शक्ति की भाँति पदार्थ भी समाप्त नहीं होते हैं मात्र उसका स्वरूप ही परिवर्तित किया जा सकता है जैसे–यदि लकड़ी को जलाया

जाए तो उसका रूप परिवर्तित होकर राख बन जाता है। इस प्रकार पदार्थ का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है, परन्तु पदार्थ पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता है।

इसी मूल आधार पर स्पेन्सर अपने विचारों को व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि 'उद्विकास पदार्थ का एकीकरण और उससे सम्बन्धित गति है जिसके दौरान पदार्थ एक अनिश्चित, असंगत समरूपता से निश्चित, संगत विषमरूपता की ओर बढ़ता है तथा अवरूद्ध गति का भी समानान्तर रूपान्तरण होता है।'

स्पेन्सर ने शक्ति एवं पदार्थ का वर्णन करके उन्होंने तत्त्वों की अविनाशिता के सिद्धान्त की पुष्टि की। वे इस विषय पर कहते हैं यद्यपि शक्ति एवं पदार्थ अविनाशी है किन्तु फिर भी इसके अन्तर्गत सदैव परिवर्तन होते रहते हैं, अत: पदार्थों का स्वरूप कभी भी स्थिर नहीं हो सकता। जिसके परिणामस्वरूप इससे निर्मित भौतिक जगत भी निरन्तर परिवर्तनीय व गतिशील रहता है। परिवर्तन हमेशा उद्देश्यपूर्ण होता है। शक्ति एवं पदार्थों में परिवर्तन एक विशेष प्रक्रिया या विधि से होता है। इसलिए जो विधि इसके पृष्ठभूमि में कार्य करती है उसे उद्विकास की विधि कहते हैं।

उद्विकास का जो सूत्र स्पेन्सर द्वारा प्रदत्त किया गया वह सूत्र समस्त पदार्थों पर लागू होता है। समस्त पदार्थ प्रारम्भ में स्वरूपहीन मात्र एक ढेर के समान थे। परन्तु यह ढेर सर्वशक्तिमान था जो लट्टू की तरह घूमता रहता था। शक्ति एवं पदार्थ की इस मूल अवस्था में सभी अणुओं का स्वरूप परिवर्तित हो गया। भौतिक जगत् में जल एवं मिट्टी होने के कारण इसमें हरियाली उत्पन्न हुई। जिससे आस-पास का वातावरण हरा-भरा हो गया। इन हरे-भरे पेड़-पौधों ने जीवों की पृथक-पृथक प्रजातियों को जन्म दिया। वातावरण में अनेक प्रकार की प्रजातियाँ उत्पन्न हो गईं, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के जीव जन्तुओं का जन्म हुआ। अत: दृश्य जगत या भौतिक जगत की अनेक वस्तुएँ समय-समय पर स्वत: ही उत्पन्न व नष्ट होती गईं। जिसका आधुनिक समय में कोई प्रभाव नहीं मिलता है।

स्पेन्सर का कथन है कि मानव प्रजाति ही नहीं अपितु समस्त ब्रह्माण्ड उद्विकास की सतत् तथा उत्तरोत्तर विकास की प्रक्रिया से गुजरता है। इसमें स्पेन्सर तथा डार्विन के उद्विकास में अत्यधिक समानताएँ स्पष्ट होती हैं। डार्विन के अनुसार भिन्न-भिन्न कालों में पृथक-पृथक प्राणियों के मध्य अन्तर्जातीय संघर्ष निरंतर गतिमान रहता है, जिसके परिणामस्वरूप उत्तम जातियाँ ही शेष बचती हैं एवं शेष समस्त जातियाँ नष्ट हो जाती हैं। जो जातियाँ बचती हैं वे अपने सभी गुणों को वंशानुक्रम द्वारा एक-पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती हैं।

हालाँकि डार्विन के 'योग्यतम की उत्तरजीविता' (Survival of the Fittest) के सिद्धान्त को स्पेन्सर द्वारा स्वीकार किया गया है। किन्तु इसके पश्चात् दोनों के सिद्धान्तों में मूल अन्तर भी दिखायी देता है। डार्विन का उद्विकास का सिद्धान्त मात्र जीव जगत पर ही लागू होता है जबकि स्पेन्सर ने इसे भौतिक जगत् की समस्त वस्तुओं पर लागू किया। इस दृष्टिकोण से स्पेन्सर का उद्विकास का क्षेत्र डार्विन के उद्विकासवाद की तुलना में अधिक व्यापक है। उद्विकासवादी सिद्धान्त को स्पेन्सर ने, अचेतन, चेतन तथा चेतनोत्तर जगत् (Organic, Inorganic and Super Organic World) पर परस्पर एक समान रूप से लागू किया एवं यह बताने का प्रयास किया कि शाश्वत रूप से देखा जाए तो सम्पूर्ण विश्व परिवर्तनशील है। परिवर्तन का यह चक्र निरन्तर गतिशील है।

स्पेन्सर के अनुसार भौतिकी के नियम (Laws of Physics according to Spencer)

स्पेन्सर ने विकास की इस प्रक्रिया को समझने हेतु भौतिकी में निम्नलिखित नियमों का सहारा लिया—

1. **शक्ति के स्थायित्व का नियम** (Law of Consistency of Power)—गति एवं पदार्थ के विकास का कारण शक्ति है और यह शक्ति स्थायी होती है, इसमें न अभाव होता है एवं न ही वृद्धि होती है।
2. **गति की निरन्तरता का नियम** (Law of Continuity of Motion)—इस नियम से तात्पर्य यह है कि पदार्थ एक निश्चित दिशा में निरन्तर गतिशील रहता है।
3. **एकता का नियम** (Law of Uniformity)—इसका अर्थ यह है कि विकास की प्रक्रिया में प्रत्येक स्थान पर एक ही नियम कार्य करता है।
4. **रूपान्तर एवं समानता का नियम** (Law of Transformation and Equality)—इस नियम के अनुसार पदार्थ का रूपान्तरण होता रहता है परन्तु पदार्थ की समानता सदैव वैसी ही बनी रहती है।
5. **न्यूनतम प्रतिरोध एवं अधिकतम आकर्षण का नियम** (Law of Least Resistance and Maximum Attraction)—इस नियम में पदार्थ न्यूनतम गतिरोध से अधिकतम आकर्षण की दिशा में गतिमान रहता है, जैसे-पानी

TOUCH 'n' PASS

उसी दिशा में गति करेगा जिस दिशा में कम प्रतिरोध होगा एवं पानी वहीं एकत्रित हो जायेगा जहाँ पहले से अधिक पानी एकत्रित है।

6. **गति के परिवर्तन का नियम** (Law of Change of Motion)—गति के परिवर्तन के नियमानुसार यदि किसी पदार्थ में परिवर्तन होता है तो यह परिवर्तन मुख्य रूप से एक क्रम या लय की तरह होता है।
7. **पदार्थ की अविनाशिता का नियम** (Law of the Conservation of Matter)—इस नियमानुसार पदार्थ कभी समाप्त नहीं होते हैं। पदार्थ के मूल तत्त्वों को न तो निर्मित किया जा सकता है एवं न ही इसे नष्ट करना सम्भव है। ये मूल तत्त्व सदैव वातावरण में उपस्थित रहते हैं। विकास की प्रक्रिया में पदार्थों का परिवर्तन होता रहता है, परन्तु इसका मूल स्वरूप कभी भी समाप्त नहीं होता। जैसे–यदि पानी को गर्म किया जाए तो वह अपना स्वरूप परिवर्तित करके भाप का स्वरूप धारण कर लेता है तथा ठंडा करने पर वह बर्फ में बदल जाता है, परन्तु पानी कभी नष्ट नहीं होता।

स्पेन्सर के अनुसार जिस स्थान पर भौतिक विकास होगा वहाँ ये प्रत्येक नियम उपयोगी होंगे। स्पेन्सर के समय में पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रकार की मान्यताएँ प्रचलित थीं। ऐसी ही एक मान्यता यह है कि ईसाईयों के पवित्र ग्रन्थ में पृथ्वी की उत्पत्ति बादलों के माध्यम से हुई है। स्पेन्सर को भिन्न-भिन्न धार्मिक धारणाओं से सिद्धान्त निर्माण का आधार प्राप्त हुआ। उन्होंने वैज्ञानिक सिद्धान्तों के द्वारा इस तथ्य– 'ब्रह्माण्ड (पृथ्वी) प्रारम्भ में निरन्तर घूमने वाला एक गैसीय गोला था जो धीरे–धीरे समय गुजरने पर ठण्डा होता गया तथा छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित हो गया जिसके परिणामस्वरूप अनेक ग्रहों एवं उपग्रहों की उत्पत्ति हुई' को प्रतिपादित किया। उद्विकास के सिद्धान्त को अचेतन या भौतिक जगत् पर लागू करके स्पेन्सर द्वारा अनिश्चितता से निश्चितता के नियम को प्रतिपादित किया गया।

प्र.5. सामाजिक उद्विकास सिद्धान्त का विश्लेषण कीजिए।
Examine the theory of Social Evolution.

उत्तर

सामाजिक उद्विकास सिद्धान्त
(Theory of Social Evolution)

भौतिक उद्विकास एवं विशेष रूप से प्राणीशास्त्रीय उद्विकास के सिद्धान्त को स्पेन्सर द्वारा समाज में क्रियान्वित करके सामाजिक उद्विकास के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया गया। स्पेन्सर ने अपनी सर्वप्रसिद्ध पुस्तक 'Principles of Sociology' में सामाजिक उद्विकास के सिद्धान्त को विस्तृत रूप में अभिव्यक्त किया है। इस सम्बन्ध में स्पेन्सर के विचार थे कि समाज का विकास भी जैविक विकास की भाँति सरलता से जटिलता की ओर, समानता से विभिन्नता तथा अनिश्चितता से निश्चितता की ओर हुआ है। इस प्रकार उन्होंने निम्नलिखित नियम तथा मान्यताओं को प्रस्तुत किया—

1. **आकार में वृद्धि होने पर संरचना में भी वृद्धि होती है** (Increase in Mass is followed by Increase Instructure)—स्पेन्सर के विचारानुसार समाज के आकार में यदि वृद्धि हो रही है तो उसकी संरचना में भी वृद्धि होना स्वाभाविक है। चूँकि इसके परिणामस्वरूप ही सामाजिक संगठन एवं संरचना बढ़े हुए समूहों (झुण्डों) को स्वयं में धारण करने योग्य होगा। इस सम्बन्ध में स्पेन्सर लिखते हैं, 'हम जैसे–जैसे छोटे समूहों से बड़े समूहों में, संयुक्त समूहों से द्विगुण संयुक्त समूहों में बढ़ते हैं, वैसे–वैसे अंगों में असमानता बढ़ती जाती है जो सामाजिक झुण्ड (Aggregate) छोटा होने पर समरूप था वही वृद्धि के हर स्तर के साथ स्वाभाविक रूप से विषमरूप (Hererogenious) में वृद्धि करता है और इस प्रकार से विशाल आकार ग्रहण करने के लिए अत्यन्त जटिल होना आवश्यक है।'
2. **सामाजिक उद्विकास की दिशा समरूपता से विषमरूपता की ओर होती है** (The Direction of Social Evolution is from Homogeneity to Heterogeneity)—समाज का आकार प्रारम्भ में लघु एवं इसका स्वरूप समरूप होता है, समाज की समस्त इकाइयाँ अपनी समरूपता के कारण ही परस्पर एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं, परन्तु यह समरूपता स्वयं के स्वभाव के कारण ही अस्थिर है। अत: समरूप समाज के सदस्य एक समूह की सदस्यता का परित्याग करके अन्य दूसरे समाज की सदस्यता प्राप्त कर लेते हैं। भिन्न–भिन्न समरूपात्मक समाज में विषमरूपात्मक विशेषताएँ शामिल होने लगती हैं। जिसके परिणामस्वरूप एक समय ऐसा आता है जब समरूपात्मक समाज धीरे–धीरे विषरूपात्मक समाज का रूप ले लेता है। यही कारण है कि स्पेन्सर द्वारा समरूपात्मक को अस्थिर माना गया है। इसलिए उद्विकास समरूपात्मक से विषमरूपात्मक समाज की दिशा में होता है।

TOUCH 'n' PASS

3. **समाज का निरन्तर विकास होता रहता है** (Society Goes Under Continuous Growth)—इस सम्बन्ध में स्पेन्सर का कथन है कि प्रारम्भिक काल में मनुष्य अत्यन्त छोटे-छोटे आकार वाले सामाजिक समूहों के रूप में निवास करता था। जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे समय के साथ मनुष्य के समूहों का आकार बढ़ते-बढ़ते हजारों गुना बढ़ गया एवं इसने व्यापक रूप धारण कर लिया तथा एक सभ्य राष्ट्र या राष्ट्रों का रूप धारण कर लिया। इस विषय पर स्पेन्सर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं, 'जीवित शरीरों की भाँति समाज जीवाणुओं के रूप में शुरू होते हैं अर्थात् ऐसे पिण्डों से उत्पन्न होते हैं जिनमें से कुछ अन्ततः ऐसे आकार ग्रहण कर लेते हैं जिनकी तुलना में ये (पिण्ड) अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। यह निष्कर्ष विवादग्रस्त नहीं रह गया है कि लघु घुमक्कड़ झुण्डों से विशालतम समाज पैदा हुए हैं।'
जब एक से अधिक सामाजिक समूह एकजुट होते हैं या पुनः संयुक्त होते हैं तो इससे जनसंख्या में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप समाज का आकार भी बढ़ता है। स्पेन्सर ने आकार के आधार पर यह स्पष्ट किया कि समाज के उद्विकास की प्रक्रिया चार स्तरों से होकर गुजरती है-संयुक्त समाज, सरल समाज, द्विगुण संयुक्त समाज एवं त्रिगुण संयुक्त समाज। उपरोक्त तीनों स्तर से समाज पूर्व में ही गुजर चुका है एवं चौथे चरण में गतिशील है।
4. **पृथक्करण का नियम** (Law of Segregation)—इस सम्बन्ध में स्पेन्सर के विचार हैं कि समरूपता की अस्थिरता के कारण जब समाज विभेदीकरण एवं पुनर्विभेदीकृत होता है तो इन विभेदों के परिणाम से चयनित कर लिया जाता है तथा इसी चयन प्रक्रिया के आधार पर उद्विकास के आगे की प्रक्रिया सुनिश्चित होती है। यही पृथक्करण का नियम कहलाता है।
इस नियमानुसार एक प्रकार के सामाजिक समूह या तत्त्व एकत्रित होकर संगठित होने लगते हैं जिसके परिणामस्वरूप विशेष वर्ग, समूह तथा संघों का निर्माण हो जाता है। इस विषय पर स्पेन्सर का कथन है कि 'एक समाज की इकाइयाँ जब दूसरे समाज के अन्दर रहने को बाध्य होती हैं तो ये उस दूसरे समाज के अन्दर सामान्यतया कालोनियाँ अर्थात् अपने ही छोटे-छोटे समाज बना लेती हैं। जो प्रजातियाँ कृत्रिम रूप से अलग कर दी गई हैं वे पुनः एकीकृत होने की प्रवृत्तियाँ दर्शाती हैं।'
अतः विभेदीकरण तथा एकीकरण दोनों ही प्रक्रियाओं के माध्यम से समाज की संरचना तथा आकार में वृद्धि होती है।
5. **विभेदीकरण के विस्तार का नियम** (Law of Multiplication of Differentiation)—विभेदीकरण के विस्तार के नियमानुसार स्पेन्सर स्वयं के विचारों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि जब समरूप समाज अत्यधिक सूक्ष्म कणों में विभाजित होकर फैलने लगता है, तो अलग हुए समाज के ये अंग अपने नवीन परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को स्वरूप में विकसित कर लेते हैं। यह प्रक्रिया सदैव गतिशील रहती है एवं जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप पृथक हुए अंग (भाग) भी पुनः छोटे-छोटे टुकड़ों में पृथक होने लगते हैं एवं वे भी स्वयं को नवीन परिस्थितियों में ढालने हेतु प्रयत्नशील हो जाते हैं जिससे एक नया स्वरूप विकसित हो जाता है। अतः विभेदीकरण की यह प्रक्रिया नित नवीन स्तर की ओर बढ़ती रहती है। जैसे पुरातन काल में मनुष्य के समूहों (Groups) में समरूपता थी। इसमें विभेद या अलगाव नहीं था। झुण्ड या समूह जनजातियों के रूप में विकसित हुए तो इन झुण्डों या समूहों में निवास करने वाले सदस्यों की सत्ता तथा व्यवसायों में भी भिन्नता आ गई।
अलग-अलग जातियों एवं जनजातियों में विखण्डन तथा पुनर्संयोजन होते रहने से इनमें प्रशासनिक, सामाजिक एवं व्यावसायिक असमानताओं में वृद्धि होती गई। अतः समाज के संयोजन तथा विखण्डन से विभेदीकरण का विस्तार होता गया।
6. **संरचनात्मक विभेदीकरण के साथ प्रकार्यात्मक विभेदीकरण भी प्रकट होता है** (Functional Differentiation goes with Structural Differentiation)—इस सम्बन्ध में स्पेन्सर के तर्क है कि सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया के दौरान जब समाज एकरूपता से विषमता की ओर बढ़ता है तो समाज की संरचना एवं आकार में बदलाव व विभेदीकरण उत्पन्न नहीं होता है अपितु उसके प्रकार्यों में भी ऐसा ही होता है। स्पेन्सर के कथनानुसार प्रकार्यों में परिवर्तन का अभाव होने से इसकी संरचना में भी परिवर्तन सम्भव नहीं है। यदि कोई समाज समरूपता से विषमरूपता की ओर गति करता है, तो उसकी आवश्यकताओं में भी वृद्धि होगी जिसे पूर्ण करने हेतु विभिन्न प्रकार के प्रकार्यों की वृद्धि हो जाती है।

TOUCH 'n' PASS

7. **एकीकरण एवं विभेदीकरण में वृद्धि के साथ-साथ समाज में सामंजस्य तथा सुनिश्चितता भी बढ़ती जाती है** (Coherence and Definitenes Increase in Society with the Increase of Integration and Differentiation)—स्पेन्सर का मत है कि समाज में एकीकरण तथा विभेदीकरण के परिणामस्वरूप संरचना तथा प्रकार्यों में वृद्धि सम्भव है। इससे समाज में सुनिश्चितता एवं सामंजस्य भी बढ़ता है, समाज के आकार में जब वृद्धि होती है तो इस वृद्धि को संतुलित करने हेतु इसकी संरचना में विभेदीकरण होने लगता है। यही विभेदीकृत संरचनाएँ परस्पर निर्भरता उत्पन्न करती हैं तथा पारस्परिक निर्भरता समाज में सामंजस्य और सुनिश्चितता में वृद्धि करती है। प्रारम्भिक काल में जब मनुष्य घुमक्कड़ीय जीवन यापन करता था तो सामाजिक संगठन अस्पष्ट था। परन्तु जैसे-जैसे प्रगति होती गई उसी के साथ ही इसमें स्थायित्व एवं स्पष्टता आती गई।
8. **सामाजिक उद्विकास बहु-दिशात्मक होता है** (Social Evolution is Multi-Dimensional)—सामाजिक उद्विकास को स्पेन्सर द्वारा कहीं एक रेखीय (Unilinear) माना गया है तो कहीं बहुरेखीय (Multilinear)। उनके तथ्यों के अनुसार सामाजिक उद्विकास के विभिन्न रूपों के अन्तर्गत कभी एक रेखीय कभी बहुरेखीय तो कभी इसका चक्रीय रूप प्रदर्शित किया गया है।
9. **सामाजिक उद्विकास अनेक आन्तरिक एवं बाह्य कारकों द्वारा प्रभावित होता है** (Social Evolution is Affected by Many Internal and External Factors)—इस तथ्य पर स्पेन्सर बिल्कुल भी सहमति नहीं देते हैं कि समाज का निर्माण कुछ महापुरुषों द्वारा किया गया था। उन्होंने यह भी नहीं स्वीकार किया कि उद्विकास समाज में अन्तर्निहित आन्तरिक क्षमताओं की सहज अभिव्यक्ति है। सामाजिक परिवर्तन हेतु विचारों को भी उत्तरदायी नहीं समझा जा सकता। इस विषय पर स्पेन्सर का विचार है कि सामाजिक उद्विकास बाह्य तथा आन्तरिक कारकों के सहयोग का प्रभाव एवं प्रतिफल है। बाह्य कारकों में प्राय: भू-आकृति, संसाधन, जलवायु तथा अन्य विभिन्न भौगोलिक और पारिस्थितिकी कारक प्रमुख हैं। सामाजिक उद्विकास के आन्तरिक कारकों में शारीरिक विशेषताएँ, जनसंख्या वृद्धि, मनोवेग (Emotions) तथा ज्ञान आदि शामिल हैं। स्पेन्सर ने संघर्ष (अन्तर्जातीय या अन्तर्राष्ट्रीय) उद्विकास हेतु उत्तरदायी माना है। इन संघर्षों के अभाव में छोटे समूह विशाल रूप धारण नहीं कर सकते और न ही उच्च जीवन तथा उच्चतर सभ्यताओं व उच्च संगठन के द्वारा सामग्री भी उत्पन्न करना सम्भव था।

सामाजिक उद्विकास के स्तर (चरण) (Stages of Social Evolution)

हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार सामाजिक उद्विकास के निम्नलिखित चार चरण होते हैं—

1. सरल समाज (Simple Society)
2. संयुक्त समाज (Compound Society)
3. द्विगुण संयुक्त समाज (Doubly Compound Society)
4. त्रिगुण संयुक्त समाज (Trebly Compound Society)

1. **सरल समाज** (Simple Society)—मानव समाज का सबसे आरम्भिक स्वरूप सरल समाज था। इस समाज की सामाजिक संरचना अत्यन्त सरल थी। स्पेन्सर ने इसे सामाजिक उद्विकास का प्रथम चरण माना है। इस समाज में व्यक्तियों के मध्य उच्चता या निम्नता का कोई भेद नहीं था। सरल समाज में समरूपता पायी जाती है तथा यह अन्य समाज की अधीनता से मुक्त होता है। प्राय: ऐसे समाज में स्थायी नेतृत्व, अस्थाई नेतृत्व या नेतृत्वविहीन भी हो सकते हैं। कुछ इस प्रकार के समाज भी हैं, जिनमें कभी नेतृत्व का विकास ही नहीं हुआ है, जैसे- वनवासी वेड्डा लोग। अस्थायी नेतृत्व वाले समाज परिस्थितियों के अनुसार कुछ समय के लिए अपना नेता चुन लेते हैं तथा परिस्थितियों के बदलने पर या उद्देश्य के पूर्ण होने पर उन्हें हटा देते हैं। उदाहरण के तौर पर भारतीय उपमहाद्वीप के अंडमान-निकोबार द्वीप समूह के शिकारी तथा गुयाना की जनजातियों में शत्रुओं से संघर्ष या शिकार करने के दौरान किसी शक्तिशाली, सक्षम, अनुभवी, उम्रदराज या आर्थिक सम्पन्न व्यक्ति को कुछ समय के लिए अपना नेता चुन लेते हैं तथा परिस्थितियों के अनुकूल होने या उद्देश्य के पूर्ण हो जाने के पश्चात् उस व्यक्ति को नेतृत्व पद से हटा दिया जाता है। स्थायी नेतृत्व वाले सरल समाज वे समाज होते हैं जहाँ नेतृत्व पद वंश परम्परा के अनुसार होते हैं, जैसे कि प्यूब्लो, पैन्टेगोनिया आदि आदिम समाजों में नेतृत्व का स्वरूप अस्थायी है। सरल समाज का निर्माण कुछ परिवारों से मिलकर होता है। इस समाज के जीवनयापन के लिए घुमक्कड़,

TOUCH 'n PASS

अर्द्ध-घुमक्कड़ या स्थायी निवास बनाकर रहते थे। इस समाज में कोई स्पष्टता नहीं थी क्योंकि इस समाज में सभी लोग एक-दूसरे से घुले-मिले थे।

2. **संयुक्त/मिश्रित समाज** (Compound Society)—संयुक्त समाज वह समाज होता है, जिसके अन्तर्गत किसी एक मुखिया या प्रधान के नेतृत्व में दो या दो से अधिक स्थाई नेतृत्व वाले सरल समाज संगठित होते हैं। इस समाज में पारस्परिक निर्भरता तथा श्रम विभाजन का अविर्भाव हुआ। इसमें समाज की प्रत्येक संख्या अलग होकर धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगती है।

स्पेन्सर के अनुसार, 'संयुक्त समाज वे होते हैं जिनके संघटक सरल समाजों के अपने एक प्रधान मुखिया के अधीन होते हैं।'

संयुक्त समाज को नेतृत्व की दृष्टि से तीन प्रकारों में बाँटा जा सकता है—

(i) अस्थायी नेतृत्व वाले (Provisional Leadership)

(ii) स्थायी नेतृत्व वाले (Permanent Leadership)

(iii) अनिश्चित नेतृत्व वाले (Uncertain Leadership)

संयुक्त समाज में व्यक्ति एक-दूसरे से अधिक सम्बद्ध होने लगते हैं तथा यह समाज सरल समाज की अपेक्षा अधिक संगठित होता है। यदि जीवनयापन के आधार पर देखें तो सरल समाजों की भाँति संयुक्त समाजों को भी घुमक्कड़, अर्ध घुमक्कड़ तथा स्थायी निवास बनाकर रहने वाले समाजों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

3. **द्विगुण संयुक्त/समाज** (Doubly Compound Society)—द्विगुण संयुक्त समाज का निर्माण एक से अधिक संयुक्त समाजों से मिलकर होता है। इस प्रकार के समाज अधिक स्थिर, जटिल तथा संगठित होते हैं। इस समाज की सरकारों की विशेषता अधिक स्थायी तथा विस्तृत होना है। इस समाज में विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ लगभग स्वायत्त होती हैं। इस समाज में नियन्त्रणकारी व्यवस्था पाई जाती है। नेतृत्व की दृष्टि से द्विगुण संयुक्त समाज को भी तीन भागों में बाँटा गया है, जो निम्नलिखित हैं—

(i) आकस्मिक नेतृत्व वाले (Emergent Leadership)

(ii) अस्थायी नेतृत्व वाले (Provisional Leadership)

(iii) स्थायी नेतृत्व वाले (Permanent Leadership)

जीवन यापन की दृष्टि से सभी द्विगुण संयुक्त समाज के लोग स्थायी निवास बनाकर रहते हैं। इस समाज में विभिन्न गोत्र के समुदाय एक जनजाति के रूप में स्थापित हो गए तथा इस समाज में पुरोहित व्यवस्था भी विद्यमान है। इन समाजों में प्रथाएँ कानून का स्वरूप ले लेती हैं तथा धार्मिक अनुष्ठान निश्चित, जटिल तथा कठोर हो जाते हैं। समाज में जाति प्रथा पाई जाती है तथा औद्योगिक संगठनों में श्रम विभाजन स्पष्ट परिलक्षित होता है। द्विगुण संयुक्त समाज में कला और ज्ञान की पर्याप्त उन्नत स्वरूप विद्यमान होता है तथा नगरीय संस्कृति विकसित स्वरूप में पायी जाती है।

4. **त्रिगुण संयुक्त समाज** (Trebly Compound Society)—त्रिगुण संयुक्त समाज का निर्माण कई द्विगुण संयुक्त समाज या अनेक सामाजिक जनजातियों के आपस में समन्वयन से होता है। इस समाज में स्थाई नेतृत्व पाया जाता है क्योंकि समाज का निर्माण करने वाली विभिन्न इकाइयाँ एक केन्द्रीय सत्ता के अधीन होती हैं। इस समाज में नियामक संस्थाएँ पहले के समाज से अधिक जटिल अवस्था में पाई जाती हैं। जीवनयापन की दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि ये समाज भी पूरी तरह से स्थायी निवास बनाकर रहने वाला समाज है। इस प्रकार के समाज के उदाहरण के तौर पर रूस, फ्रांस, ब्रिटेन, इटली, जर्मनी आदि का उदाहरण लिया जा सकता है, जो कि त्रिगुण संयुक्त समाज के स्तर तक पहुँच गये हैं या इस स्तर से आगे विकसित हो चुके हैं। इस प्रकार के समाज में व्यापार करने के लिए लोगों के पास अनेक साधन उपलब्ध हो गए जैसे कि टेलीविजन, रेडियो, फोन आदि। वर्तमान समय का समाज लगभग इसी तरह का समाज है।

स्पेन्सर का मत है कि समाज का विकास उक्त चरणों से ही हुआ है, अर्थात् किसी भी बड़े समाज का निर्माण अपने पूर्ववर्ती समाज के स्तर से हुआ है। कोई भी विकसित समाज ऐसा नहीं है, जो कि बिना पूर्ववर्ती चरणों से गुजरे सीधा विकसित हो गया हो। स्पेन्सर कहते हैं कि सभी ऐतिहासिक और वर्तमान में उपलब्ध समाज इन स्तरों में किसी न किसी स्तर से सम्बन्धित है तथा एक स्तर के सभी समाजों का निर्माण उसके एकदम पूर्ववर्ती समाजों के संयोग से होता है।

TOUCH 'n PASS

समाज के स्वरूप (Forms of Society)

स्पेन्सर ने समाज के निम्नलिखित दो स्वरूपों की कल्पना की है—

1. सैनिक समाज (Militant Society)
2. औद्योगिक समाज (Industrial Society)

सामाजिक उद्विकास की रूपरेखा के प्रतिपादन के दौरान ही स्पेन्सर ने बताया कि समाज में पहले सैनिक व्यवस्था होती है, उसके बाद समाज का विकास पूर्ण विभेदीकृत औद्योगिक समाज में होता है। समाज के दो स्वरूपों की व्याख्या निम्नवत है—

1. **सैनिक समाज** (Militant Society)—सैनिक समाज का आधार पारस्परिक संघर्ष एवं युद्ध था। इस समाज की सभी क्रियाएँ उन कार्यों में लगी रहती हैं जिनसे कि सेना की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। स्पेन्सर के अनुसार, 'सैनिक क्रियाओं के विकास के कारण विभिन्न समुदायों में विभक्त व्यक्तियों का एकीकरण हुआ। छोटे-छोटे खानाबदोशी झुंडों ने एक साथ मिलकर एक बड़े समूह का निर्माण किया।' इस समाज में व्यक्ति की अपेक्षा राज्य को अधिक महत्त्वपूर्ण तथा सर्वोपरि माना जाता है तथा व्यक्ति का यह अनिवार्य कर्त्तव्य होता है कि वह राज्य को सहयोग प्रदान करें। इस समाज में सम्पत्ति और उद्योगों का राष्ट्रीयकरण पाया जाता है। व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह समाज के लिए बलिदान देने को तत्पर रहे।
2. **औद्योगिक समाज** (Industrial Society)—औद्योगिक समाज में निरंकुश शासन का स्थान प्रजातन्त्र ले लेता है। समाज में व्यवस्था तथा न्याय के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को पूर्णतया मान्यता प्रदान की जाती है। सरकार का संगठन जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों के द्वारा होता है। इस व्यवस्था में व्यक्ति का महत्त्व बढ़ जाता है तथा उसे अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का अवसर प्राप्त होता है। स्पेन्सर ने औद्योगिक व्यवस्था को आदर्श व्यवस्था मानते हुए कहा है कि इससे निरंकुशतन्त्र प्रजातन्त्र में बदल जाएगा तथा औद्योगिक विकास के साथ-साथ व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति हो जाएगी। परिवर्तन के लिए सबसे अनुकूल समाज औद्योगिक समाज होता है, जहाँ नैतिकता के विकास का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है।

   इस प्रकार स्पेन्सर ने सैनिक समाज और औद्योगिक समाज के रूप में दो प्रकार के समाज की कल्पना की है। जहाँ एक ओर सैनिक समाज में क्रियात्मक शक्तियों को सैनिकों के लिए सुख-सुविधाओं को जुटाने के उद्देश्य से नियोजित किया जाता है तथा समाज के उन क्रिया-कलापों का बोलबाला होता है, जिनका सम्बन्ध सैनिकों से होता है तो दूसरी ओर औद्योगिक समाज में आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था तथा बाहरी आक्रमणों से रक्षा के लिए सैन्य शक्तियों का प्रयोग किया जाता है।

स्पेन्सर के सामाजिक उद्विकास सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Spencer's Theory of Social Evolution)

स्पेन्सर के सामाजिक उद्विकास सिद्धान्त में कई कमियाँ हैं। उसके द्वारा वर्णित समाजों के प्रकार में आपसी समन्वय भी होता है, जैसा कि हम वर्तमान परिस्थितियों में देख सकते हैं। इनके सिद्धान्त की आलोचना निम्नांकित हैं—

1. स्पेन्सर द्वारा दिए गए सामाजिक उद्विकास के चरणों में यह जरूरी नहीं है कि सभी समाज अनिवार्य रूप से उन्हीं चरणों में गुजरे।
2. सामाजिक उद्विकास का नियम सभी समाजों पर लागू नहीं हो सकता है, क्योंकि सभी समाज के उद्विकास की परिस्थितियाँ एवं प्रतिमान भिन्न-भिन्न होते हैं।
3. दुर्खीम के अनुसार, 'जब समाज समरूपता की स्थिति में होता है, तो वह अस्थिर होता है, इस बात से दुर्खीम सहमत नहीं है, दुर्खीम ऐसे समाजों को सामान्य विश्वासों एवं व्यवहारों के प्रचलन के कारण अधिक संगत और अस्थायी मानते हैं।'
4. आइगरकॉन के अनुसार, 'स्पेन्सर ने एकीकरण एवं विभेदीकरण की अवधारणाओं को परिभाषित किए बिना उनका प्रयोग किया है। अत: उनके सिद्धान्तों में अनेक स्थानों पर अस्पष्टता दिखाई देती है।'
5. प्रो० बारकर के आलोचनानुसार, 'स्पेन्सर के प्राणी विज्ञान तथा व्यक्तिवाद दो बेजोड़ घोड़ों के समान है, जो गाड़ी को विरोधी दिशाओं में खींचते हैं।'

TOUCH 'n' PASS

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. ऑगस्ट कॉम्टे का जन्म कब हुआ था?
(क) 1798 (ख) 1698 (ग) 1998 (घ) 1596
उत्तर (क) 1798

प्र.2. कॉम्टे किस देश के समाजशास्त्री थे?
(क) फ्रांस (ख) जर्मनी (ग) इटली (घ) इंग्लैण्ड
उत्तर (क) फ्रांस

प्र.3. कॉम्टे ने समाजशास्त्र की कितनी शाखाएँ बताई हैं?
(क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) पाँच
उत्तर (क) दो

प्र.4. विज्ञानों के संस्तरण क्रम में सबसे आधुनिक विज्ञान है–
(क) रसायन विज्ञान (ख) खगोलशास्त्र (ग) जीवनशास्त्र (घ) रसायनशास्त्र
उत्तर (घ) रसायनशास्त्र

प्र.5. कॉम्टे के त्रिस्तरीय नियम में प्रत्यक्षवाद का स्तर है–
(क) प्रथम (ख) द्वितीय (ग) तृतीय (घ) चतुर्थ
उत्तर (ग) तृतीय

प्र.6. समाजशास्त्र को 'सामाजिक भौतिकशास्त्र' किसने कहा था?
(क) स्पेन्सर (ख) कॉम्टे (ग) दुर्खीम (घ) सेण्ट साइमन
उत्तर (ख) कॉम्टे

प्र.7. हरबर्ट स्पेन्सर किस देश के समाजशास्त्री थे?
(क) जर्मनी (ख) इंग्लैण्ड (ग) रूस (घ) चीन
उत्तर (ख) इंग्लैण्ड

प्र.8. सामाजिक उद्विकास के सिद्धान्तकार हैं–
(क) कॉम्टे (ख) दुर्खीम (ग) रूसो (घ) स्पेन्सर
उत्तर (घ) स्पेन्सर

प्र.9. 'फर्स्ट प्रिंसिपल्स' कृति है–
(क) स्पेन्सर (ख) दुर्खीम (ग) कॉम्टे (घ) माण्टेस्क्यू
उत्तर (क) स्पेन्सर

प्र.10. स्पेन्सर ने समाज के कौन-से दो स्वरूप बताए हैं?
(क) औद्योगिक एवं सरल समाज (ख) सरल एवं जटिल समाज
(ग) सैनिक एवं औद्योगिक समाज (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ग) सैनिक एवं औद्योगिक समाज

प्र.11. समाजशास्त्र का संस्थापक जनक किसे कहा जाता है?
(क) ऑगस्ट कॉम्टे (ख) एमिल दुर्खीम (ग) मैरी ऑगस्टस (घ) स्पेंसर
उत्तर (क) ऑगस्ट कॉम्टे

प्र.12. ऑगस्ट कॉम्टे एक ..... समाजशास्त्री थे।
(क) फ्रेंच (ख) अमेरिकी (ग) ब्रिटिश (घ) जर्मन
उत्तर (क) फ्रेंच

TOUCH 'n' PASS

प्र.13. सामाजिक नियंत्रण समाज में ..... लाता है।
(क) सामाजिक व्यवस्था (ख) विचलन (ग) अवज्ञा (घ) हिंसा
उत्तर (क) सामाजिक व्यवस्था

प्र.14. शहरी क्षेत्रों में मलिन बस्तियाँ दर्शाती हैं–
(क) श्रम का विभाजन (ख) अधिक जनसंख्या और प्रवासन
(ग) शिक्षा और विकास (घ) निरक्षरता
उत्तर (ख) अधिक जनसंख्या और प्रवासन

प्र.15. आर्थिक विनिमय पर आधारित आर्थिक उद्यम की प्रणाली कहलाती है–
(क) पूँजीवाद (ख) औद्योगीकरण
(ग) आधुनिकीकरण (घ) पश्चिमीकरण
उत्तर (क) पूँजीवाद

प्र.16. समाजशास्त्र शब्द किसने गढ़ा?
(क) हरबर्ट स्पेंसर (ख) एमिल दुर्खीम (ग) ऑगस्ट कॉम्टे (घ) कार्ल मार्क्स
उत्तर (ख) एमिल दुर्खीम

प्र.17. समाजशास्त्र शब्द में सामाजिक शब्द का क्या अर्थ है?
(क) साथी (ख) संग्रह (ग) झुंड (घ) सर्वसम्मति
उत्तर (क) साथी

प्र.18. ..... सामाजिक व्यवस्था के लिए अभिनेता के कार्यात्मक महत्त्व को दर्शाता है।
(क) स्थिति (ख) कार्रवाई (ग) अधिक (घ) भूमिका
उत्तर (घ) भूमिका

प्र.19. आर्थिक विनिमय पर आधारित आर्थिक उद्यम की प्रणाली कहलाती है–
(क) पूँजीवाद (ख) औद्योगीकरण
(ग) आधुनिकीकरण (घ) पश्चिमीकरण
उत्तर (क) पूँजीवाद

प्र.20. ''सोशियोलॉजिकल इमेजिनेशन'' पुस्तक किसने लिखी?
(क) सी०डब्ल्यू० मिल्स (ख) ऑगस्ट कॉम्टे
(ग) मैक्स वेबर (घ) कार्ल मार्क्स
उत्तर (क) सी०डब्ल्यू० मिल्स

प्र.21. कॉम्टे का जन्म कहाँ हुआ था?
(क) एपिनाल (ख) रेनिश (ग) ट्रायर (घ) मोंटपेलियर
उत्तर (घ) मोंटपेलियर

प्र.22. औद्योगिक क्रांति की विशेषता ..... थी।
(क) शहरों की ओर प्रवास (ख) घड़ी के समय का उद्भव
(ग) खराब स्वच्छता और सामान्य गंदगी (घ) ये सभी
उत्तर (घ) ये सभी

प्र.23. 'सामान्य ज्ञान' ज्ञान का आधार ..... है।
(क) तर्कसंगत सोच (ख) सामान्य समझ
(ग) उद्देश्य (घ) तथ्यों का एक समूह है
उत्तर (क) तर्कसंगत सोच

TOUCH 'n' PASS

प्र.24. समाजशास्त्र का अध्ययन है–

(क) मानव सामाजिक व्यवहार (ख) पौधे और जानवर
(ग) मनुष्य और पर्यावरण (घ) पृथ्वी

उत्तर (क) मानव सामाजिक व्यवहार

प्र.25. समाजों का वर्गीकरण आधारित था–

(क) शहरीकरण (ख) विकेंद्रीकरण
(ग) औद्योगीकरण (घ) गैर-औद्योगिकीकरण

उत्तर (ग) औद्योगीकरण

प्र.26. केन्द्रीय भूमि सुधार समिति की स्थापना किस वर्ष की गई?

(क) 1969 (ख) 1970 (ग) 1971 (घ) 1972

उत्तर (ख) 1970

प्र.27. मैक्रो-सोशियोलॉजी का अध्ययन है–

(क) छोटे समूह (ख) बड़े समूह
(ग) अल्पसंख्यक (घ) आदिवासी समूह

उत्तर (ख) बड़े समूह

प्र.28. परिवार के अध्ययन के लिए 'स्थान, कार्य और लोग' सूत्र प्रतिपादित किया गया था–

(क) फ्रेडरिक ले प्ले (ख) सी०एच० कूली
(ग) ई० डेमोलिन्स (घ) हेनरी डी० टूरविले

उत्तर (क) फ्रेडरिक ले प्ले

प्र.29. ''सामान्य ज्ञान'' ज्ञान पर प्रश्न नेतृत्व करते हैं–

(क) समाजशास्त्रीय ज्ञान (ख) सामाजिक भेदभाव
(ग) सामान्य ज्ञान (घ) समाजशास्त्रीय कल्पना

उत्तर (क) समाजशास्त्रीय ज्ञान

प्र.30. किस सामाजिक दार्शनिक ने समाजशास्त्र को ''सामाजिक भौतिकी'' कहा है?

(क) ऑगस्ट (ख) विल्फ्रेडो पेरेटो
(ग) मैक लीवर (घ) हरबर्ट स्पेंसर

उत्तर (क) ऑगस्ट

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-III

इमाईल दुर्खीम
Emile Durkheim

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. इमाईल दुर्खीम की प्रमुख कृतियाँ या रचनाएँ बताइए।
Give the main works of Emile Durkheim.

उत्तर इमाईल दुर्खीम ने अपनी सम्पूर्ण रचनाएँ फ्रेंच भाषा में ही लिखी है परन्तु बाद में उनकी रचनाओं का अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद किया गया। कुछ रचनाएँ इमाईल दुर्खीम के जीवनकाल में ही प्रकाशित हो गई थीं, जबकि कुछ रचनाएँ उनके द्वारा सम्पादित शोध-पत्रिका 'L Amnee Sociologique' में प्रकाशित उनके लेखों के आधार पर उनकी मृत्यु के पश्चात की गईं। दुर्खीम की कुछ प्रमुख रचनाएँ निम्न प्रकार है—

1. Division labour in society (1893)
2. The rules of sociological methods (1895)
3. The Suicide (1897)
4. The Elementory forms of religious life (1912)
5. Sociology of Education (1922)
6. Sociology of philosophy (1924)
7. Moral Education (1924)
8. The socialism (1928)
9. The evolution of pedagogy in France (1928)

प्र.2. दुर्खीम के पाँच प्रमुख सिद्धान्त एवं अवधारणाओं को संक्षेप में लिखिए।
Write the main five theory and concepts of Durkheim in brief.

उत्तर 1. पद्धतिशास्त्र
2. समाज में धर्म विभाजन का सिद्धान्त
3. सामाजिक विकास का सिद्धान्त
4. आत्महत्या का सिद्धान्त
5. धर्म का सिद्धान्त

प्र.3. सावयवी एकता की कोई तीन विशेषताएँ लिखिए।
Write any three characteristics of organic solidarity.

उत्तर 1. श्रम विभाजन की बाहुलता इन समाजों में होती है, और लोग स्वयं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए परस्पर निर्भर रहते हैं।
2. सावयवी एकता तथा आंगिक वाले समाजों में विशेषीकरण तथा विभेदीकरण पाया जाता है, समाज में अनेक वर्ग मिलते हैं।
3. इस प्रकार के समाज में अनेक संगठन व समूह पाए जाते हैं, इस कारण यहाँ पर प्रतिकारी कानूनों की प्रधानता पायी जाती है।

प्र.4. समाजशास्त्र में एमिल दुर्खीम का सिद्धांत क्या था?
What was the theory of Emile Durkheim in sociology?

TOUCH 'n' PASS

उत्तर समाजशास्त्र में प्रकार्यवादी सिद्धान्त के जनक इमाइल दुर्खीम को माना जाता है जिन्होंने यह बताया था कि समाज में एकता बनाए रखने के लिए धर्म; नैतिक आधार प्रदान करता है। धर्म के आधार पर समाज के नैतिक मूल्य समाज के एकाकी स्वरूप को पुष्ट करते हैं।

प्र.5. समाजशास्त्र के लिए दुर्खीम का क्या योगदान है?

What is the contribution of Durkheim in sociology?

उत्तर दुर्खीम को समाजशास्त्रीय अध्ययन में सांख्यिकी के सर्जनात्मक उपयोग करने का श्रेय भी जाता है। इस संबंध में उनकी रचना सुइसाइड एक मानक की तरह स्थापित है। इस कृति में दुर्खीम ने यह प्रतिपादित किया था कि आत्महत्या की अलग-अलग दरों की व्याख्या व्यक्ति के सामाजिक सम्बद्धता के स्तरों में प्रकट अंतर के आधार पर की जा सकती है।

प्र.6. एमिल दुर्खीम के अनुसार सामाजिक तथ्य क्या है?

What is the social fact according to Durkheim?

उत्तर दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों को अभिनेता के लिए बाहरी और जबरदस्ती की चीजों के रूप में परिभाषित किया। ये सामूहिक शक्तियों से निर्मित होते हैं और व्यक्ति से उत्पन्न नहीं होते हैं। हालाँकि वे देखने योग्य प्रतीत नहीं हो सकते हैं, सामाजिक तथ्य चीजें हैं और उन्हें अनुभवजन्य रूप से अध्ययन किया जाना चाहिए, दार्शनिक रूप से नहीं।

प्र.7. दुर्खीम के अनुसार आधुनिक समाज में क्या होता है?

What happens in Modern society, according to Durkheim?

उत्तर दुर्खीम का कहना है कि श्रम विभाजन व विशेषीकरण के कारण सामूहिकता का महत्त्व लुप्त हो गया और व्यक्ति का महत्त्व बढ़ गया। आधुनिक समाज में श्रम विभाजन के कारण अलग-अलग कार्य होने के फलस्वरूप भी समाज के सदस्यों में एक दूसरे के प्रति आश्रित रहने की बात देखी जा सकती है। यह समाज के सदस्यों में एक विशिष्ट प्रकार की एकता है।

प्र.8. सामाजिक नियन्त्रण का दुर्खीम का सिद्धांत क्या है?

What is the theory of social control by Durkheim?

उत्तर दुर्खीम के अनुसार मानव-जाति शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति से तृप्त नहीं होती। मनुष्य की इच्छाएँ और अभिलाषाएँ अपार हैं। इन्हें नियंत्रित करने के लिए सामाजिक नियम आवश्यक हैं। सामाजिक नियंत्रण के द्वारा ही व्यक्तिगत इच्छाओं को काबू में रखा जा सकता है।

प्र.9. दुर्खीम के अनुसार सामाजिक तथ्य कितने प्रकार के होते हैं?

How many types of social facts are there, according to Durkheim?

उत्तर दुर्खीम के अनुसार, "सामाजिक तथ्यों की श्रेणी में कार्य करने, सोचने तथा अनुभव करने के तरीके शामिल हैं जो व्यक्ति के लिए बाहरी होते हैं तथा जो अपनी दबाव की शक्ति के माध्यम से व्यक्ति को नियन्त्रित करते हैं।" (Exteriority) और दबाव की शक्ति (Constraint) की दो प्रमुख विशेषताएँ पाई जाती हैं।

प्र.10. दुर्खीम द्वारा दी गई समाजशास्त्र की परिभाषा क्या है?

What is the definition of sociology as given by Durkheim?

उत्तर दुर्खीम के अनुसार, सामाजिक तथ्य मनुष्य के बाहर भले ही रहता है, परन्तु यह व्यक्ति को आन्तरिक रूप से प्रभावित करता है। इसके प्रभाव तथा महत्त्व को सभी व्यक्ति अपने अन्दर अनुभव कर सकते हैं। उदाहरण के लिए समाज का जो अनुमोदन व्यक्ति को प्राप्त होता है, उसका प्रभाव मनुष्य के ऊपर उसके व्यवहार को नियन्त्रित करने में पड़ता है।

प्र.11. दुर्खीम के अनुसार समाजशास्त्र की विषय-वस्तु कौन-सी है?

What is the subject matter of sociology according to Durkheim?

उत्तर दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों के अध्ययन पर बल दिया तथा स्वयं श्रम विभाजन, आत्महत्या और धर्म जैसे सामाजिक तथ्यों का अध्ययन किया। उन्होंने व्यक्तित्व धर्म, कानून, प्रतिमान, अपराध जनसंख्या, विज्ञान, कला आदि को तथा आर्थिक पहलुओं के समाजशास्त्रीय अध्ययन को समाजशास्त्र की विषयवस्तु में विशेष स्थान दिया है।

TOUCH 'n PASS

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. दुर्खीम के सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।
Explain the theories of Durkheim.

उत्तर

दुर्खीम के सिद्धान्त
(Theories of Durkheim)

दुर्खीम के कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख इस प्रकार है—

1. सामाजिक तथ्य, 2. सामाजिक एकता, 3. आत्महत्या का सिद्धान्त।

1. व्यक्ति न होकर समाज का कोई छोटा समूह (जैसे राजनीतिक, साहित्यिक, व्यावसायिक संघ या कोई धार्मिक सम्प्रदाय) होता है। इसी आधार पर दुर्खीम सामाजिक तथ्यों को कोई वस्तु मान कर वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करने पर जोर देते हैं, क्योंकि इसे एक स्वतंत्र वास्तविकता की तरह अनुभूत किया जा सकता है।
2. **आन्तरिक** (Internal)—सामाजिक तथ्य व्यक्ति के बाहर विद्यमान रहता है परन्तु यह मनुष्य को प्रभावित करता है। इसके प्रभाव को सभी व्यक्ति स्वयं के अन्दर अनुभूत कर सकते हैं। समाज के जो भी प्रमाण हैं, उन पर सामाजिक लोगों के व्यवहार को नियंत्रित करने का दबाव होता है, इसके फलस्वरूप व्यक्ति अपने व्यवहार को नियंत्रण में रखता है।
3. **सार्वभौमिकता** (Universality)—सामाजिक तथ्यों की प्रकृति सार्वभौमिक होती है, क्योंकि यह प्रत्येक व्यक्ति के चिन्तन को एक समान रूप से प्रभावित करता है। जैसे-यदि हम धर्म की बात करेंगे तो यह बात स्पष्ट हैं, कि धार्मिक भावना तथा उन पर विश्वास व उपासना करना सभी व्यक्तियों के सामूहिक जीवन का अंग होता है। तथ्यों को दो स्वरूपों में समझ सकते हैं-सामाजिक एवं व्यक्तिगत। व्यक्तिगत स्वरूप में चिन्तन की पद्धति, कार्य करने के तरीके को व्यक्तिगत रूप से भी प्रभावित करता है। जबकि सामाजिक स्वरूप में केवल व्यक्ति ही नहीं, वरन् पूरा समाज भी उससे प्रभावित होता है। हालाँकि दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य के व्यक्तिगत स्वरूप की अपेक्षा सामाजिक स्वरूप का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।
4. **वस्तुनिष्ठ** (Objective)—सामाजिक तथ्य को वस्तुनिष्ठ भी कहा जाता है क्योंकि सामाजिक तथ्यों का बिना किसी पूर्वाग्रह के अध्ययन किया जा सकता है। आत्महत्या के सिद्धान्त पर उन्होंने ज्ञात किया कि इसके बारे में कुछ मनोवैज्ञानिक अध्ययन किये गये हैं। आत्महत्या का आधार न तो जैविक है, और न ही मनोवैज्ञानिक। इसका विरोध करते हुए उन्होंने आत्महत्या की घटनाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने पर जोर दिया। उन्होंने इसकी पूर्वग्रसित सोच को नकारते हुए आत्महत्या का एक नया विश्लेषण प्रस्तुत किया। दुर्खीम स्वयं के निष्कर्ष के आधार पर कहते हैं कि जब व्यक्ति स्वयं को समाज से भिन्न या अलग अनुभूत करने लगता है तो आत्महत्या की सम्भावना प्रबल हो जाती है। यह माना जाता है कि जो व्यक्ति धार्मिक होता है, उसके आत्महत्या की सम्भावना प्राय: कम हो जाती है। इसी प्रकार विवाहित व्यक्ति की तुलना में अविवाहित व्यक्ति में आत्महत्या की सम्भावना ज्यादा बढ़ जाती है। इस प्रकार आत्महत्या एक सामाजिक तथ्य है यह मानते हुए उसके सामाजिक विवेचना पर ज्यादा जोर दिया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है, कि दुर्खीम द्वारा संदर्भित सामाजिक तथ्य की अवधारणा एक वैज्ञानिक धारणा है जिससे उन्होंने समाजशास्त्र में तथ्यों के सामाजिक विश्लेषण को आधार बनाकर उसे वैज्ञानिक कसौटी पर रखने का प्रयास किया है।

प्र.2. सामाजिक तथ्य की अवधारणा को लिखिए।
Write the concept of social fact.

उत्तर

सामाजिक तथ्य की अवधारणा
(Concept of Social Fact)

दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित 'सामाजिक तथ्यों का पद्धतिशास्त्र की विवेचना में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके अनुसार सामाजिक तथ्य सामाजिक विचार व क्रिया का ही एक रूप है। दुर्खीम के अनुसार सामाजिक तथ्य दिन-प्रतिदिन घटित होने वाली घटनाओं से सम्बन्धित है। इनके अनुसार बाहरी कारणों का व्यक्ति पर केवल प्रभाव ही नहीं होता वरन् इनमें कोई शक्ति भी विद्यमान होती है जो व्यक्ति को उसकी इच्छाओं के विरुद्ध स्वयं के समक्ष झुकने पर विवश करती है। दुर्खीम के अनुसार, "एक सामाजिक तथ्य कार्य करने का वह निश्चित या अनिश्चित तरीका है, जो व्यक्ति पर बाह्य दबाव डालने की क्षमता रखता हो।" दुर्खीम ने एक अन्य

TOUCH 'n PASS

रूप में इसे परिभाषित किया है—"ये कार्य करने, सोचने या अनुभव करने के वे तरीके हैं जिनमें व्यक्तिगत चेतना से बाहर भी अस्तित्व को बनाए रखने की उल्लेखनीय विशेषता होती है।"

दुर्खीम ने समाजशास्त्र को एक विशेष व स्वतंत्र विज्ञान की संज्ञा दी है। अत: उनके अनुसार समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र भी स्पष्ट व सुनिश्चित होना चाहिए। उनके ग्रन्थों से स्पष्ट है कि समाजशास्त्र समस्त मानवीय क्रियाओं का अध्ययन ही नहीं करता वरन सामाजिक तथ्य ही समाजशास्त्र की वास्तविक अध्ययन वस्तु हैं। प्रत्येक सामाजिक तथ्य का निश्चित रूप से पालन किया जाता है, क्योंकि यह अनिवार्य हैं। दुर्खीम का मानना है कि समाजशास्त्र सामाजिक तथ्यों की वैज्ञानिक तरीके से व्याख्या करता है। सामाजिक तथ्यों को समझने से पहले यह ज्ञान आवश्यक है कि किन तथ्यों को सामाजिक तथ्यों की श्रेणी में रखते हैं। सामाजिक तथ्यों में सोचने, कार्य करने तथा अनुभव के वह सभी तरीके आते हैं, जिनकी सहायता से स्वयं की चैतन्यता से बाहर भी स्वयं का अस्तित्व बनाये रखने का गुण विद्यमान होता है।

दुर्खीम के अनुसार (According to Durkheim), "सामाजिक तथ्य व्यवहार (विचार, अनुभव या क्रिया) का वह पक्ष है, जिसका निरीक्षण वैषयिक तौर पर सम्भव है, और एक विशेष ढंग से व्यवहार को बाध्य है।"

प्र.3. सामाजिक एकता का परिचय दीजिए।

Give the introduction of social solidarity.

उत्तर

सामाजिक एकता
(Social Solidarity)

परिचय (Introduction)—दुर्खीम की रचना 'सोशियल डिवीजन ऑफ लेबर' (Social Division of Labour) दो भागों में विभाजित है। जिसके प्रथम भाग में सामाजिक एकता का वर्णन है। दुर्खीम के अनुसार, सामाजिक एकता परिवर्तनीय है। सामाजिक एकता में यह परिवर्तन या बदलाव यांत्रिक एकता से सावयवी एकता की तरफ होता है। दुर्खीम के अनुसार, एकता मानव समाज व हमारी सामाजिक व्यवस्था का एक अन्तरंग अंग है, बिना इसके सामाजिक संगठन की कल्पना करना भी असम्भव है। यह सर्वकालिक अवधारणा है, जो प्रत्येक समय विद्यमान रहती है। परन्तु श्रम व समय विभाजन की प्रक्रिया के साथ-साथ इसमें बदलाव होता जाता है। सामाजिक व्यवस्था पर सामाजिक एकता का प्रभाव आवश्यक रूप में पड़ता है। दुर्खीम के 'सामाजिक एकता के सन्दर्भ में मुख्य विचार निम्नलिखित हैं—

1. सामाजिक एकता तथा समाज में श्रम विभाजन की पद्धति दोनों परस्पर अन्त: सम्बन्धित है।
2. सामाजिक एकता समाज की व्यवस्था का एक मूल अंग है।
3. चूँकि श्रम विभाजन के साथ-साथ सामाजिक एकता में परिवर्तन होता है, इसलिए सामाजिक एकता स्थिर न होकर गतिमान है।
4. समाज के कानून सामाजिक एकता के स्वरूप के आधार पर निर्धारित होते हैं। शुरुआत में दमनकारी कानून यान्त्रिक एकता के अन्तर्गत और फिर प्रतिकारी कानून साम्यवादी में बनते हैं।

प्र.4. सामाजिक एकता के स्वरूप एवं यांत्रिक एकता का उल्लेख कीजिए।

Explain the forms of social solidarity and mechanical solidarity.

उत्तर

सामाजिक एकता के स्वरूप
(Forms of Social Solidarity)

दुर्खीम के अनुसार, सामाजिक एकता के दो स्वरूप मान सकते हैं-प्रथम, यांत्रिक एकता और द्वितीय, सावयवी एकता। इस प्रकार यांत्रिक एकता की विशेषता एकरूपता या समानता है, तथा सावयवी एकता की बिशेषता विभिन्नता है। दुर्खीम के अनुसार, "यांत्रिक एकता तभी सम्भव हो सकती है जब व्यक्ति का व्यक्तित्व एक समूह में मिल जाता है दूसरी ओर सावयवी एकता तभी सम्भव हो सकती है, जब व्यक्ति के व्यक्तित्व का अस्तित्व भिन्न-भिन्न हो।" सामाजिक एकता के दोनों स्वरूपों को इस प्रकार समझ सकते हैं—

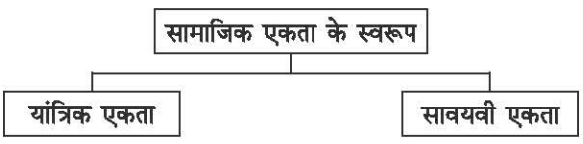

TOUCH 'n' PASS

यांत्रिक एकता (Mechanical Solidarity)

दुर्खीम के अनुसार प्राचीन काल में समाज यांत्रिक एकता के द्वारा आपस में जुड़ा हुआ था। लेकिन धीरे-धीरे स्थिति के बदलने के अनुसार यांत्रिक एकता का स्वरूप बदलने लगा और यह आधुनिक समाज में सावयवी एकता के रूप में विद्यमान हो गया। समाज में हुए इस परिवर्तन को समझने के लिए हमें प्राचीन समाज (यान्त्रिक एकता) व आधुनिक समाज सावयवी एकता की प्रमुख विशेषताओं का अवलोकन करना होगा। आदिकाल के समाज में समुदाय छोटे होते थे। उनकी जरूरतें सीमित थीं तथा प्राय: सभी सदस्यों की आवश्यकताएँ एक समान होती थीं। समुदाय के सामाजिक, आर्थिक कार्य, विचारधाराएँ, जीवनचर्या, मानसिक धारणाएँ प्राय: एक समान थीं, इनमें विभिन्नता नाममात्र की थी। सभी सदस्यों का मानसिक व नैतिक स्तर बिल्कुल एक समान था। सदस्यों व समुदाय पर परम्परा, धर्म, जनता के मत का अधिक दबाव बना रहता था। इन सब का परिणाम यह था कि व्यक्तिगत समानता के कारण एक मजबूत एकता होती थी, क्योंकि सामाजिक अथवा वैयक्तिक जीवन के किसी भी भाग में अधिक भिन्नताएँ प्राय: नहीं मिलती थीं। अत: इस प्रकार की एकता को दुर्खीम ने यांत्रिक एकता का नाम दिया है, क्योंकि उस काल में लोग परम्परा, धर्म, जनमत, व राजा के दबाव के कारण स्वयं के विवेक से नहीं वरन् यन्त्रवत् कार्य करते थे। यह परम्पराएँ, धर्म, जनमत आदि इतनी प्रभावी या महत्त्वपूर्ण थीं कि किसी का व्यक्तिगत रूप में कोई महत्त्व नहीं था तथा व्यक्ति सामूहिक रूप से इतना सम्मिलित हो जाता था कि उसके स्वयं के व्यक्तित्व का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता था। वह समाज में लोगों के साथ यांत्रिक रूप से काम करता, विचार करता व नियमों का पालन करता था।

प्र.5. यान्त्रिक एवं सावयवी एकता में वैधानिक व्यवस्थाओं का उल्लेख कीजिए।
Explain the legal arrangements in mechanical and organic solidarity.

उत्तर

यान्त्रिक एवं सावयवी एकता में वैधानिक व्यवस्थाएँ
(Legal Arrangements in Mechanical and Organic Solidarity)

दुर्खीम के विचार से इन दोनों प्रकार की अवस्थाओं यान्त्रिक और सावयवी की एक और प्रमुख विशेषता यह है, कि इनमें से प्रत्येक एकता में एक विशेष प्रकार की व्यवस्था पायी जाती है। यान्त्रिक एकता वाले समाज में दमनकारी कानून (Repressive Law) का प्रचलन होता है, जबकि सावयवी एकता वाले समाज में प्रतिकारी कानून (Restitutive Law) का प्रचलन रहता है। इन कानूनों की प्रमुख विशेषताएँ अलग-अलग निम्नवत् है—

1. **दमनकारी कानून** (Repressive Law)—इसका प्रचलन आदिम समाजों में पाया जाता है, जहाँ सामूहिक एकता अथवा इच्छा के विपरीत कार्य होते हैं। इस प्रकार वह दण्ड पाने के अधिकारी होते हैं, जो सामूहिक इच्छा का उल्लंघन करते है तथा सामूहिक भावनाओं को आघात पहुँचाते हैं। दमनकारी कानून का लक्ष्य या उद्देश्य अपराधी द्वारा की गई क्षति की पूर्ति करना नहीं है। इस कानून का उद्देश्य समाज में नैतिक सन्तुलन को विद्यमान रखना तथा सामूहिक इच्छा को दोबारा स्थापित करने के लिए होता है। इन समाजों में वैधानिक व नैतिक जवाबदेही सामूहिक होती है तथा व्यक्ति को वंश परम्परा के अनुरूप सामाजिक व वैधानिक पद प्राप्त होता चला जाता है। इस सम्बन्ध में दुर्खीम ने लिखा है—"समाज में एक इस प्रकार की सामाजिक एकता पायी जाती है, जोकि उस समाज के सभी सदस्यों में सामान्य रूप से पाए जाने वाले विचारों या अनुभूतियों से उत्पन्न होती है। भौतिक रूप में दमनकारी कानून इसी प्रकार की सामाजिक एकता की स्थिति में पाया जाता है, कम से कम उस सीमा तक तो अवश्य हो जहाँ तक यह अनिवार्य होता है। समाज के सामान्य संगठन में इसका क्या महत्त्व या योगदान होगा यह स्पष्टत: बहुत कुछ उस सामाजिक जीवन पर निर्भर करता है, जोकि सामान्य अनुभूति के अन्तर्गत आ जाता है, और उसके द्वारा नियमित होता है। सम्बन्धों में जितनी ही अधिक विभिन्नता पाई जाती है, समाज उतने ही अधिक ऐसे सूत्रों को उत्पन्न करता है, जो व्यक्ति को समूह से जोड़ देते हैं, और इसके परिणामस्वरूप समाज में उतनी ही अधिक सामाजिक एकता उत्पन्न होती है। लेकिन इस प्रकार के कितने सम्बन्ध उत्पन्न होंगे, इसका अनुपात दमनकारी कानून पर निर्भर होता है।"
2. **प्रतिकारी कानून** (Restitutive Law)—वर्तमान समाज में यही कानून विद्यमान है। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ तथा सामाजिक श्रम-विभाजन हुआ, उसी के अनुसार आदिम समाज में विद्यमान एकरूपता नष्ट हो गई तथा समाज में असमानताएँ उत्पन्न हो गई। आज विभिन्न व्यक्तियों के व्यक्तिगत अनुभव व कार्य अलग हो गए, अत: इस कारण व्यक्तिगत अथवा वैयिक्तक स्वतंत्रता का प्रभाव बढ़ गया। परिणामत: सम्पूर्ण समाज में अपराध बढ़ने लगें। इन बदलावों के परिणामस्वरूप कानून का स्वरूप भी 'दमनकारी कानून' से 'प्रतिकारी कानून' में परिवर्तित हो गया। इस प्रकार अब कानून

TOUCH 'n' PASS

का उद्देश्य क्षति-प्राप्त व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करना या उसे सब कुछ प्राप्त कराना जो किसी अनुचित प्रकार से उससे छीन लिया गया हो। इस सिद्धान्त अथवा विचारधारा में यह बात स्मरणीय है कि, 'सावयवी एकता' का निरूपण तथा विश्लेषण दुर्खीम ने इस उद्देश्य से नहीं किया, कि उनका उद्देश्य आधुनिक समाज को व्याधिकीय पहलू को उजागर करना है। उनके अनुसार सावयवी एकता वाले वर्तमान समाज के मध्य व्यक्तिवाद का प्रभाव है, लेकिन इसका यह अर्थ बिल्कुल भी नहीं है, व्यक्तिवाद व्यक्ति को उसकी वर्तमान जरूरतों तथा इच्छाओं को पूरा करने के लिए किसी सामाजिक प्रतिबन्ध के असीमित अधिकार प्रदान करता है। जबकि इसके विरुद्ध व्यक्ति का कर्त्तव्य यह है, कि वह गूढ़ विशेषीकरण के माध्यम से अपने अलग व्यक्ति को इस तरीके से परिपक्व करे कि वह सामाजिक कल्याण कार्यों में अधिक से अधिक सहयोग कर सकें।

प्र.6. यांत्रिक एवं सावयवी सामाजिक एकता में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
Clarify the difference between mechanical and organic solidarity.

उत्तर

'यांत्रिक' एवं 'सावयवी' सामाजिक एकता में अंतर
(Difference between Mechanical and Organic Solidarity)

यान्त्रिक तथा सावयवी एकता के मध्य अन्तर निम्न प्रकार है—

	यांत्रिक एकता युक्त समाज	सावयवी एकता युक्त समाज
1.	यांत्रिक एकता के समाज में प्राय: सदस्यों की आवश्यकताएँ सीमित होती है तथा अधिकांश व्यक्तियों की आवश्यकताएँ एक समान होती हैं।	सावयवी एकता के समाज में सदस्यों की आवश्यकता असीमित होती है, जिनको समाज के दूसरे सदस्यों के सहयोग से पूर्ण किया जाता है।
2.	इसमें एक समान श्रम की विशेषता रहती है, इसका आशय यह है, इससे सम्बन्धित समस्त कार्यों को परिवार या समाज के सदस्य मिलकर करते है।	इसमें श्रम विभाजन होने के कारण सदस्य सिर्फ अपने कार्य से ही सम्बन्ध रखते हैं। अन्य के कार्यों से समाज के दूसरे सदस्यों को कोई सम्बन्ध नहीं होता।
3.	यान्त्रिक एकता में सामूहिकता की भावना प्रबल रूप में विद्यमान रहती है, अत: यहाँ व्यक्तिगत भावना को कोई स्थान नहीं दिया जाता है।	सावयवी एकता वाले आकार विस्तृत एवं अधिक जनसंख्या का होने के कारण यहाँ पर सामूहिकता की भावना की कमी रहती है। ये व्यक्तिवादी भावना पर आश्रित रहते हैं।
4.	इन समाजों में किसी आपराधिक कार्य को किसी एक व्यक्ति या समूह विशेष के विपरीत किया गया कार्य न मानकर सम्पूर्ण समाज के लिए किया गया अनुचित कार्य माना जाता है। अत: इन समाजों में कठोर दण्ड दिया जाता है।	इन समाजों में आपराधिक कार्य को किसी व्यक्ति विशेष अथवा समूह के विपरीत किया गया कार्य माना जाता है अत: इन समाजों में व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करने वाला दण्ड अपराधी को दिया जाता है।
5.	यान्त्रिक एकता में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान होने के कारण कानून पर भी धर्म का प्रभाव देखा जा सकता है, अत: तात्पर्य यह है कि धार्मिक दर्शन के अनुसार कानून का वर्णन किया जाता है।	सावयवी एकता में फैले कानून पर धर्म का प्रभाव नहीं होता बल्कि मानवीय दृष्टिकोण को आधार रखकर कानून का वर्णन किया जाता है।

प्र.7. आत्महत्या की प्रकृति का उल्लेख कीजिए।
Explain the nature of suicide.

उत्तर

आत्महत्या की प्रकृति
(Nature of Suicide)

चूँकि आत्महत्या किसी व्यक्ति द्वारा की जाने वाली एक वैयक्तिक क्रिया है, इसलिए यह सिर्फ वैयक्तिक कारकों पर ही पूरी तरह से आधारित होगी। दूसरे शब्दों में इसका सम्बन्ध मनुष्य की बौद्धिक स्थिति से होगा। अत: इस कारण से प्राय: आत्महत्या की विवेचना स्वयं के स्वभाव, चरित्र, इतिहास आदि के आधार पर प्रस्तुत की जाती है। यदि किसी विशेष समाज में किसी विशेष समय में अलग-अलग आत्महत्याओं को अलग-अलग घटना के रूप में न मानकर उसकी व्याख्या समग्र रूप में की जाए तो यह सम्पूर्णता स्वतंत्र इकाइयों का केवल एक योग नहीं स्पष्ट होगी बल्कि इस तथ्य की अपनी कुछ एकता, विशेषता एवं प्रकृति है तथा

TOUCH 'n' PASS

यह प्रकृति यथार्थ व मूलभूत रूप में सामाजिक है। यदि अध्ययन के समय अधिक समय के आँकड़े न लिए जाये तो यह सिद्ध होता है, कि अलग-अलग वर्षों में आत्महत्या की दरें बहुत हद तक एक समान बनी रहती हैं। क्योंकि लोगों के सामाजिक जीवन पर प्रभाव डालने वाली पर्यावरणीय परिस्थितियाँ अलग-अलग वर्षों में बहुत सीमा तक परिवर्तित नहीं होती हैं। आत्महत्या के अनुपात में कभी-कभी विशेष परिवर्तन किसी ऐसे संकट के परिणामस्वरूप होता है जिसका समाज की अवस्थाओं पर अत्यधिक प्रभाव होता है।

परन्तु यदि एक लम्बे समय अन्तराल के अन्तर्गत आत्महत्या की व्याख्या की जाए तो अत्यधिक बड़े परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इसका आशय यह है, कि लम्बे समय अन्तराल में समाज की संरचनात्मक विशेषताएँ उसी के परिप्रेक्ष्य में बहुत सीमा तक बदल जाती हैं। अत: यह सम्भव है, यह परिवर्तन अत्यधिक धीमी गति से न होकर अचानक भी हो सकता है। अपने इस मत की पुष्टि करने में दुर्खीम ने यूरोपियन समाजों में होने वाली आत्महत्या के अनुपात क्रमबद्ध रूप में प्रकट किया है और यह परिणाम प्रस्तुत किया है, इतिहास के प्रत्येक स्तर पर समाज में आत्महत्या की एक नियत अभिवृत्ति होती है। ऐच्छिक मृत्यु (आत्महत्याओं) की कुल संख्या एवं सभी की आयु तथा लिंग-वर्ग की जनसंख्या के मध्य अनुपात के आधार पर आत्महत्या की अभिवृत्ति की तीव्रता (Intensity of this aptitude) को मापा जाता है।

दुर्खीम ने विभिन्न वर्षों से एक समाज विशेष में घटित सामान्य मृत्यु-दर (Death Rate) एवं आत्महत्या के द्वारा मृत्यु-दर के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि अलग-अलग वर्षों में जो भी बदलाव सामान्य मृत्यु-दर में होता है, उस तुलना में आत्महत्या के द्वारा होने वाली मृत्यु-दर में बदलाव कम ही दिखायी देता है। अत: आत्महत्या की दर एक तथ्यपूर्ण, एकीकृत एवं निश्चित व्यवस्था है (The suicide rate is a factual order, unified and definite)। एक-समाज में परिस्थिति सम्बन्धी असमानताएँ होती है परन्तु फिर भी उस समाज के आत्महत्या दर के स्थायित्व को उसकी अपनी विभिन्नताओं व एकता के परिप्रेक्ष्य में समझ सकते हैं।

अत: इस कारण से विभिन्न समाजों में यह स्थायित्व अलग-अलग प्रकार का है, क्योंकि सभी समाजों की अपनी कुछ अलग प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्तियाँ की यथार्थ प्रकृति को सम्भवत: स्पष्ट रूप से परिभाषित न किया जा सके परन्तु यह निश्चित है कि प्रत्येक समाज द्वारा ऐच्छिक मृत्युओं के एक निश्चित कोटा (Quota) का अनुदान देना ही पड़ता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सामाजिक तथ्यों के अवलोकन का विस्तार से वर्णन कीजिए।
Describe the observations of social facts.

उत्तर

सामाजिक तथ्यों के अवलोकन
(Observations of Social Facts)

दुर्खीम के समाजशास्त्रीय योगदान में रेमण्ड एरन द्वारा दार्शनिक व्याख्या की तुलना में वैज्ञानिक विश्लेषण को अधिक महत्त्व दिया गया है। समाजशास्त्र के अन्तर्गत जो कि समाजशास्त्र से सम्बन्धित है। उसके सामाजिक तथ्यों की व्याख्या विशिष्ट विषय सामग्री के रूप में करने के पश्चात् उन्होंने सामाजिक तथ्यों का अध्ययन वैज्ञानिक तरीके के प्रयोग पर जोर दिया है। समाजशास्त्र को वास्तविक विज्ञान के रूप में तथा व्यवस्थित रूप में प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से दुर्खीम ने प्राकृतिक विज्ञानों की अध्ययन पद्धति के प्रयोग पर बल दिया है। इन सामाजिक तथ्यों का वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन तभी सम्भव है, जब कोई व्यक्ति निष्पक्ष तथा दृढ़ होकर उनका निरीक्षण करेगा। भौतिक विज्ञानों के अध्ययन करने वाले जिस प्रकार उसकी विषय-वस्तु को बिना किसी पूर्व कल्पना या द्वेष भावना के समझने की कोशिश करते हैं, उसी को ध्यान में रखते हुए एक समाजशास्त्री को भी सामाजिक तथ्यों के अध्ययन में दृढ़ता का भाव रखना चाहिए, परन्तु सामाजिक तथ्य अध्ययन करने वाले के जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। किसी भी समाजशास्त्री का स्वयं का जीवन उसकी परिस्थितियाँ तथा कार्य स्वयं की दृष्टि से सामाजिक तथ्यों से निर्दिष्ट व मर्यादित होते हैं। इन सामाजिक तथ्यों से हमेशा घिरा रहता है। समाजशास्त्री समाज के अन्य सदस्यों की भाँति स्वयं को इन सामाजिक तथ्यों से अलग नहीं कर सकता, उसके लिए अपनी सम्पूर्ण दृढ़ता नहीं रख सकता है। सामाजिक तथ्यों से घनिष्ठता रखते हुए भी समाजशास्त्री स्वयं को विषय-वस्तु से लगातार सम्बन्धित रखते हुए भी अपने निरीक्षण को सम्पूर्ण प्रकार से वैज्ञानिक तथा विषय से सम्बन्धित कैसे

TOUCH 'n' PASS

बनाए? इस प्रश्न का तर्कपूर्ण हल निकालने की कोशिश दुर्खीम ने की है। उन्होंने सामाजिक तथ्यों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए कुछ विशेष नियम बनाये है, जो निम्न प्रकार हैं—

1. सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के रूप में समझना (Consider Social Facts as Things)
2. अवलोकन के नियम (Rules for Observation)

सामाजिक तथ्यों को वस्तुओं के रूप में समझना (Consider Social Facts as Things)

दुर्खीम का प्रथम नियम यह है कि—"सामाजिक तथ्यों पर वस्तुओं के रूप में विचार किया जाए।" दुर्खीम का सामाजिक तथ्यों के वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से यह मूलभूत नियम है। इन मौलिक सिद्धान्त से अवलोकन के अन्य सभी नियम सम्बन्ध रखते हैं। विचार तथा वस्तु दोनों अलग-अलग तथ्य हैं। वस्तु का सम्बन्ध प्रत्यक्ष तथ्य से है। विचार अमूर्त या परोक्ष तथ्य हैं। दुर्खीम तथ्यों के प्रत्यक्ष रूप पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। जो प्रत्यक्ष वस्तुएँ है, उनका अध्ययन करने वाला अपनी अभिलाषा से परिवर्तन नहीं कर सकता हैं। प्रत्यक्ष या भावनाप्रधान तथ्य घनिष्ठ होते है। वस्तुपरक दृष्टिकोण वैषयिक तथा वैज्ञानिक अवलोकन की आधारशिला हो सकती है। प्राय: तथ्यों के विषय में जो विचारधारा हमारे मस्तिष्क में विद्यमान रहती है वह किसी भी घटनाओं की वास्तविकता को प्रदर्शित नहीं करती है। विज्ञान परोक्ष अवलोकन के आधार पर सच्चाई की खोज करता है। दुर्खीम के दृष्टिकोण से किसी भी घटना का सामान्य ज्ञान तथा वैज्ञानिक ज्ञान दो अलग-अलग बाते हैं। यदि हम सामाजिक तथ्यों को एक बाहरी वस्तु मानकर उनका परोक्ष निरीक्षण नहीं करेंगे तो हम उनकी आन्तरिक वास्तविकता को समझ नहीं पायेंगे। सामाजिक तथ्यों को भौतिक तथ्यों की भाँति वैज्ञानिक आधार पर एक घटना के रूप में समझने हेतु उन्हें वस्तुओं के रूप में मान्यता देना जरूरी है। वस्तुएँ प्राय: स्वयं ही स्पष्ट होती है। हमारे समक्ष अपने स्वरूप को रखती हैं। हमारे आन्तरिक संवेग तथा पूर्वाग्रह उनके वास्तविक रूप पर असर नहीं डालती हैं। इसलिए सामाजिक तथ्यों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उन्हें एक वस्तु के रूप में समझना आवश्यक है।

सामान्यत: सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में विचारों तथा संदेहास्पद या प्रचलित पूर्वाग्रहों का विश्लेषण होता रहा है। दुर्खीम के अनुसार, समाज वैज्ञानिकों ने सामाजिक वस्तुओं के अध्ययन उनकी व्याख्या तथा उनके मध्य तुलना के स्थान पर पूर्वाग्रहों तथा वैचारिक कल्पनाओं का ही केवल सैद्धान्तिक विश्लेषण किया है। विचारों के पुष्टिकरण के लिए केवल वस्तुओं का प्रयोग किया गया है। सर्वप्रथम विचारों या सिद्धान्त को निर्मित कर लेना तदुपरान्त वस्तुओं का प्रयोग प्रमाणों के रूप में करना वास्तविकता में विज्ञान नहीं कहा जा सकता है। दुर्खीम के अनुसार—"इस प्रकार यह विज्ञान विचारों से वस्तुओं की ओर चलता है, वस्तुओं से विचारों की तरफ नहीं है।"

विषय-वस्तु तथा वास्तविकता से सम्बन्धित परिणाम विचारों एवं मान्यताओं से प्राप्त नहीं हो सकते हैं। इनका सम्बन्ध तथ्यों के आविष्कार से नहीं बल्कि उद्देश्यों की पूर्ति द्वारा होता है। समाज के अतीत निर्माण को मस्तिष्क में रखकर कुछ विचार अथवा भ्रान्तियाँ बना लेना तथा उसके उपरान्त उनकी पुष्टि के लिए वास्तविक जगत में जुड़े प्रमाणों को खोजना वैज्ञानिक अध्ययन नहीं है। उनको दुर्खीम की विचारधारा से कला की संज्ञा दी जाती है, जो सच्चाई को प्रत्यक्ष रुप में प्रकट करने के अपेक्षा उस पर पर्दा डाल देती है। विचारों के द्वारा तथ्यों की खोज करना विज्ञान का कार्य नहीं है। बल्कि परोक्ष वस्तुपरक तथ्यों के निरीक्षण द्वारा विचारों का निर्माण करना है। विचार तथा कल्पना को वैज्ञानिक अवलोकन में बाधक बताते हुए दुर्खीम ने लिखा है, "वे हमारे तथा वस्तुओं के बीच एक आवरण की तरह हैं, जिन्हें हम जितना अधिक पारदर्शक समझते हैं, वे उतनी ही अधिक सफलतापूर्वक उन्हें हमसे छिपा लेते है।"

दुर्खीम का विचार है, कि वर्तमान के स्थान पर भविष्य का अध्ययन करना, लक्षण के बजाय समाधान की खोज करना इसे विज्ञान नहीं कहा जा सकता है। प्राकृतिक विज्ञानों में यह स्थिति प्रारम्भ में विद्यमान रही है। इसी पद्धति का प्रयोग सामाजिक विज्ञानों में होता रहा है। यथार्थ बौद्धिक उत्पत्तियों को सिद्धान्तों के समान प्रतिष्ठित करने के लिए आचारशास्त्र तथा राजनैतिक अर्थशास्त्र में इनका प्रयोग होता है। विचारों तथा धारणाओं की प्रधानता समाजशास्त्र में और अधिक रही है। कानून, नीति आदि से जुड़े विचारों ने समाज वैज्ञानिकों के मस्तिष्क पर प्रभाव डाला, वस्तुगत विषयों का स्थान निम्न रहा है। इस विषय पर कॉम्टे तथा स्पेन्सर दोनों पूर्ववर्ती समाजशास्त्रियों की आलोचना करते हुए दुर्खीम कहते हैं, यद्यपि कॉम्टे ने प्राकृतिक वस्तुओं के रूप सामाजिक घटनाओं को समझने की बात केवल सैद्धान्तिक विचार तक सीमित रखी है। उसने अपने समाजशास्त्र को विषय-वस्तु में मानवीय प्रगति को शामिल करके मुनष्य के सतत् विकास की व्याख्या की है। दुर्खीम के अनुसार, कोई समूह स्वयं से पूर्व समूह का मात्र विकसित स्वरूप नहीं होता बल्कि गुणात्मक रूप से भी भिन्न होता है। कॉम्टे ने वास्तव में मानवीय विकास से जुड़ी एक विशेष अवधारणा स्वयं में बना ली थी तथा उसके समर्थन के लिए तथ्यों का अविष्कार किया। इसी तरह से स्पेन्सर का समाजशास्त्र भी सोच (Thinking) पर आधारित है। कॉम्टे ने यदि समाजशास्त्र की विषय-वस्तु में मानवता को लिया तो दूसरी तरफ स्पेन्सर ने समाजों

का विश्लेषण किया। अपेक्षाकृत स्पेन्सर ने समाज की परिभाषा तथ्यों की खोज करने के बाद नहीं की। उन्होनें समाज की व्याख्या उसके प्रति एक धारणा बना कर की है। उनका सम्पूर्ण समाजशास्त्रीय अन्वेषण समाज तथा सहयोग से सम्बन्धित उसकी पूर्व निश्चित धारणा का तर्कपूर्ण पुष्टिकरण ही है। इसी परिप्रेक्ष्य में दुर्खीम ने अर्थशास्त्र में प्रचलित वैज्ञानिक व्याख्या की भी आलोचना की है। सरल शब्दों में दुर्खीम ने यह व्यक्त करने की कोशिश की है कि समाजशास्त्र से सम्बन्धित जो कुछ भी अभी तक स्थापित किया गया है, वह वैज्ञानिक विचारधाराओं की व्याख्या मात्र है। विज्ञान की मूल मान्यता यह है, कि सर्वप्रथम वस्तुनिष्ठ अवलोकन तथा तुलनात्मक अध्ययन किया जाए उसके पश्चात् सिद्धान्त निर्मित किया जाए, विचारों को स्थापित किया जाए। इनमें सिद्धान्त की स्थापना तथ्यों की खोज से पहले की जाती है। वैज्ञानिक योगदान करने के बजाए समाज वैज्ञानिक सिर्फ समाज की पुन:स्थापना की आचार सम्बन्धी या आर्थिक प्रगति की योजनाएँ प्रस्तुत करते रहे हैं। एक सामान्य मनुष्य के अनुभव में जो कुछ भी आता रहा है, उचित अथवा अनुचित उसे ही सच्चाई मानकर सामाजिक सिद्धान्तों का निर्माण हुआ है। दुर्खीम का मत है कि संसार की उपेक्षा करके विचारों की व्याख्या करने को विज्ञान नहीं मान सकते हैं, यही समाजशास्त्र में होता रहा है। वह लिखते हैं, "वास्तव में अभी तक समाजशास्त्र मुख्य रूप से थोड़ी बहुत मात्रा में धारणाओं की ही व्याख्या करता रहा है, वस्तुओं की नहीं।"

इस प्रकार यह कह सकते हैं, जैसे प्राकृतिक विज्ञान प्राकृतिक वस्तुओं का अध्ययन करता है, उसी प्रकार सामाजिक विज्ञानों को सामाजिक विषय वस्तुओं का अध्ययन करना चाहिए। समाजशास्त्रियों की एक प्रमुख समस्या पूर्वाग्रह की है अत: इससे अध्ययन यथार्थ नहीं हो पाता।

वस्तु के रूप में सामाजिक तथ्य (Social Facts as Objects)

समाज में घटित घटनाएँ विचार प्रधान होती हैं। दुर्खीम के अनुसार इनको वस्तुओं के रूप में समझा जा सकता है, तथा समझा भी जाना चाहिए। वस्तु की परिभाषा देते हुए दुर्खीम कहता है, "वह सब जो स्वत: स्पष्ट है, वह सब जो देखा जा सकता है, एक वस्तु की विशेषता रखता है।" वस्तु एक विषय सम्बन्धी तथ्य है। समाज में घटित घटनाएँ वस्तुएँ हैं। सामाजिक जीवन से जुड़ी धारणाओं तथा विचारों की प्रस्तुति परोक्ष वास्तविकताओं की तरह होती है। यह परोक्ष वास्तविकतायें ही समाज से जुड़े नियमों की खोज के मुख्य स्रोत हैं। वस्तुओं के रूप में सामाजिक घटनाओं को समझना तभी सम्भव है, जब हम उन्हें मनोवैज्ञानिक तथ्यों से पृथक समझें। मनोवैज्ञानिक तथ्य मनुष्य के मन में विचारपूर्वक बनाये गये वैचारिक चित्र होते हैं। स्वयं स्पष्ट वस्तु में एक गुणात्मक अनुक्रमता होती है जिसको निरीक्षण द्वारा समझा जाता है। अत: दुर्खीम का कथन है कि किसी भी संस्था या व्यवहार प्रतिमान की स्वाभाविक प्रकृति का पहले से ही अनुमान नहीं करना चाहिए। रेमण्ड एरन् ने वस्तु की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए दुर्खीम के विचारों को सरल शब्दों में व्यक्त करते हुए लिखा है, "क्योंकि हमें प्राय: यह भ्रम होता है कि हम सामाजिक वास्तविकताओं को जानते हैं। यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है, कि हम उन्हें तुरन्त नहीं जान सकते है।" दुर्खीम के अनुसार, "हमें सामाजिक तथ्यों को वस्तुएँ मानना चाहिए, क्योंकि उनका मत है कि वस्तुएँ वह होती हैं, जो स्वयं ही स्पष्ट है, जो हमारे अवलोकन के लिए स्वयं ही उपस्थित है, अर्थात जिसके अवलोकन हेतु बाध्य हैं"।

प्र.2. सामाजिक तथ्यों के प्रकारों को विस्तार से वर्णित कीजिए।
Describe the types of Social Facts.

उत्तर

सामाजिक तथ्य के प्रकार
(Types of Social Fact)

सामाजिक तथ्यों के निरीक्षण के नियमों को चिन्हित करने के उपरान्त दुर्खीम वैज्ञानिक अध्ययन से जुड़े एक अति महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विस्तृत चर्चा करते हैं। क्या विज्ञान सिर्फ घटनाओं के वर्णन तक सीमित है, यह एक सामान्य प्रश्न है अथवा वह उनके निवारण के दृष्टिकोण से या मानवीय जीवन के प्रति हितकर लक्ष्य निर्धारित करने तथा उनको प्राप्त करने के साधनों की तरफ संकेत करने के दृष्टिकोण से लाभदायक है। दुर्खीम के मतानुसार अवलोकन की वैज्ञानिक प्रक्रिया में दो प्रकार के तथ्यों का अवलोकन होता है सामान्य एवं व्याधिकीय तथ्य।

1. **सामान्य तथ्य**—वे तथ्य जो समाज द्वारा स्वीकृत नियमों के अनुसार होते हैं। सामान्य (Normal) तथ्य कहलाते हैं। यह तथ्य समाज में सामाजिक जीवन के स्वास्थ्य में बढोत्तरी करते हैं। यह समाज में अधिक पाए जाते हैं। इनमें कम परिवर्तन पाया जाता है।
2. **व्याधिकीय तथ्य**—दूसरी तरफ कुछ तथ्य ऐसे होते हैं, जो सामाजिक रीतियों के विपरीत होते हैं। इस दूसरे श्रेणी के तथ्यों को दुर्खीम द्वारा 'असामान्य' या व्याधिकीय (Pathological) कहा गया है। दूसरे व्याधिकीय (Pathological) तथ्य समाज के स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक हैं।

TOUCH 'n' PASS

दुर्खीम के मतानुसार किसी विषयवस्तु को परिभाषित करने में इन दोनों तथ्यों का मिश्रण होना आवश्यक है।

अपराध-एक सामान्य सामाजिक तथ्य (Crime : A Normal Social Fact)

दुर्खीम द्वारा सामान्य तथा असामान्य तथ्यों के मध्य विभिन्नता प्रदर्शित करने का जो उपर्युक्त नियम निर्धारित किया गया, उसका परीक्षण करने के उद्देश्य से अपराध नामक तथ्य की व्याख्या की गयी है। सामाजिक तथ्य इतने दुष्कर तथा परिवर्तनशील होते हैं कि इनके बारे में उचित निष्कर्ष निकालना दुष्कर होता है। अपराध वह तथ्य है जिसे सामान्यत: लोग असामान्य अथवा व्याधिकीय तथ्य के रूप में ग्रहण करते हैं। अपराध जैसे तथ्य के बारे में प्राय: सभी अपराधशास्त्री सर्वसम्मत हैं, लेकिन दुर्खीम का मानना है कि हमें तब तक अपराध को असामान्य तथ्य नहीं मानना चाहिए जब तक कि उपर्युक्त पद्धति को आधार मानकर इसे असामान्य प्रमाणित न कर दिया जाए। दुर्खीम ने अपराध के बारे में फैली मान्यताओं का वैज्ञानिक आधार पर तर्कपूर्ण विरोध करके अपराध को एक सामान्य तथ्य प्रमाणित किया। एक सामान्य सामाजिक तथ्य में जो विशेषताएँ होनी चाहिए वह सभी अपराध में विद्यमान हैं। अपराध की उपयोगिता एवं विस्तार दोनों आधारों पर दुर्खीम द्वारा अपराध को एक सामान्य तथ्य सिद्ध किया गया है।

अपराध एक व्यापक एवं सार्वभौमिक सामाजिक तथ्य है। कोई भी समाज ऐसा नहीं है जहाँ अपराध व्यवहार किसी न किसी रूप अथवा मात्रा में न पाया जाता हो। प्राय: सभी प्रकार के समाज में अपराध विद्यमान हैं। दुर्खीम लिखते हैं, "ऐसा कोई समाज नहीं है, जिसके सामने अपराध की समस्या नहीं है। इसका स्वरूप बदल जाता है। अपराध कहे जाने वाले कार्य सब जगह समान नहीं होते, किन्तु सर्वत्र और सदैव ऐसे मनुष्य हुए हैं, जिन्होंने ऐसा व्यवहार किया है जिसके लिए वे दण्डित हुए हैं।" सामान्यत: समाजों की जनसंख्या के कम या अधिक होने के अनुसार अपराध की दर भी बढ़ती घटती रहती है। अपराध एक ऐसा तथ्य है, जो समाज की सामूहिक जीवन अवस्थाओं के मध्य अन्तरंग सम्बन्ध रखता है, दुर्खीम घोषित करते हैं कि अपराध समस्त स्वस्थ समाजों का एक घनिष्ठ अंग है।

दुर्खीम ने अपराध को स्पष्ट करने हेतु इस अवधारणा की वैज्ञानिक परिभाषा का सहयोग लिया है। अपराध एक दण्डनीय कृत्य है, यह सामूहिकता की भावना पर चोट करती है। सभी समाजों में अपराधिक घटनाएँ सामूहिक भावनाओं को आघात पहुँचाती है। आपराधिक कृत्यों के तरीके प्राय: बदलते रहते हैं। पहले जो अपराध छोटे प्रतीत होते हैं वही आगे चलकर गंभीर अपराधों का स्वरूप धारण कर लेते हैं। सामूहिक आत्मा छोटे आपराधिक कार्यों को कुछ सीमा तक सहन कर लेती है लेकिन जो अपराध सामूहिक भावना पर अधिक प्रहार करते हैं, उनके विरुद्ध सामूहिक आत्मा तेज प्रतिक्रिया करती है तथा दण्ड देती हैं। साधू-सन्तों के समाज में छोटी-छोटी क्रियाओं को अपराध की तरह दण्डित किया जाता है। किस-किस कृत्य को अपराध के अन्तर्गत रखेंगे इसका निर्धारण समाज के माध्यम से सामूहिक भावनाओं के आधार पर करते हैं। प्राचीन समाज में व्यक्ति का महत्त्व कम था। इसलिए व्यक्ति के अपराधों की संख्या ज्यादा थी। परन्तु वर्तमान समय में व्यक्ति के प्रभाव में वृद्धि हो गयी है। इसलिए व्यक्ति के विरुद्ध हानि वाले अपराध संख्या में कम हो गए। अनुवांशिकता तथा सामाजिक वातावरण व्यक्तियों की समझ में भिन्नता लाती हैं। अत: सामूहिक भावनाओं में सार्वभौमिकता व एक समान गुणों का होना असम्भव है। किसी भी क्रिया की प्रकृति से अपराध की परिभाषा निश्चित नहीं होती है वरन् विद्यमान सामूहिक भावनाएँ ही किसी कार्य को अपराध की श्रेणी में शामिल कर देती हैं। इन भावनाओं के विपरीत जो भी कार्य किये जाते है उन्हें अपराध का नाम दिया जाता है। ये भावनाएँ विशेष समाज की रचना तथा व्यवस्था की नींव पर निर्मित होती है। इसलिए विभिन्न समाजों द्वारा अलग-अलग प्रकार के कार्य को अपराध की सीमा में रखा जाता है। दुर्खीम ने अपराध तथा सामूहिक आत्मा की घनिष्ठता को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "चूँकि ऐसा कोई समाज नहीं हो सकता है जिसमें लोग सामूहिक प्रारूप से थोड़ा बहुत विचलित न होते हों, अत: यह भी अपरिहार्य है कि इन विरोधी व्यवहारों में कुछ अपराधी प्रकृति के होते हैं। किसी विशेष कृत्य का आन्तरिक गुण उन्हें यह प्रकृति प्रदान नहीं करता बल्कि वह परिभाषा करती है जो सामूहिक आत्मा से निश्चित होती है।"

अपराध की उपयोगिता उसके व्यापक रूप के कारण है। दुर्खीम के मतानुसार, अपराध को कानून तथा नैतिकता की उन्नति का आधार माना जा सकता है। अलग-अलग समाजों में तथा एक समाज में कई गुणों में कानून तथा नैतिक नियम एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। वह तथ्य सामूहिकता की भावना से जुड़े होते हैं। अगर जीवन की दशाओं में परिवर्तन हो जाता है, तो कानून व नैतिकता में भी बदलाव हो जाता है। दुर्खीम के अनुसार अपराध सामूहिक भावनाओं के बदलाव में आवश्यक योगदान करता है। वह लिखते हैं, "जहाँ अपराध होता है, सामूहिक भावनाएँ नवीन रूप लेने के अनुसार लचीली बन जाती हैं। कभी-कभी अपराध उनके भविष्य के रूप को स्पष्ट करता है।"

इस सन्दर्भ में दुर्खीम ने सुकरात (Socrates) का उदाहरण दिया है। सुकरात की क्रान्तिकारी विचारधारा के कारण ऐथेन्स के कानून ने उसे अपराधी घोषित कर दिया तथा मृत्युदण्ड दे दिया। विचारों से स्वतन्त्र इस अपराधी ने एक नयी नैतिकता को उभारा।

यदि उस काल के कानूनों को न तोड़ा जाता तो वर्तमान समय में लोग अपने स्वतन्त्र विचारों को प्रस्तुत न कर पाते। दुर्खीम ने सुकरात के अपराध की उपयोगिता पर विवेचना करते हुए लिखा है, "उस समय यद्यपि ये उल्लंघन अपराध था क्योंकि यह एक सामान्य व्यक्ति की आन्तरिक भावनाओं पर तीव्र आघात था। फिर भी अपराध उन सुधारों की भूमिका के रूप में उपयोगी था जो प्रतिदिन अधिक आवश्यक दिखाई दे रहे थे।" मध्यकालीन युग में कई महापुरुषों को अधार्मिक कहकर दण्ड दिया गया, क्योंकि वे रुढ़िवादिता के खिलाफ विचार देते थे, परन्तु उनके इस अपराध से उदारवादी विचारधारा का जन्म हुआ। दुर्खीम ने तर्कसंगत आधार पर उचित उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि अपराध एक उपयोगी तथ्य है इसलिए वह असामान्य न होकर सामान्य सामाजिक तथ्य समझा जाना चाहिए। दुर्खीम द्वारा इसी आधार पर अपराध को महत्त्वपूर्ण बताया गया है। वह लिखते हैं, "प्रचलित विचारों के विपरीत अपराधी बिल्कुल असामाजिक व्यक्ति, एक संक्रामक तत्त्व, समाज के बीच प्रस्तुत एक विचित्र तथा घुलने-मिलने के अयोग्य प्राणी प्रतीत नहीं होता। इसके विपरीत वह सामाजिक जीवन में एक निश्चित भूमिका अदा करता है।"
अत: इस प्रकार अपराध जैसे असामान्य समझे जाने वाले कार्य को सामान्य व उपयोगिता की विशेषताओं से पूर्ण होने के कारण एक सामान्य तथ्य दर्शाने की कोशिश की है। सामान्य व असामान्य तथ्यों की विवेचना करना तथा उनमें अन्तर व्यक्ति व समाज से जुड़े विज्ञानों का प्रमुख लक्ष्य है। समाजशास्त्र को वस्तुओं का विज्ञान निर्दिष्ट करने की दृष्टि से घटनाओं के विस्तार को समानता के पैमाने के रूप में मान्यता देना दुर्खीम के मत से आवश्यक है।

प्र.3. सामाजिक तथ्य की आलोचना एवं मूल्यांकन कीजिए।
Do the evaluation and criticism of social fact.

उत्तर

सामाजिक तथ्य की आलोचना एवं मूल्यांकन
(Evaluation and Criticism of Social Fact)

दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित सामाजिक तथ्य की अवधारणा सामाजिक घटनाओं को वैज्ञानिक ढंग से अवलोकन में सहयोगी सिद्ध हो सकती है। परन्तु उनके सामाजिक तथ्य पूर्णत: दोषरहित हैं, यह कहना उचित नहीं होगा। अनेक समाजशास्त्रियों ने दुर्खीम के इन विचारों की कटु आलोचना की है जिनमें से कुछ निम्न प्रकार से हैं—

1. दुर्खीम के मतानुसार सामाजिक तथ्यों को वस्तु की भाँति समझना चाहिए। लेकिन स्वयं उन्होंने अलग-अलग स्थानों पर वस्तु को चार अर्थों में परिभाषित किया है। अत: इसमें अनेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरणस्वरूप प्रथम अर्थ में सामाजिक तथ्य का यह अर्थ निकाला जाता है कि सामाजिक तथ्य की स्वयं की कुछ विशेषताएँ अथवा गुण होते हैं जिनको परोक्ष निरीक्षण द्वारा अवलोकन किया जा सकता है। अत: यह कहा जा सकता है कि सामाजिक तथ्य वह वस्तु है, जिसके गुणों का निरीक्षण किया जा सकता है।

   दूसरे अर्थ में, सामाजिक तथ्य का अर्थ यह निकाल सकते हैं कि इन सामाजिक तथ्यों को मात्र किसी प्रकार के अनुभव के माध्यम से ही जाना जा सकता है। किसी भी प्रकार की पूर्वमान्यता अथवा अवधारणा द्वारा नहीं। इसका अर्थ यह है कि एक वैज्ञानिक को सामाजिक तथ्य के अवलोकन में कल्पना की सहायता नहीं वरन् अनुभव का सहयोग लेना चाहिए। सामाजिक तथ्यों के इन दोनों अर्थों को प्राय: समस्त समाजशास्त्री बिना किसी शंका के मान लेंगे, लेकिन उसके बाद के दोनों अर्थों को स्वीकार कर लेना अत्यन्त दुष्कर है। क्योंकि तीसरे अर्थ में इन सामाजिक तथ्यों का अर्थ यह निकलता है कि यह सामाजिक तथ्य एक ऐसी वस्तु है जो मानवीय अन्त:क्रियाओं से ऊपर है। लेकिन ऐसी बात शायद ही हो सकती हो? सामाजिक तथ्य शायद 'सामाजिक' हैं, अत: यह स्वीकार करना दुष्कर होता है कि एक वस्तु सामाजिक होते हुए भी सामाजिक अन्त: क्रियाओं या मनुष्य पर निर्भर नहीं है। वास्तविकता यह है कि मानवीय अन्त:क्रिया द्वारा ही प्रत्येक सामाजिक वस्तु या तथ्य को लाया जाता है। यह सम्पूर्ण समाज ही उन मानवीय अन्त:क्रियाओं तथा अन्त: सम्बन्धों का सम्पूर्ण क्षेत्र है जो किसी भी समूह के व्यक्तियों के मध्य पाया जाता है तथा जो उन्हें एक व्यवस्था के द्वारा संगठित, नियन्त्रित तथा दृढ़ रखती हैं इस कारण से सामाजिक तथ्य का वजूद मनुष्य पर निर्भर नहीं है, अत: इस अर्थ में इसको स्वीकार करना दुष्कर है।

   टार्डे के अनुसार, "मैं यह स्वीकारता हूँ कि यह मेरे लिए समझना कठिन है कि व्यक्तियों को निकालने के बाद समाज किस प्रकार शेष रह सकता है। यदि किसी विश्वविद्यालय में से प्रोफेसर तथा विद्यार्थी निकाल दिए जायें, तो मैं नहीं सोचता कि वहाँ 'नाम' के अतिरिक्त और कुछ रह जाएगा।"

TOUCH 'n PASS

इसी भाँति सामाजिक तथ्य का चौथा अर्थ भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अत्यधिक संकुचित है, चूँकि सामाजिक तथ्यों को इसमें बाह्य निरीक्षण तक प्रतिबन्धित कर दिया गया है। यद्यपि निरीक्षण द्वारा दिए गए परिणाम बहुत वास्तविक होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु अनेक ऐसे हैं, जो तर्क तथा परिमार्जित सामान्य बुद्धि से बहुत उचित प्रकार से समझे जा सकते हैं। बाह्य तौर पर निरीक्षण हो सके, केवल ऐसे सामाजिक तथ्यों को समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र के अन्दर शामिल करने पर सामाजिक जीवन अथवा घटनाओं के अनेक महत्त्वपूर्ण पहलू छूट जायेंगे। अत: यह बात आवश्यक है कि जिन सामाजिक घटनाओं का अध्ययन परोक्ष निरीक्षण प्रणाली के माध्यम से नहीं हो सकता, उनका अध्ययन दूसरी प्रयोग की गई पद्धतियों द्वारा किया जाए।

2. **सोरोकिन** (Sorokin) ने दुर्खीम के विचारों की आलोचना करते हुए कहा है कि सामाजिक तथ्यों की दो विशेषताएँ– बाह्यता तथा बाध्यता। किन्हीं विशिष्ट समस्याओं के अध्ययन के लिए तो अनुकूल है न कि समस्त प्रकार के सामाजिक तथ्यों के लिए। सम्भवत: दुर्खीम सामूहिक बाध्यता, सांस्कृतिक निर्धारक (Cultural Determinant), भौतिक व मनोवैज्ञानिक में अन्तर करने में असफल रहे।
3. दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित सामाजिक तथ्य की दूसरी विशेषता 'बाध्यता' की टार्डे (Tarde) ने अत्यधिक कठोर आलोचना की है। उनका मत था कि दुर्खीम का यह विचार जो तथ्य 'बाध्यतामूलक' प्रभाव डालते हैं, उन्हें ही सामाजिक तथ्य माना जाना चाहिए, यह अवैज्ञानिक व दोषयुक्त है। अत: यदि दुर्खीम के विचार को उचित माना जाए तो स्वतन्त्र सहयोग, स्वतन्त्र अनुकरण, स्वतन्त्र संविदायुक्त सम्बन्ध, स्वतन्त्र पारस्परिक सहायता, स्वतन्त्र एकता आदि तथ्य, जिनमें बाध्यता का लक्षण विद्यमान है, वे सामाजिक तथ्यों में शामिल नहीं होते जबकि यथार्थ इससे अलग है।
4. **हैरी एल्मर बार्न्स** (Harry Elmer Barnes) ने टार्डे की भाँति ही सामाजिक तथ्यों की बाध्यता पर अधिक जोर दिए जाने के कारण दुर्खीम की कठोर आलोचना की है। बार्न्स का मत है कि सामाजिक तथ्यों की समीक्षा पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया है। बार्न्स ने अपने लेख में दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित सामाजिक तथ्यों की बाध्यता के विषय में दिए गए अनेक उदाहरणों की नींव पर ही यह प्रमाणित किया कि व्यक्ति द्वारा अनेकों कार्य अपनी मुक्त इच्छा से करता है, न कि किसी भी भाँति की 'बाध्यता' या 'दबाव' के कारण। उनके मतानुसार दबाव या बाध्यता का गुण मूल्यों, कानून, जनमत, नैतिक नियमों आदि में पाया जा सकता है। लेकिन प्रत्येक सामाजिक तथ्यों में यह विशेषता नहीं पायी जाती है। उदाहरणस्वरूप फैशन के आधार पर चलना व्यक्ति के लिए आवश्यक नहीं है, अनेकों लोग फैशन से अप्रभावित रहते हैं। इसी भाँति शिक्षा-पद्धति या शिक्षण संस्थाओं का प्रभाव भी आवश्यक रूप में प्रत्येक पर नहीं पड़ता। इसी भाँति समाज में ऐसे अनेकों तथ्य पाये जाते हैं जिनका व्यक्ति पर बाध्यतामूलक प्रभाव नहीं पड़ता है। बार्न्स का मत है कि दुर्खीम ने इसी यथार्थ को न समझने की विचित्र त्रुटि की है।
5. विख्यात समाजशास्त्री रेमण्ड ऐरन (Raymond Aron) ने भी दुर्खीम के सामाजिक तथ्य से सम्बन्धित विचारों की निंदा की है। ऐरन का विचार है कि दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों की समीक्षा में 'बाध्यता' (Constraint) शब्द का प्रयोग बहुत ही त्रुटिपूर्ण तरीके से किया है। कभी-कभी यह विचार करने में अत्यधिक समस्या होने लगती है कि क्या केवल 'बाध्यता' ही सामाजिक तथ्यों का सारांश है, अथवा यह मात्र उनकी बाहरी विशेषता है, जो कि सामाजिक तथ्यों को समझने में सहयोग करती है।
6. **जार्ज कैटलिन** (George E. G. Catlin) जिन्होंने दुर्खीम की पुस्तक 'The Rules of Socilogical Method' का अंग्रेजी में अनुवाद किया है, इनके सामाजिक तथ्य सम्बन्धी विचारों की निंदा की है। इनका मत था कि दुर्खीम द्वारा 'सामाजिक तथ्यों' को ही अपने अध्ययन का मूल माना है।

   इन सामाजिक तथ्यों की दो विशेषताएँ इंगित की गई हैं—बाह्यता व बाध्यता। यथार्थ यह है कि बाध्यता में सामूहिक चेतना का तत्त्व विद्यमान है, यह तथ्य दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित किया गया। अत: यह तथ्य इस बात को इंगित करता है कि सामाजिक तथ्य सामूहिक चेतना के माध्यम से समझे जा सकते हैं। कैटलिन का कथन है कि इस बात से सामाजिक तथ्यों के बारे में व्यर्थ भ्रान्ति हो जाती है। और सामाजिक तथ्य का अर्थ उचित प्रकार से स्पष्ट नहीं होता। उन्होंने यह सुझाव दिया है कि दुर्खीम द्वारा सामाजिक तथ्यों के स्थान पर 'सामाजिक संरचना' शब्द को प्रयोग करना चाहिए।

अत: उपरोक्त विवेचना द्वारा स्पष्ट है कि दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों की जो विवेचना दी. है उसकी अनेक विद्वानों ने आलोचना की है। परन्तु इसका अर्थ यह बिल्कुल भी नहीं है कि सामाजिक तथ्यों की अवधारणा पूर्णत: निरर्थक व अपर्याप्त है। यथार्थ तो यह है

TOUCH 'n' PASS

कि किसी भी समाजशास्त्रीय विवेचन में दुर्खीम की सामाजिक तथ्यों की अवधारणा से जुड़े योगदान को नकारा नहीं जा सकता है, यह एक गंभीर सच्चाई है कि अत्यधिक सीमा तक मानवीय व्यवहार सामाजिक तथ्यों के माध्यम से शुरू होती है।

सामाजिक तथ्य सामाजिक घटनाओं का बोध (Understanding of Social Phenomenon) करने में आवश्यक रूप से सहयोगी होते हैं। क्योंकि सामाजिक तथ्य सामूहिक चेतना का प्रदर्शन होते है। अत:एव वह सामाजिक घटनाओं का वास्तविक निर्देशन भी करते हैं। समाज की घटनाओं की मुख्य विशेषता की खोज सामाजिक तथ्यों के अध्ययन के माध्यम से किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त दुर्खीम के मतानुसार, सामाजिक तथ्य वास्तविक 'वस्तु' है इनका निरीक्षण वस्तुनिष्ठ रूप में संभव है। अत: इस प्रकार सामाजिक तथ्यों को सामाजिक घटनाओं का ज्ञान करने के वैज्ञानिक तरीके से स्वीकार कर सकते हैं। सामाजिक तथ्य 'वस्तु' की भाँति हैं। इसका अर्थ यह है कि सामाजिक तथ्य कोई मिथ्या धारणा या विचार नहीं होता, इसका अस्तित्व वास्तविक होता है। इस यथार्थ आधार पर सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक ज्ञान सरल हो जाएगा। इसके साथ सामाजिक तथ्य में 'बाध्यता' (Exteriorita) की विशेषता उपस्थित होती है। इसका तात्पर्य यह है कि इसे एक स्वतन्त्र वास्तविकता के रूप में अनुभव किया जा सकता है। इसलिए इसकी सहायता से सामाजिक घटनाओं को बहुत सरलता से समझा जा सकता है। सामाजिक तथ्य की अन्य विशेषता 'बाध्यता' (Constraint) है, जो हमें विशेष तरीके से व्यवहार करने को प्रतिबन्धित करती है। इससे सामाजिक घटनाओं में भी एक श्रेणीक्रम उत्पन्न हो जाती है और उसका वैज्ञानिक ज्ञान सुलभ हो पाता है।

वास्तविकता यह है कि दुर्खीम ने सामाजिक तथ्य की अवधारणा के आधार पर ही सामाजिक एकता, श्रम-विभाजन, धर्म, आत्महत्या, ज्ञान आदि सामाजिक घटनाओं की व्याख्या तथा उनका वर्णन किया है। प्राय: यह समझा जाता है कि श्रम-विभाजन एक आर्थिक अवधारणा है, लेकिन दुर्खीम के अनुसार कुछ सामाजिक तथ्य ही श्रम-विभाजन का कारण प्रतीत होते हैं और श्रम विभाजन के सामाजिक परिणाम आर्थिक परिणामों से अधिक महत्त्व रखते हैं। इसी भाँति धर्म की उत्पत्ति अथवा आत्महत्या के कारण के रूप में सामाजिक तथ्य के मूल्य को दुर्खीम ने समझाने की कोशिश की है। यह बात उचित है कि सामाजिक तथ्यों को ही सब कुछ मान लेने की त्रुटि दुर्खीम ने की है। परन्तु फिर भी सामाजिक तथ्यों के महत्त्व को वर्तमान में सामाजिक घटनाओं का ज्ञान करने में शायद कुछ लोग ही स्वीकार न करे। दुर्खीम की इस अवधारणा की सार्थकता इसी बात में निहित है।

प्र.4. सावयवी एकता से आप क्या समझते हैं? यांत्रिक एकता की विशेषताएँ लिखिए।
What do you understand by organic solidarity? Write the characteristics of mechanical solidarity.

उत्तर

सावयवी एकता
(Organic Solidarity)

वर्तमान समाज के अनुसार सभी प्राचीन परिस्थितियाँ बदलती गई। जन समुदाय बढ़ा और साथ ही उनकी आवश्यकताएँ भी बदलती गई। अर्थात् लोगों की आवश्यकताएँ पहले की भाँति समान न होकर बदलती हुयी स्पष्ट होने लगी। अत: इन भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लोगों को बड़े स्तर पर सामाजिक कार्य व उत्पादन करना पड़ा। इसके साथ ही श्रम या कार्य का विभाजन करना भी आवश्यक हो गया। श्रम विभाजन के कारण कार्यों का विशेषीकरण हो गया क्योंकि इस प्रकार के विभाजन के कारण प्रत्येक व्यक्ति प्राय: एक ही समान कार्य करता रहता है। विशेषीकरण करने के कारण व्यक्तिगत भिन्नता बढ़ती चली गई। जिस कारण अनेकों स्वार्थों का उद्‌भव हुआ। श्रम विभाजन करने के कारण अलग-अलग प्रकार के रोजगार समूहों का जन्म हुआ। विशेषीकरण व श्रम का विभाजन हो जाने से व्यक्ति का महत्त्व बढ़ गया। इस प्रकार सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में विभिन्नता का प्रभाव स्थापित हुआ। अत: प्राचीन समाज का महत्त्वपूर्ण पहलू व्यक्तिगत समानता के आधार पर सामाजिक एकता को कायम रखना सम्भव ही नहीं हुआ। परन्तु इसके स्थान पर सामाजिक एकता को बनाए रखने के लिए किसी अन्य आधार की आवश्यकता का अनुभव हुआ। आधुनिक समाज में यह आधार श्रम विभाजन है क्योंकि श्रम विभाजन में विभाजन होने के उपरान्त भी सहयोग या एकता की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के श्रम विभाजन में प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष कार्य करता है, लेकिन उसे अन्य सेवाओं व वस्तुओं की जरूरत भी होती है। इस प्रकार यह आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों के साथ सम्बद्ध रखती है, और अन्य लोगों के साथ सहयोग करने को बाध्य करती है। उदाहरण के रूप में हम समझ सकते हैं कि एक जूते बनाने का कार्य करने वाला साइकिल बनाने का काम व साइकिल बनाने का कार्य करने वाला जूते बनाने का कार्य नहीं कर सकता। अत: उन दोनों को एक दूसरे की सेवाओं की जरूरत पड़ेगी। इसलिए वे परस्पर एक-दूसरे पर आधारित हो जाते हैं।

अत: स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आधुनिक समाज में श्रम का विभाजन व विशेषीकरण होने के बाद भी भिन्न-भिन्न विभागों व व्यक्तियों के मध्य अन्त:सम्बन्ध व अन्त:निर्भरता व एकता विद्यमान है। श्रम विभाजन के कारण एक तरफ

तो व्यक्ति और सामाजिक समूह विभाजित कर दिये गये हैं, परन्तु दूसरी तरफ उनकी जरूरतों के आधार पर उसी श्रम विभाजन के द्वारा वे परस्पर अधिक निर्भर और सम्बन्धित कर दिये गये हैं। यही सावयवी एकता कहलाती है। यह एकता प्राणी के शरीर में मिलने वाली एकता के समरूप ही इसलिए दुर्खीम ने इसे सावयवी एकता का नाम दिया है। प्राणी के शरीर में हाथ केवल हाथ का कार्य करता है, आँख का नहीं, तथा आँख केवल आँख का काम करती हैं, पैरों का नहीं इसी प्रकार पैर केवल पैरों का कार्य करते हैं, पेट का नहीं। इस प्रकार यह नहीं कह सकते हैं कि आँख, हाथ, पैर, पेट आदि का एक-दूसरे से कोई अन्त:सम्बन्ध नहीं है। वास्तविकता यह है कि ये सभी भाग परस्पर एक-दूसरे पर अत्यधिक निर्भर है व इनमें घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारे अंगों का शरीर के प्रत्येक भाग पर प्रभाव होता है। हाथ अपना काम व आँख अपना काम तभी कर पाते हैं जब तक वे शरीर से जुड़े हैं। हाथ को शरीर से अलग कर देने पर वह कार्य करने योग्य नहीं रह जाता है। वर्तमान समय में विशेषीकरण व सामाजिक श्रम विभाजन के कारण प्रत्येक व्यक्ति का एक विशेष प्रकार का कार्य, व्यक्तित्व तथा अनुभव होता है परन्तु स्वयं की अनेक अन्य आवश्यकताओं या जरूरतों की पूर्ति के लिए उसे समाज के अन्य व्यक्तियों पर निर्भर रहना पड़ता है। यही 'सावयवी एकता' कहलाती है।

यांत्रिक एकता की विशेषताएँ (Characteristics of Mechanical Solidarity)

दुर्खीम ने यांत्रिक एकता की निम्न विशेषताएँ दी हैं—

1. **तीव्र सामूहिक चेतना** (Strong Collective Consciousness)—मनुष्य एक बुद्धिमान प्राणी है, परन्तु उसकी उन्नति व विकास तभी हो सकता है, जब सामाजिक परिस्थितियाँ उसके अनुसार हों। यदि हम अपने प्राचीन समाज का निरीक्षण करें तो यह देखते हैं कि आदिम मनुष्य उस समय व्याप्त प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण स्वविवेक से नहीं वरन् जन्मजात प्रवृत्तियों से अधिक प्रेरित होता था। वह अपनी बुद्धि, विवेक का प्रयोग नहीं करते और न ही तर्क-वितर्क करते तथा स्वतंत्रता की मांग भी नहीं करते थे। इसका परिणाम यह होता था कि उनमें सामूहिक चिंतन मजबूती से विद्यमान हो जाता था। इस परिस्थिति में यदि किसी व्यक्ति का व्यवहार सामूहिक विचारों के विरुद्ध हो जाता था तो सम्पूर्ण समाज उसके विरोध में खड़ा हो जाता था और उस व्यक्ति को बहुत कठोर दण्ड दिया जाता था।
   इसका कारण सामूहिक चेतना का अति तीव्र होना था। यांत्रिक एकता में स्वयं भी अभिलाषाओं स्वविवेक का कोई स्थान नहीं है। इन पर सामूहिक चेतना का नियंत्रण रहता है। प्रकृति ने मानसिक, शारीरिक व बौद्धिक दृष्टि से किसी भी व्यक्ति को एक समान नहीं बनाया है, परन्तु यांत्रिक एकता में बाध्यकारी कानून के द्वारा सभी को समान बनने के लिए विवश कर दिया जाता है। इस विषय पर दुर्खीम का मत है कि व्यक्ति की प्रतिभा, उसके विवेक व तर्क को अधिक समय तक नियंत्रित नहीं किया जा सकता है।
   अत: यह परिस्थिति अधिक समय तक नहीं रह सकती है। इसका परिणाम हम वर्तमान समय में देख ही रहे हैं। दुर्खीम समाज को व्यक्ति से अधिक श्रेष्ठ मानते हैं, परन्तु यांत्रिक एकता में व्यक्ति के व्यक्तित्व का सामूहिक चेतना पर दमन करने को स्वीकार नहीं करते। अत: यांत्रिक एकता को दुर्खीम जीवन रहित बताते हैं। क्योंकि इस प्रकार के समाज में कोई उन्नति या परिवर्तन नहीं होते, नये आविष्कार नहीं होते तथा व्यक्तिगत चेतना को केवल सामाजिक चेतना के द्वारा ही अभिव्यक्त किया जाता है। इस प्रकार यांत्रिक समाज में व्यक्ति को कोई अधिकार प्राप्त नहीं होते और यदि अधिकारों की मांग की जाती है, तो उसका दमन कर दिया जाता है। इस प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व की समाप्ति हो जाती है। उसका स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं रहता और उसे यंत्रवत चलना पड़ता है।
2. **दमनकारी कानून** (Repressive Law)—यांत्रिकी एकता वाले समाज में दमनकारी कानून द्वारा व्यक्ति पर कठोर नियंत्रण रहता है। दुर्खीम के विचारों से यांत्रिक समाज की सुदृढ़ता उनके सामाजिक विश्वास व संवेगों के कारण है। इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति समाज के विश्वास व संवेगों को क्षति पहुँचाता है तो वह अपराध की श्रेणी में आता है और अपराधी को दण्ड देना समाज का कार्य है। समाज लोगों पर नियंत्रण रखने के लिए अनेक कठोर नियम व कानून बनाता है व उनका पालन करता है। अत: समाज में दमनकारी कानूनों की स्थापना की गई। ये कानून समाज में व्यवस्था व दृढ़ता बनाये रखते हैं। जो विचार व कार्य सामूहिक चेतना के विरोधी होते हैं, उनका दमन कर दिया जाता है।
3. **धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका** (Important Role of Religion)—यांत्रिक एकता वाले समाज में धर्म की मुख्य भूमिका होती है। धार्मिक परम्पराएँ, रीति-रिवाज, प्रथाएँ, अनुष्ठान व कुलदेवता आदि विशेष होते है। इनके उचित तरीके से निर्वहन न करने पर ईश्वर के प्रकोप का जनमानस में भय उत्पन्न कर दिया जाता है। जिसका कारण यह है कि कोई इन मान्यताओं के विरुद्ध कार्य न करें। सामूहिक चेतना को सर्वशक्तिशाली माना जाता है और उनके विरुद्ध कार्य करना पाप की श्रेणी में

TOUCH 'n' PASS

आता है। सामूहिक चेतना पर लोगों में निष्ठा व विश्वास बना रहे, इसलिए कुलदेवता व किसी पवित्र शक्ति के विद्यमान होने की कल्पना की जाती है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति से धार्मिक विश्वासों के नियमों के अनुसार ही चलने की उम्मीद रखी जाती है।

4. **खंडात्मक रचना** (Segmental Composition)—खंडात्मक सामाजिक संरचना यांत्रिक एकता वाले समाज की एक प्रमुख विशेषता है। यांत्रिक एकता मुक्त समाज में इकाई अपेक्षाकृत व्यक्ति का सम्पूर्ण समुदाय में होता है। ये समूह अपने रक्त सम्बन्धों में दृढ़ विश्वास रखते हैं और स्वयं को अन्य से पवित्र मानते हैं। व्यक्ति स्वयं के समूह से जुड़ा रहता है, तथा प्रत्येक समूह आत्मनिर्भर रहता है। प्रत्येक समूह के कुछ विशेष नियम कानून होते है, और इन्हीं के द्वारा व्यक्ति मजबूत एकता में बंधा रहता है। व्यक्ति का सम्बन्ध समूह तथा समूह का सम्बन्ध व्यक्ति से होता है। अत: समाज में समरूपता विद्यमान रहती है जो इसकी एकता बनाए रखती है।
5. **विशिष्ट राजनीतिक व्यवस्था** (Specific Political System)—दुर्खीम के अनुसार यांत्रिक एकता वाले समाजों में लोगों के विचार लगभग समान होते है। जब कोई व्यक्ति या सामाजिक समुदाय समाज के प्रतिनिधित्व के रूप में शासन अपने हाथ में लेता है, तो जनता उस शासन की आज्ञा का पालन करती है। व्यक्ति का व्यक्तिगत रूप से कोई अधिकार नहीं होता और राजा व प्रजातन्त्र के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध न होकर यांत्रिक होते हैं। दुर्खीम समाज को सामूहिक आत्मा मानते हैं जो कि प्रत्येक व्यक्तिगत आत्मा के अन्दर विद्यमान रहती है। यही सामूहिक आत्मा यांत्रिक एकता का कारण है।

प्र.5. आत्महत्या की विशेषताएँ एवं कारकों का वर्णन कीजिए।
Describe the characteristics and factors of suicide.

उत्तर

आत्महत्या की विशेषताएँ
(Characteristics of Suicide)

आत्महत्या की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है—

1. **व्यक्तिगत क्रिया का परिणाम** (Individual Action Result)—व्यक्ति की स्वयं की क्रियाओं का परिणाम ही आत्महत्या है। यह आत्महत्या की सबसे प्रमुख विशेषता है। दुर्खीम के विचारानुसार, यह क्रिया सकारात्मक या नकारात्मक हो सकती है। उदाहरण के लिए स्वयं उच्च स्थान से कूदकर जान दे देना सकारात्मक क्रिया होती है तथा भोजन को ग्रहण करने से मना करके जीवन को नष्ट करना नकारात्मक क्रिया कहलाती है।
2. **परिणाम के प्रति सचेत** (Conscious towards Consequences)—दुर्खीम के मतानुसार, आत्महत्या मृतक द्वारा की जाने वाली क्रिया का प्रत्यक्ष परिणाम होती है। इसके परिणामस्वरूप आत्मघाती व्यक्ति पूर्णतया सचेत होता है अर्थात् वह, इस विशिष्ट कार्य का परिणाम मृत्यु ही होगा, से परिचित होता है। यदि किसी संकटपूर्ण कार्य के परिणामस्वरूप व्यक्ति की आकस्मिक मृत्यु हो जाए तो ऐसे कार्य में परिणाम के प्रति चेतना का अभाव होने से उसे आत्महत्या का नाम नहीं दिया जा सकता।
3. **स्वैच्छिक समावेश** (Voluntary Inclusion)—आत्महत्या व्यक्ति द्वारा स्वयं अपनी इच्छानुसार की जाने वाली प्रक्रिया है। यद्यपि किसी व्यक्ति को स्वत: अपना जीवन नष्ट करने के लिए कुछ व्यक्तियों के द्वारा बाध्य किया जाए और व्यक्ति की मृत्यु उसी बाध्यता का परिणाम हो तो इस प्रकार की मृत्यु को आत्महत्या की श्रेणी के अन्तर्गत नहीं रखा जाएगा। इसका तात्पर्य है कि व्यक्ति में आत्महत्या के लिए उचित उद्देश्यों का होना आवश्यक तत्त्व है। इस आधार पर दुर्खीम ने कहा है कि आत्महत्या एवं मृत्यु अलग-अलग है, क्योंकि मृत्यु की स्थिति में स्वेच्छा का अभाव होता है।
4. **आत्महत्या का व्यक्ति से बाह्य कारण** (Cause of Suicide Outside the Person)—दुर्खीम का मानना है कि व्यक्ति को कुछ बाह्य दशाएँ आत्महत्या हेतु प्रेरित करती है। यदि आत्महत्या का कारण व्यक्ति में आन्तरिक रूप से होता तो विभिन्न स्थितियों में आत्महत्या की दर में अत्यधिक असमनता दिखाई पड़ती। परन्तु इसके प्रतिकूल, विभिन्न समाजों में बहुत कम अन्तर होने पर भी आत्महत्या की घटनाएँ एक निश्चित दर से घटित होती रहती है। इससे यह सिद्ध होता है कि सामाजिक संरचना सम्बन्धी कुछ विशेषताएँ ही आत्महत्या के लिए अनुकूल स्थितियाँ उत्पन्न करती है। जब तक इन स्थितियों में परिवर्तन नहीं हो जाता तब तक आत्महत्या की दर में कोई परिवर्तन नहीं होगा।
5. **उद्देश्यों का समावेश** (Inclusion of Purpose)—प्रत्येक आत्महत्या का एक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उद्देश्य अवश्य होता है। दुर्खीम का विचार है कि सदैव आत्महत्या का उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता परन्तु किसी व्यक्ति को आत्महत्या

TOUCH 'n' PASS

करने के लिए प्रेरित करने का एक सामाजिक आधार अवश्य होता है। ये उद्देश्य वैयक्तिक व सामूहिक भी हो सकते है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति आत्महत्या से परिवार को वित्तीय दिवालियापन से बचाना चाहता है तो यह आत्महत्या का वैयक्तिक उद्देश्य होता है और इसके सामूहिक उद्देश्य के रूप में देश की सुरक्षा हेतु स्वयं के प्राणों का बलिदान करना आत्महत्या को स्पष्ट करता है।

6. **एक सामाजिक तथ्य** (A Social Fact)—दुर्खीम के अनुसार, आत्महत्या एक व्यक्तिगत घटना नहीं है बल्कि यह एक सामाजिक घटना है। अर्थात् आत्महत्या का कारण व्यक्तिगत न होकर सामूहिक होता है। किसी व्यक्ति की जीव-रचना, मानसिक क्षमताओं व अनुसरण आदि के आधार पर एक व्यक्तिगत घटना को समझा जा सकता है, तथा समाज की स्थिति एवं समाज के नैतिक संगठन में सामाजिक घटना का कारण निहित होता है। दुर्खीम ने आत्महत्या सम्बन्धी आँकड़ों को यूरोप के विभिन्न देशों से एकत्रित किया और उनका कथन है, कि विभिन्न समाजों में आत्महत्या की दर वहाँ की सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्थिति के अनुसार ही भिन्न-भिन्न होती है और एक विशिष्ट समुदाय में प्रत्येक वर्ष आत्महत्या की दर में अधिक भिन्नता नहीं पायी जाती। इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक स्थितियाँ ही आत्महत्या दर को प्रभावित करती है। इसलिए आत्महत्या एक सामाजिक तथ्य है क्योंकि इसमें बाध्यता मौजूद होती हैं।

आत्महत्या के कारक (Factors of Suicide)

किसी व्यक्ति द्वारा आत्महत्या अत्यधिक जटिल परिस्थितियों में की जाती है। विभिन्न कारणों से जब व्यक्ति की दशा अति दयनीय हो जाती है तब वह आत्महत्या जैसा कदम उठाता है। अत: यह स्पष्ट है, कि कोई व्यक्ति किसी एक कारण से प्रभावित होकर आत्महत्या नहीं करता है। आत्महत्या करने के लिए अलग-अलग कारण हो सकते हैं। किसी एक व्यक्ति को कोई एक कारण अत्यधिक प्रभावित करता है तो अन्य को कोई दूसरा कारण प्रभावित करता है। आत्महत्या के सभी सम्भव कारणों का अध्ययन करना सरल नहीं है। विद्वानों के अनुसार आत्महत्या की घटना पागलपन से सम्बन्धित है। कुछ विद्वान प्रजाति तथा वंशानुक्रम को आत्महत्या का कारण मानते हैं। कुछ अन्य विद्वान निर्धनता, मायूसी व मद्यपान आदि के आधार पर आत्महत्या जैसा कृत्य करने की कोशिश करते हैं। परन्तु दुर्खीम इन विद्वानों के विचारों से सहमत नहीं है। उनके अनुसार ये आधार वैयक्तिक है। आत्महत्या की प्रकृति सामाजिक होती है। इसकी विवेचना समाज के परिप्रेक्ष्य में होनी चाहिए। दुर्खीम के अनुसार, "आत्महत्या का सामाजिक पर्यावरण की दशाओं के बीच का सम्बन्ध उतना ही अधिक प्रत्यक्ष और स्पष्ट होता है जितना कि जैविकीय और भैतिक दशाएँ आत्महत्या के साथ एक अनिश्चित और अस्पष्ट सम्बन्ध को स्पष्ट करती है।" दुर्खीम के अनुसार समाज व्यक्ति पर दो प्रकार से दबाव बनाता है—

1. **स्वस्थ दबाव** (Healthy Pressure)—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अत: उसकी अनेक मानसिक, शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक आवश्यकताएँ होती हैं जिन्हें वह अन्य के सहयोग से ही पूरा कर सकता है। अत: यह आवश्यकताएँ समाज के समस्त सदस्यों को परस्पर बांध के रखती हैं। अर्थात् बंधन या दबाव समाज के समस्त व्यक्तियों पर रहता है। अत: इसके परिणामस्वरूप समस्त व्यक्तियों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति सुगमता से सम्पन्न होती रहती है, और व्यक्ति को जीवन व्यतीत करने में सुखद अनुभूति आती है। यह समाज का व्यक्ति पर स्वस्थ दबाव है।
2. **अस्वस्थ दबाव** (Unhealthy Pressure)—स्वस्थ दबाव के विरुद्ध समाज या समूह व्यक्ति के सामने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है, जो व्यक्ति को सामाजिक जीवन से विमुख कर देती हैं और वह व्यक्ति यह विचार करने लगता है कि समस्त विश्व में उसका अपना कोई नहीं है अथवा समाज व्यक्ति पर इस सीमा तक प्रभुत्व डालता है कि उसकी अपनी पहचान ही न हो तब व्यक्ति वही कार्य करता है जैसा समाज चाहता है। यह व्यक्ति पर समाज का अस्वस्थ दबाव है। इस अस्वस्थ दबाव के कारण ही व्यक्ति आत्महत्या करता है। एक संतुलित व्यक्तित्व हेतु यह आवश्यक होता है, कि सामाजिक दशाओं व सामूहिक समझ का व्यक्ति के जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव स्वस्थ हो। परन्तु जब इसके अनुरूप व्यक्ति के जीवन पर समूह के नियन्त्रण में आवश्यकता से अधिक वृद्धि अथवा कमी होने लगती है तब वह सामाजिक दशाएँ व्यक्ति को अस्वस्थ रूप से प्रभावित करना शुरू कर देती है। यही दशाएँ आत्महत्या का कारण बनती है।
दुर्खीम बताते हैं, कि सामाजिक कारणों के सहयोग से भौतिक कारणों का प्रभुत्व स्पष्ट किया जाता है। यदि महिलाएँ पुरुषों की तुलना में कम आत्महत्याएँ करती हैं, तो इसके पीछे तर्क यह दिया जाता है, कि वे पुरुषों की तुलना में सामूहिक जीवन में कम प्रतिभाग लेती है और वे इसके सामूहिक जीवन के उचित या अनुचित प्रभाव को जीवन में इनके अनुरूप कम अनुभव करती हैं। यही नियम दुर्खीम ने स्वयं के अध्ययन के आकड़ों के आधार पर अधिक आयु के व्यक्तियों व बच्चों के

TOUCH 'n PASS

सम्बन्ध आदि में भी लागू किया। दुर्खीम ने स्वयं के अवलोकन में स्पष्ट किया है, कि समाज में होने वाली आत्महत्या के अनुपात की व्याख्या सिर्फ समाजशास्त्री परिप्रेक्ष्य में ही की जा सकती है। एक निश्चित अंतराल पर समाज का नैतिक संगठन ऐच्छिक मृत्यु के लिए उचित परिस्थिति उत्पन्न करता है। समस्त व्यक्ति स्वयं पर एक सामाजिक व सामूहिक शक्ति का बल अनुभव करते हैं परिणामत: वे आत्महत्या की तरफ बाध्य होते हैं। आत्महत्या करने वाले व्यक्ति के कार्य जो पूर्व में उसके वैयक्तिक स्वभाव को प्रकट करते हैं। वास्तव में एक सामाजिक दशा के पूरक और विस्तार होते हैं, जिनका प्रकटीकरण आत्महत्या के परिणाम में परिवर्तित होता हैं। अत: प्रत्यक्ष तथ्यों के आधार पर प्रत्येक मानव समाज में आत्महत्या की प्रवृत्ति कम या अधिक रूप में पाई जाती है।

आत्महत्या के लिए समस्त सामाजिक समूह में स्वयं के अनुसार एक सामूहिक प्रवृत्ति विद्यमान रहती है। यह वैयक्तिक प्रवृत्तियों का परिणाम होता है। समस्त सामाजिक समूह की यह प्रवृत्तियां उन्हें इस सीमा तक प्रभावित करती हैं कि वह आत्महत्या का परिणाम बनती है। अत: वे सिर्फ ऐसे प्रभाव मात्र है जिनको आत्महत्या करने वाले व्यक्ति की नैतिक प्रवृत्ति से लिया गया है। यह समाज की नैतिक दशा की एक प्रति ध्वनि है। व्यक्ति स्वयं के जीवन की उदासीनता को समझाने के लिए अपने वातावरण की विद्यमान परिस्थितियों को दोषी मानता है, उसके दुखी जीवन का कारण उसका दुख है। परन्तु वास्तविकता यह है, कि वह बाह्य कारणों से आहत है। यह बाह्य परिस्थितियाँ उसके जीवन की कोई बाहरी घटना नहीं है, बल्कि उसी समूह की है, जिसका वह सदस्य है। अत: ऐसी कोई सामाजिक दशा नहीं होती, जो आत्महत्या के लिए अवसर का काम न कर सके। यह समस्त क्रिया इस बात पर निर्भर करती है कि कितनी तीव्रता से आत्महत्या की प्रवृत्ति को उत्पन्न करने वाला कारण व्यक्ति को प्रभावित करता है। हालाँकि यदि समाज में विद्यमान परिस्थितियाँ ही आत्महत्या का कारण हैं, तो एक समान वातावरण में रहने वाले व्यक्तियों में आत्महत्या की घटनाएं भिन्न-भिन्न क्यों होती है? इसे स्पष्ट करते हुए दुर्खीम व्यक्त करते हैं, कि आत्महत्या को प्रेरित करने वाली दशाएँ प्रत्येक समाज में क्रियाशील रहती हैं, परन्तु समस्त व्यक्तियों पर इनका प्रभाव समान नहीं पड़ता है। क्योंकि यह तब किसी व्यक्ति को प्रभावित करती हैं, जब तक व्यक्ति का व्यक्तित्व उसे ग्रहण न कर ले। अत: यही कारण है, निर्धनता तथा दुखी वैवाहिक जीवन की व्यथा कुछ लोग सहन कर लेते हैं परन्तु कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो इस व्यथा को सहन नहीं कर पाते, उसके साथ अनुकूलन करने में अक्षम होकर आत्महत्या की ओर अग्रसर हो जाते हैं। किसी विशेष परिस्थिति को कुछ लोग अत्यन्त साधारण समझकर ऐसे ही छोड़ देते हैं, अथवा उसके लिए उदासीन बने रहते हैं। दूसरी तरफ कुछ लोग ऐसे भी होते है, जो उसी परिस्थिति के आ जाने से पूरी तरह से टूट जाते हैं, उन्हें अपने जीवन के बारे में भी चिन्ता नहीं रहती है। इसका परिणाम आत्महत्या में लक्षित होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है, कि आत्महत्या को प्रेरित करने वाले विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों के प्रति जो व्यक्ति जितना अधिक जुड़ाव महसूस करता है उसका आत्महत्या की ओर उतना ही झुकाव होगा।

प्र.6. आत्महत्या के प्रकारों को विस्तार से लिखिए।
Write in detail of types of Suicide.

उत्तर

आत्महत्या के प्रकार
(Types of Suicide)

दुर्खीम ने कर्त्ता और उसके समाज के बीच विभिन्न प्रकार के संबंधों के आधार पर आत्महत्या को प्रमुख रूप से तीन भागों में विभाजित किया है जो निम्नलिखित है—

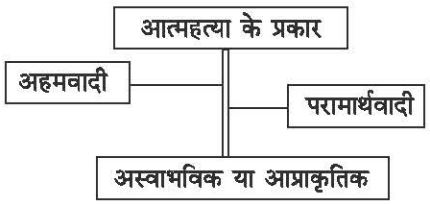

1. **अहमवादी आत्महत्या** (Egoistic Suicide)—दुर्खीम का मानना है कि अहमवादी आत्महत्या सामान्यतया तब होती है, जब व्यक्ति समूह तथा समाज से स्वयं को अलग समझने लगता है और वह धीरे-धीरे एकाकी हो जाता है, तथा उसकी

TOUCH 'n PASS

सामूहिक भागीदारी कम होने लगती है। समाज में उस व्यक्ति का सम्मान कम हो जाता है। अत: व्यक्ति को समाज से बाँधने वाली कड़ी कमजोर हो जाती है। दूसरे शब्दों में समाज से बहिष्कृत व्यक्ति यह अनुभव करने लगता है कि इस विश्व में कोई उसका अपना नहीं है। ऐसी अवस्था में वह अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए आत्महत्या करता है। आधुनिक युग में ऐसी आत्महत्याएँ अत्यधिक हो रही है।

2. **परमार्थवादी आत्महत्या** (Altruistic Suicide)—परमार्थी आत्महत्या, अहमवादी आत्महत्या का प्रतिकूल रूप है। इस प्रकार की आत्महत्या व्यक्ति स्वयं के लिए नहीं बल्कि समाज के लिए करता है। दुर्खीम के विचारानुसार, परमार्थवादी आत्महत्याएँ उन समाजों में पायी जाती है जहाँ सामाजिक एकीकरण की भावना आवश्यकता से अधिक गहन होती है। जब सामाजिक एकीकरण की अधिकता होती है, तो व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्वयं कोई मूल्य नहीं रह जाता। ऐसी स्थिति में व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले कार्य समाज या समूह के अनुसार होते है। समूह का अत्यधिक नियंत्रण तथा घनिष्ठ सम्बन्ध उसे आत्म बलिदान के लिए बाध्य कर सकता है। वस्तुत: परमार्थवादी आत्महत्या समूह के अत्यधिक नियंत्रण व घनिष्ठता के कारण होती है तथा उस स्थिति में व्यक्ति सामूहिक हित के लिए संघर्ष या बलिदान कर देता है। प्राचीन समुदायों में इस प्रकार की आत्महत्याएँ देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए, भारत में पायी जाने वाली सती प्रथा जापान की हारा-कीरी प्रथा आदि से होने वाली मृत्यु इसी प्रकार की आत्महत्याएँ हैं। अत: स्पष्ट रूप से दुर्खीम ने कहा है कि, "घोर परमार्थ के कारण घटित आत्महत्या को ही हम परमार्थी आत्महत्या कहते है।" परमार्थीवादी आत्महत्या की प्रकृति को अधिक स्पष्ट करने के लिए दुर्खीम ने इसे तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया है—

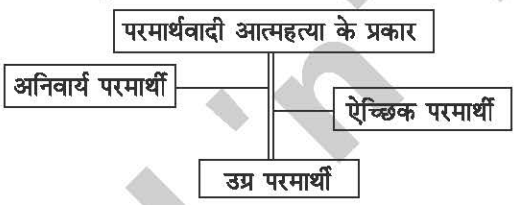

(i) **अनिवार्य परमार्थी आत्महत्या** (Obligatory Altruistic Suicide)—इस प्रकार की आत्महत्या तब घटित होती है, जब व्यक्ति एवं समाज का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यधिक गहन हो जाता है और परिणामस्वरूप व्यक्ति का व्यक्तित्व समूह या समाज में विलीन हो जाता है तथा उसका स्वयं का व्यक्तित्व समाज से अलग नहीं स्पष्ट होता। इस परिस्थिति में व्यक्ति समाज या समूह की आकांक्षानुसार ही कार्य करता हैं। उसकी आकांक्षा का कोई मूल्य नहीं रहता है। अत: अनिवार्य परमार्थवादी आत्महत्या वह होती है, जब व्यक्ति एक सामाजिक या धार्मिक कर्त्तव्य के रूप में आत्महत्या करता है। यदि वह इन कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता है तो उसे सामाजिक व धार्मिक मान्यताओं द्वारा दण्डित किया जाता है। मूलत: सामाजिक तथा धार्मिक मान्यताओं का व्यक्ति पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वह अपने अस्तित्व को ही नष्ट कर देते हैं। उदाहरण के लिए, पति की मृत्यु हो जाने पर पत्नी द्वारा की जाने वाली आत्महत्या (भारतीय सती प्रथा) इस प्रकार सामाजिक व धार्मिक मान्यताओं की पूर्ति के उद्देश्य से व्यक्ति द्वारा विवश होकर की जाने वाली आत्महत्या परमार्थी आत्महत्या कहलाती है।

(ii) **ऐच्छिक परमार्थी आत्महत्या** (Optional Altruistic Suicide)—दुर्खीम के मतानुसार, ऐच्छिक परमार्थीवादी आत्महत्या में व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए समाज द्वारा मजबूर नहीं किया जाता है बल्कि व्यक्ति स्वयं अपनी इच्छानुसार आत्महत्या करता है। अत: जब व्यक्ति परमार्थ के लिए अपनी आकांक्षा के अनुकूल आत्महत्या करता है तब उसे ऐच्छिक परमार्थीवादी आत्महत्या कहा जाता है। अत: यह स्पष्ट है कि ऐच्छिक परमार्थी आत्महत्या सामाजिक प्रतिष्ठा से सम्बन्धित होती है जिस कारण व्यक्ति आत्महत्या करने के लिए प्रोत्साहित होता है। ऐच्छिक परमार्थी आत्महत्या को स्पष्ट करते हुए दुर्खीम ने कहा है कि, "अनिवार्य आत्महत्या एवं ऐच्छिक परमार्थी आत्महत्या एक-दूसरे से इतनी अधिक मिलती-जुलती हैं कि इन दोनों को एक-दूसरे से अलग करना जटिल है और यह कहना असम्भव है कि कहाँ एक शुरू होती है कहाँ दूसरी समाप्त होती है।"

(iii) **उग्र परमार्थी आत्महत्या** (Acute Altruistic Suicide)—इस प्रकार की आत्महत्या को स्पष्ट करते हुए दुर्खीम ने कहा है कि, "इस प्रकार की आत्महत्या में व्यक्ति बलिदान का सम्पूर्ण सुख या आनन्द प्राप्त करने के लिए स्वयं

TOUCH 'n' PASS

को मार डालता है, क्योंकि कोई विशेष कारण होते हुए भी विश्व से छुटकारा प्रशंसनीय माना जाता है।'' अत: इस प्रकार की आत्महत्या व्यक्ति इसलिए करता है, क्योंकि उसके जीवन का सारा उद्देश्य ही स्वयं को समाप्त करना होता है। हिन्दुओं में 'मोक्ष' की धारणा इस प्रकार की आत्महत्याओं को प्रेरित करती है। दुर्खीम का मानना है कि इस धारणा में कई हिन्दू अपनी आकांक्षानुसार अपने शरीर को समाप्त कर देते थे। इसलिए यह उग्र परमार्थी आत्महत्या कहलाती है।

3. **अस्वाभाविक आत्महत्या** (Anomic Suicide)—इस प्रकार की आत्महत्याएँ तब घटित होती है जब व्यक्ति के सामाजिक जीवन में अस्वाभाविक परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है, हालाँकि यह परिस्थितियाँ आकस्मिक परिवर्तन के कारण उत्पन्न होती है और व्यक्ति उन परिस्थितियों से अनुकूलन नहीं कर पाता है, असफल हो जाता है। इस असफलता के कारण ही व्यक्ति आत्महत्या कर लेता है। ऐसी परिस्थितियों में कुछ व्यक्ति अत्यधिक प्रसन्नता या अत्यधिक निराशा का अनुभव करने लगते हैं। एकाएक दिवालिया होने पर या लॉटरी जीतने पर व्यक्ति अत्यधिक दु:खी या अत्यन्त प्रसन्नता में आत्महत्या कर लेता है। अत: यह स्पष्ट है कि अस्वाभाविक आत्महत्या न तो अहमवादी परिस्थितियों के कारण ही घटित होती है और न ही इसकी प्रकृति परमार्थी आत्महत्या के समान होती है। इस प्रकार की आत्महत्याओं की प्रकृति परमार्थी आत्महत्या के समान होती है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. आधुनिक समाजशास्त्र का संस्थापक तथा आधिकारिक रूप से पहला समाजशास्त्री किसे माना जाता है।
(क) मैक्स वेबर (ख) डेविड इमाईल (ग) विल्फ्रेडा परेटो (घ) जार्ज हरबर्ट मीड

उत्तर (ख) डेविड इमाईल

प्र.2. 'डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी' (Division of Labour in Society) किसकी रचना है?
(क) इमाईल दुर्खीम (ख) हेनरी बर्गसन (ग) मैक्स बेवर (घ) जी.एच. मीड

उत्तर (क) इमाईल दुर्खीम

प्र.3. दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में सम्मिलित नहीं है–
(क) आत्महत्या का सिद्धान्त (ख) सामाजिक तथ्य
(ग) सामाजिक एकता (घ) प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद

उत्तर (घ) प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद

प्र.4. इमाईल दुर्खीम की महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'आत्महत्या' फ्रेंच भाषा में ..... के नाम से सन् 1897 में प्रकाशित हुई।
(क) History of a Suicide (ख) Diary of Suicide
(ग) 'Le Suicide' (घ) Suicide Notes

उत्तर (ग) 'Le Suicide'

प्र.5. दुर्खीम के आत्महत्या के सिद्धान्त के प्रमुख रूपों में शामिल नहीं है–
(क) सुनियोजित आत्महत्या (ख) अहमवादी आत्महत्या
(ग) परमार्थवादी आत्महत्या (घ) अस्वाभाविक या अप्राकृतिक आत्महत्या

उत्तर (क) सुनियोजित आत्महत्या

प्र.6. दुर्खीम की कृति 'आत्महत्या' (Suicide) किस वर्ष प्रकाशित हुई?
(क) 1890 (ख) 1895 (ग) 1897 (घ) 1892

उत्तर (ग) 1897

प्र.7. दुर्खीम की कृतियों में सम्मिलित नहीं है–
(क) डिवीजन ऑफ लेवर इन सोसाइटी (ख) द सुसाइड
(ग) सोशियोलॉजी ऑफ फिलोसॉफी (घ) द माइंड एण्ड सोसायटी

उत्तर (घ) द माइंड एण्ड सोसायटी

TOUCH 'n PASS

प्र.8. दुर्खीम के अनुसार–
(क) आत्महत्या एक व्यक्ति तथ्य है (ख) आत्महत्या एक सामाजिक तथ्य है
(ग) आत्महत्या मनोवैज्ञानिक तथ्य है (घ) ये सभी
उत्तर (ख) आत्महत्या एक सामाजिक तथ्य है

प्र.9. दुर्खीम के अनुसार आधुनिक समाज में किस प्रकार की एकता पाई जाती है?
(क) सावयवी (ख) यांत्रिक
(ग) सांस्कृतिक (घ) आर्थिक
उत्तर (क) सावयवी

प्र.10. दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों के कितने स्वरूप बताए हैं?
(क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) पाँच
उत्तर (क) दो

प्र.11. संपूर्ण संस्था की अवधारणा प्रस्तुत करने वाले विद्वान कौन हैं?
(क) वेबर (ख) दुर्खीम (ग) मर्टन (घ) ईस्माइल
उत्तर (ग) मर्टन

प्र.12. वर्ग विहीन समाज की अवधारणा किस विद्वान ने प्रस्तुत की है?
(क) मार्क्स (ख) दुर्खीम (ग) हीगल (घ) स्पेन्सर
उत्तर (क) मार्क्स

प्र.13. किसने भूमिका समुच्चय की अवधारणा को विकसित किया?
(क) पारसन्स (ख) निस्बेट (ग) लिण्टन (घ) मर्टन
उत्तर (घ) मर्टन

प्र.14. दुर्खीम ने अपने अध्ययन में 'एनोमी' की अवधारणा पेश की–
(क) आत्मघाती (ख) सामाजिक नियंत्रण
(ग) सामाजिक प्रगति (घ) आधुनिकीकरण
उत्तर (क) आत्मघाती

प्र.15. समाज के अध्ययन में 'एनोमी' शब्द का प्रचलन किसने किया?
(क) हर्बर्ट स्पेंसर (ख) अगस्टे कॉम्टे
(ग) मैक्स वेबर (घ) एमाइल दुर्खीम
उत्तर (घ) एमाइल दुर्खीम

प्र.16. दुर्खीम ने तर्क दिया कि समाजशास्त्र का कार्य ..... का अध्ययन होना चाहिए।
(क) सामाजिक प्रगति (ख) सामाजिक तथ्य
(ग) एनोमी (घ) चेतना
उत्तर (ख) सामाजिक तथ्य

प्र.17. दुर्खीम के अनुसार धर्म का सबसे सरल एवं बुनियादी स्वरूप है–
(क) पवित्र (ख) जीववाद
(ग) अपवित्र (घ) गण चिन्हवाद
उत्तर (घ) गण चिन्हवाद

प्र.18. आत्महत्या वर्ष में प्रकाशित हुई थी–
(क) 1897 (ख) 1987 (ग) 1798 (घ) 1879
उत्तर (क) 1897

TOUCH 'n PASS

प्र.19. धार्मिक जीवन के प्राथमिक रूप किसके द्वारा लिखे गए हैं?
(क) काल मार्क्स (ख) एमाइल दुर्खीम (ग) अगस्टे कॉम्टे (घ) मैक्स वेबर
उत्तर (ख) एमाइल दुर्खीम

प्र.20. अपने कार्य 'द एलीमेंट्री फॉर्म्स ऑफ रिलिजियस लाइफ' में दुर्खीम ने धर्म के विकास को जिम्मेदार ठहराया है–
(क) एनोमी के विकास के लिए
(ख) सामुदायिक जीवन के माध्यम से प्राप्त भावनात्मक सुरक्षा के लिए
(ग) आत्महत्या की उच्च दर के लिए
(घ) उपरोक्त सभी
उत्तर (ख) सामुदायिक जीवन के माध्यम से प्राप्त भावनात्मक सुरक्षा के लिए

प्र.21. समाजशास्त्रीय पद्धति के नियम किस वर्ष प्रकाशित हुए थे?
(क) 1895 (ख) 1795 (ग) 1869 (घ) 1879
उत्तर (क) 1895

प्र.22. एमिल दुर्खीम का जन्म वर्ष में हुआ था–
(क) 1868 (ख) 1857 (ग) 1856 (घ) 1858
उत्तर (घ) 1858

प्र.23. वर्ष में एमिल दुर्खीम की मृत्यु हो गई–
(क) 1916 (ख) 1918 (ग) 1917 (घ) 1919
उत्तर (ग) 1917

प्र.24. एमिल दुर्खीम के अनुसार धर्म की केन्द्रीय विशेषता थी–
(क) पवित्र-अपवित्र द्वन्द्व (ख) मौत के बाद जीवन
(ग) अत्यधिक अंधविश्वासी (घ) सभी प्रकार के भेदभाव का उन्मूलन
उत्तर (क) पवित्र-अपवित्र द्वन्द्व

प्र.25. दुर्खीम द्वारा किसी समाज की सांप्रदायिक मान्यताओं, नैतिकता और दृष्टिकोण को इंगित करने के लिए इस शब्द का उपयोग किया गया था–
(क) सामूहिक नैतिकता (ख) सामूहिक चेतना
(ग) सामूहिक व्यवहार (घ) सामूहिक विवेक
उत्तर (घ) सामूहिक विवेक

प्र.26. रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड की प्रसिद्ध कृति है–
(क) हर्बर्ट स्पेंसर (ख) अगस्टे कॉम्टे
(ग) टैल्कॉट पार्सन्स (घ) एमाइल दुर्खीम
उत्तर (घ) एमाइल दुर्खीम

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-IV

विल्फ्रेड परेटो
Vilfredo Pareto

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. विशिष्ट चालकों की कोई पाँच विशेषताएँ लिखिए।
Write any five characteristics of Residues.

उत्तर 1. विशिष्ट चालक अपने इच्छाकृत अधिक होते हैं।
2. विशिष्ट चालको में स्वत: भावना अथवा मूल प्रवृत्ति नहीं होती, बल्कि इनकी अभिव्यक्ति होती है।
3. विशिष्ट चालकों के मध्य तार्किक तत्त्व विद्यमान नहीं होते और न ही तार्किक आधार पर इनकी व्याख्या की जा सकती है।
4. विशिष्ट चालक उन भावनाओं के बीच मध्यस्थ हैं जिन्हें हम प्रत्यक्ष रूप से नहीं समझ सकते हैं और विश्वास प्रणाली तथा कार्य जिन्हें समझा और विश्लेषित किया जा सकता है। विशिष्ट चालक किसी कारण पर आधारित नहीं होते।
5. यह कमोबेश मानव व्यवहार के स्थायी प्रेरक हैं।

प्र.2. विशिष्ट चालक एवं भ्रान्त तर्क में अन्तर बताइए।
State the difference between Residues and Derivations.

उत्तर सामान्यत: दोनों विशिष्ट चालक एवं भ्रान्त तर्क परस्पर सम्बन्धित होते हैं परन्तु फिर भी दोनों में कुछ मुख्य अन्तर निम्नलिखित रूप में दिखायी देते है—

क्र०सं०	विशिष्ट चालक	भ्रान्त तर्क
1.	विशिष्ट चालक जहाँ मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाली बहुत कुछ स्थिर प्रेरणाएं हैं।	भ्रान्त तर्क अपनी प्रकृति से परिवर्तनशील, विविधतापूर्ण और अक्सर एक दूसरे के विरोधी होते हैं।
2.	यह विचारधाराओं को जन्म देते हैं।	यह विचारधाराओं के साथ-साथ चलते हैं।
3.	विशिष्ट चालक कम लचीले होते हैं।	विशिष्ट चालक की तुलना में भ्रान्त तर्क अधिक लचीले और परिवर्तनशील होते हैं।

प्र.3. भ्रान्त तर्क की कोई पाँच विशेषताएँ लिखिए।
Write the characteristics of derivations.

उत्तर 1. भ्रान्त तर्क विशिष्ट चालकों से जुड़े हैं। ये चालकों के प्रभाव में की जाने वाली क्रियाओं की व्याख्या करने का प्रयास करते हैं।
2. भ्रान्त तर्क अतार्किक क्रियाएँ एवं तथ्य हैं। इन्हें संवेगों और भावनाओं के आधार पर स्वीकार किया जाता है।
3. भ्रान्त तर्क के माध्यम से हम अपनी विचारधाराओं और कार्यों को नैतिकता, तर्क और विचारधाराओं के आधार पर औचित्य प्रदान करने का प्रयास करते हैं।
4. विशिष्ट चालक की तुलना में भ्रान्त तर्क अधिक लचीले और परिवर्तनशील होते हैं।
5. ये वास्तविकता को छिपाने की कोशिश है।

प्र.4. विल्फ्रेड परेटो का समाजशास्त्र में क्या योगदान है?
What is the contribution of Vilfredo Pareto to sociology?

उत्तर परेटो 1906 में इटली के आय वितरण के गणितीय अवलोकन के बाद विकसित किया था। वह पहले सामाजिक चक्र सिद्धांत, अभिजात वर्ग के संचलन के साथ-साथ अपने कल्याणकारी आर्थिक सिद्धांत परेटो दक्षता को विकसित करने के लिए भी प्रसिद्ध हैं।

TOUCH 'n PASS

प्र.5. परेटो का पद्धति शास्त्र क्या है?

What is Pareto's methodology?

उत्तर **परेटो के अनुसार** तार्किक क्रियाओं का आधार वैषयिक (Objective) जबकि अतार्किक क्रियाओं का आधार प्रातीतिक (Subjective) होता है। पैरेटो प्रत्येक व्यक्तिगत एवं सामाजिक क्रिया के दो आधार मानते हैं—लक्ष्य और साधन। प्रत्येक लक्ष्य की पूर्ति के लिए कुछ साधन अपनाये जाते हैं।

प्र.6. परेटो चार्ट का उद्देश्य क्या है?

What is the purpose of Pareto chart?

उत्तर परेटो चार्ट एक शक्तिशाली उपकरण है जो दर्शकों को यह समझने में मदद करता है कि कौन से कारक परिणामों को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। यह परेटो सिद्धांत पर आधारित है, जिसके अनुसार 80 प्रतिशत परिणाम 20 प्रतिशत कारणों से उत्पन्न होते हैं। चार्ट इस सिद्धांत को ग्राफ़िक रूप से प्रदर्शित करने में मदद करता है।

प्र.7. परेटो विश्लेषण की विशेषता क्या है?

What is the specialty of Pareto analysis?

उत्तर परेटो सिद्धांत, जिसे 80/20 नियम, महत्त्वपूर्ण कुछ का नियम और कारक विरलता के सिद्धांत के रूप में भी जाना जाता है, दर्शाता है कि 80% प्रभाव 20% कारणों से उत्पन्न होते हैं।

प्र.8. परेटो का सामाजिक परिवर्तन किससे संबंधित है?

What is Pareto's social change related to?

उत्तर पेरेटो के अनुसार सामाजिक परिवर्तन संयोजन के अवशेषों और समुच्चय के स्थायित्व के अवशेषों के कारण आता है। सामाजिक परिवर्तन का चक्र एक सतत प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को जारी रखने के लिए राजनीतिक, आर्थिक और वैचारिक कारक जिम्मेदार हैं।

प्र.9. समाज परिवर्तन का विरोध क्यों करता है?

Why does society resist change?

उत्तर लोग परिवर्तन का विरोध इसलिये करते हैं, क्योंकि ये उनकी वर्तमान स्थिति अनुकूलता और उनके वर्चस्व को प्रभावित करता है, वे अपनी उस वर्तमान स्थिति में ही जीना चाहते हैं, जो उनके हित में है। लोग परिवर्तन का विरोध इसलिए करते हैं, क्योंकि इससे उनका प्रभाव खत्म होने की आशंका उत्पन्न होती है।

प्र.10. परेटो विश्लेषण में कितने चरण होते हैं?

How many steps are there in Pareto analysis?

उत्तर पेरेटो विश्लेषण का उपयोग करके उन प्रमुख कारणों की पहचान करने के लिए यहाँ आठ चरण दिए गए हैं जिन पर आपको ध्यान केंद्रित करना चाहिए: एक्स-अक्ष पर कारणों के साथ एक लंबवत बार चार्ट बनाएं और वाई-अक्ष पर गणना (घटनाओं की संख्या) करें।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. परेटो के क्रिया सिद्धान्त का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

Explain the theory of Pareto in brief.

उत्तर

परेटो का क्रिया सिद्धान्त
(Action Theory of Pareto)

परिचय (Introduction)

समाज क्रिया सिद्धान्त मुख्यत: प्रकार्यात्मक सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त की रूपरेखा सर्वप्रथम विल्फ्रेड परेटो ने प्रारम्भ की। तत्पश्चात् मैक्सवेबर ने सामाजिक क्रिया सिद्धान्त को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया उसके बाद टालकॅट पारसंस ने 1937 में 'द स्ट्रकचर

TOUCH 'n' PASS

ऑफ सोशल एक्शन' प्रस्तुत किया। इन्होने सामाजिक क्रिया सिद्धान्त को विश्लेषणात्मक तरीके से विकसित किया। इसी सामाजिक क्रिया सिद्धान्त को आगे चलकर सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्त के रूप में जानते हैं। परेटो ने जब इस सिद्धान्त को प्रस्तुत किया तो उनके मस्तिष्क में अपने समकालीन और पूर्ववर्ती विचारकों द्वारा प्रस्तुत विधिशास्त्र विद्यमान था। परेटो ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं, इनमें 'द माइण्ड एण्ड सोसायटी (1935) के प्रत्येक चारों खण्ड महत्त्वपूर्ण हैं। उनके समय में सामान्य मान्यता यह थी, कि अर्थशास्त्र का कोई सिद्धान्त नहीं होता। परेटो ने राष्ट्रीय स्तर के अर्थशास्त्रियों की एक गोष्ठी में यह तर्क दिया कि किसी भी प्राकृतिक विज्ञान की भाँति अर्थशास्त्र में भी सिद्धान्त होता है। परेटो का सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त अर्थशास्त्री **अल्फ्रेड मार्शल** की भाँति था। मार्शल का मानना था, कि समाज का उद्विकास रेखीय होता है। परेटो ने इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया। उन्होनें चक्रीय उद्विकास का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। परेटो के मतानुसार समाज एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके मध्य एक संतुलन स्थापित रहता है। इस संतुलन का आशय है, कि प्रत्येक समाज में कुछ ऐसी शक्तियाँ मौजूद हैं, जो प्रत्येक समाज के ढांचे को बनाकर रखती हैं। यदि कुछ बाहरी शक्तियाँ उस समाज में परिवर्तन लाने के लिए प्रतिबद्ध है तो आन्तरिक शक्तियाँ उस संतुलन को बनाकर रखने के लिए बाहर की तरफ दबाव डालती हैं। ये आन्तरिक शक्तियाँ मुख्यत: समाज के संतुलन को बिगाड़ने वाली व्यवस्था के विरुद्ध दबाव डालने का कार्य करती हैं। समाज में पुन: संतुलन स्थापित करने के सिद्धान्त का प्रमाण इस बात से प्रकट होता है, कि यदि किसी भी समाज को किसी बड़ी क्रांति या युद्ध की स्थिति से गुजरना पड़ता है तो वह पुन: स्वयं को व्यवस्थित कर लेने में सक्षम होता है तथा स्वयं पुन: संतुलन स्थापित कर लेता है। परेटो की तर्कसंगत तथा अतर्कसंगत क्रिया समाज की आन्तरिक शक्तियों के विश्लेषण से सम्बन्ध रखती हैं।

प्र.2. अतार्किक क्रियाओं की भूमिका बताइए।
State the roles of non-logical action.

उत्तर

अतार्किक क्रियाओं की भूमिका
(Roles of Non-Logical Action)

परेटो का मत है कि प्रत्येक समय तर्क संगत क्रियाओं की अपेक्षा लगभग तर्कहीन अथवा अतार्किक क्रियाओं का अधिक महत्त्व रहा है। मानव स्वयं के समान जीवन में अनुमान व कल्पना से अत्यधिक काम लेता रहा है। इसका तात्पर्य है, कि अधिकांश क्रियाएँ तर्कहीन होती हैं, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति अथवा समाज स्वयं की तर्कहीन क्रियाओं को अनेक उपायों के आधार पर तर्कसंगत प्रमाणित करने की कोशिश करता है। अपने इस प्रयास में वह निम्न पद्धतियों का उपयोग करता है। जिसके माध्यम से तर्कहीन क्रियाओं की व्याख्या की जा सकती है। ये निम्न प्रकार हैं—

1. यह वैषयिक वास्तविकता से रहित होते हैं, ये विचार योग्य नहीं है। यह पूर्व निर्णय पर आधारित होते हैं। यह एक व्यक्ति के माध्यम से दूसरों से छल करने की चाल है।
2. यह सिद्धान्त या विधियाँ, जो कम तथा अधिक वैषयिक वास्तविकता से पूर्ण मानी जाती है। यह पूर्ण सत्य की तरह स्वीकार की जाती है। जो अन्य रूप से काल्पनिक होती है। इन सिद्धान्तों में ईश्वर तथा अपूर्व तथ्यों को मानवीकृत किया जाता है।
3. यह क्रियाएँ अप्रत्यक्ष आंशिक सत्य के तौर पर मानी जाती है। यह अपूर्व तथ्यों को मानवीकृत किया जाता हैं।
4. यह क्रियाएँ अप्रत्यक्ष आंशिक सत्य के तौर पर मानी जाती है। यह अपूर्व निरीक्षण पर निर्धारित होती है। जैसे–पौराणिक कथा का ऐतिहासिक तथ्य मानकर इसमें काल्पनिक तथ्यों का मिश्रण हो जाता है।
5. अतार्किक क्रियाओं के सिद्धान्त प्रतीक मात्र होते हैं।

इन तर्कहीन क्रियाओं को जानने के लिए परेटो ने विद्यमान समाज में प्रचलित निषेध का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इन निषेधों को प्रमाणित करने के लिए अलग–अलग युक्ति तथा तर्क प्रस्तुत किये जाते है। कभी तो इन्हें ईश्वर अथवा कभी देवता कहा जाता है। परन्तु यह व्याख्या अथवा तर्क अनुभव सिद्ध न होने की वजह से निषेध को तर्कसंगत क्रिया के रूप में सिद्ध नहीं कर सकते है। निषेध एक विशेष प्रकार की मानसिक स्थिति का परिणाम होती है। किसी विशेष क्रिया के लिए किसी समूह के मन में विरोध अथवा घृणा का संवेग उत्पन्न हो जाता है। इसका कोई यथार्थ उद्देश्य या प्रकट कारण नहीं होता, परन्तु इस क्रिया को निषेध के योग्य सिद्ध करने की कोशिश विभिन्न तरीकों के माध्यम से की जाती है।

TOUCH 'n PASS

प्र.3. तार्किक व अतार्किक क्रिया में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
Clarify the difference in logical and non-logical actions.

उत्तर

तार्किक एवं अतार्किक क्रिया में अन्तर
(Logical and Non-Logical Actions)

परेटो के तार्किक क्रिया एवं अतार्किक क्रिया में निम्नलिखित अन्तर है—

	तार्किक क्रियाएँ (Logical Actions)	अतार्किक क्रियाएँ (Non-Logical Actions)
1.	तर्कसंगत क्रियाएँ तर्क पर आधारित होती हैं।	इन क्रियाओं में तार्किकता का अभाव होता है।
2.	इसमें घटना को उसके वास्तविक रूप में देखा जाता है।	अतर्कसंगत क्रियाओं में मनुष्य किसी भी घटना का मूल्यांकन अपने दृष्टिकोण से करता है जो वास्तविक हो भी सकता है और नहीं भी।
3.	परेटो के अनुसार तार्किक क्रियाओं का आधार वैषयिक होता है।	परेटो के अनुसार, अतार्किक क्रिया का आधार प्रतीकात्मक होता है।
4.	तार्किक क्रियाएँ वस्तुनिष्ठ होती हैं।	अतार्किक क्रियाएँ व्यक्तिनिष्ठ होती है।
5.	अतार्किक क्रिया में लक्ष्य तथा साधन के मध्य समन्वय पाया जाता है।	अतार्किक क्रिया में लक्ष्य तथा साधन के मध्य समन्वय नहीं पाया जाता है।

प्र.4. विशिष्ट चालक पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
Write the short note on residues.

उत्तर

विशिष्ट चालक
(Residues)

मनुष्य की अतार्किक क्रियाओं को विश्लेषित करने के उपरान्त यह स्पष्ट होता है, कि मानव द्वारा स्वयं के व्यवहार को तर्कपूर्ण प्रमाणित करने की प्रक्रिया में सामान्यत: कुछ तत्त्व अधिक स्थिर प्रकृति के होते हैं। अन्य शब्दों में हम यह कह सकते हैं, कि मानव की अधिकांश क्रियाएँ कुछ ऐसे चालकों पर निर्भर होती है, जो अपेक्षाकृत अधिक स्थिर होते हैं। परेटो द्वारा इन्ही चालकों को विशिष्ट चालक कहा गया है। इनकी प्रकृति के बारे में परेटो ने बताया कि विशिष्ट चालक न तो मूलप्रवृतियाँ हैं, और न ही यह संवेग हैं, परन्तु इनकी प्रकृति बहुत कुछ संवेगों से मिलती-जुलती होती है। वास्तव में विशिष्ट चालक ऐसी प्रेरणाएं हैं, जो मानव मस्तिष्क में अधिक गहराई तक विद्यमान नहीं होती बल्कि वास्तविक रूप में व्यक्ति को उसके कथन और व्यवहार में एक सम्बन्ध जोड़ने का आधार प्रदान करती हैं। अत: विशिष्ट चालकों को संवेगो की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है। **परेटो के अनुसार,** विशिष्ट चालक मूलप्रवृत्तियों एवं संवेगों के घोषित स्वरूप हैं। इसी आधार पर मर्टिन्डेल लिखते हैं, 'विशिष्ट चालक तर्कहीन स्थिर तत्त्व हैं, जो संवेग न होने पर भी संवेगो को अभिव्यक्त करते हैं।' परेटो द्वारा संवेगो की अभिव्यक्ति के रूप में विशिष्ट चालकों की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए मानव की व्यावहारिक क्रियाओं तथा एक विवेकशील व्याख्या के अन्तर की चर्चा की गयी है।

मनुष्य की क्रियाओं की विवेकशील व्याख्या इस प्रकार की जाती है, कि मानव सर्वप्रथम विचार करता है, फिर यह विचार विकसित होते हैं और इन्ही विचारों द्वारा अन्त में सिद्धान्तों का निर्माण होता है। यह सिद्धान्त मानव क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। **परेटो के अनुसार,** व्यावहारिक रूप से स्थिति इसके विपरीत होती है। अर्थात् व्यक्ति कोई व्यवहार सबसे पहले कर लेता है, उसके उपरान्त सोंचता है तथा फिर किसी सिद्धान्त के सन्दर्भ में स्वयं के व्यवहार को उचित मान लेता है। अत: यह स्पष्ट है, कि सिद्धान्त और वास्तविक क्रिया के मध्य कार्य-कारण का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही होता। सिद्धान्त तथा क्रिया दोनों संवेगात्मक व्यवहारों के परिणाम हैं, जो समाज में सदैव से कुछ स्थिर प्रकारों से क्रियान्वित होते रहे हैं। अत: यह स्पष्ट है, कि व्यक्ति समाज में जिन चालकों तथा प्रेरणाओं के आधार पर अनेक क्रियाएँ करता है। वे चालक अधिक स्थिर प्रकृति के होते हैं। परेटो के शब्दों में 'विशिष्ट चालक समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए विश्लेषण की एक आधारभूत अवधारणा है, जबकि संवेगों का विश्लेषण विशुद्ध मनोविज्ञान से सम्बन्धित है।' मानव व्यवहार को निर्धारित करने में प्रेरणाओं का बहुत सहयोग होता है। परेटो का विशिष्ट चालक विशिष्ट प्रकार की प्रेरणाएँ हैं। ये विशिष्ट चालक प्रेरणाओं की तुलना में अत्यधिक स्थिर होते हैं और कारण मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित व संचालित करने में इनका पर्याप्त सहयोग होता है। विशिष्ट चालक मूल प्रवृत्तियों और भावनाओं की अभिव्यक्ति है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.5. भ्रान्त तर्क की प्रकृति एवं विशिष्ट चालक और भ्रान्त तर्क की आलोचना का उल्लेख कीजिए।
Explain the nature of derivations and criticisms of residues and derivations.

उत्तर

भ्रान्त तर्क की प्रकृति
(Nature of Derivations)

भ्रान्त तर्क की दो प्रमुख विशेषताओं के आधार पर उसकी प्रकृति को समझ सकते हैं। भ्रान्त तर्क की पहली विशेषता यह है कि ये विशिष्ट चालकों से जुड़े हैं, तथा दूसरा यह है कि ये तथ्य अतार्किक हैं। अगर हम प्रश्न करें कि ऐसा किस कारण से है कि व्यक्ति सर्वप्रथम कार्य करता है, और बाद में इससे सम्बन्धित तर्क ढूढ़ता है। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है, कि अवश्य ही कुछ ऐसे विशिष्ट चालक होते हैं जो व्यक्ति को कुछ विशेष संवेगों तथा भावनाओं के अनुसार व्यवहार करने को प्रेरित करते हैं। इसके उपरान्त व्यक्ति स्वयं के व्यवहार की उपयोगिता को सिद्ध करना चाहता है। यह औचित्य तभी सिद्ध हो सकता है, जब व्यक्ति स्वयं के व्यवहार की तुलना समाज द्वारा मान्यता प्राप्त कुछ अन्य व्यवहारों अथवा सिद्धान्तों से करता है। इसी कारण से व्यक्ति विभिन्न श्रेणियों के विशिष्ट चालकों से सम्बन्धित विशेषताओं को ही आधारभूत तर्क मान लेता है। विशिष्ट चालक स्वयं ही अतार्किक होते हैं। अत: इन पर आधारित तर्क भी अतार्किक सिद्ध हो जाते है। इस प्रकार विशिष्ट चालकों तथा भ्रान्त तर्कों के मध्य एक गहरा सम्बन्ध है।

विशिष्ट चालक एवं भ्रान्त तर्क की आलोचना
(Criticisms of Residues and Derivations)

विशिष्ट चालक एवं भ्रान्त तर्क विभिन्न आलोचनाओं के अधीन हैं—

1. बोगार्डस के अनुसार विशिष्ट चालक का वर्गीकरण स्पष्ट नही है। यह और कुछ नहीं बल्कि सहजवृत्ति और भावनाओं को दिया गया दूसरा नाम है।
2. परेटो ने विशिष्ट चालकों की प्रकृति और विभिन्न चालकों के बीच मौजूद संबंधों को भी बहुत स्पष्ट रूप से नहीं समझाया है।
3. विशिष्ट चालक और भ्रान्त तर्क सभी परिस्थितियों में न्यायोचित नहीं हैं। बोगार्डस के अनुसार, भ्रान्त तर्क 7वां विशिष्ट चालक है। इसे सुरक्षित रूप से 'औचित्य का विशिष्ट चालक' कहा जा सकता है।
4. सोरोकिन के अनुसार, भ्रान्त तर्क एक प्रकार का मौसमी पंछी है जो हवा की दिशा के अनुसार बदल जाता है।
5. कभी-कभी विशिष्ट चालक और भ्रान्त तर्क की अवधारणाएँ गलत धारणाओं को जन्म देती हैं।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. विल्फ्रेड परेटो के जीवन का परिचय देते हुए उनकी कृतियों व समाजशास्त्र में उनके योगदान पर प्रकाश डालिए।
Giving a life sketch of Vilfredo Pareto, throw light on his works and his contribution to sociology.

उत्तर

जीवन परिचय
(Life Sketch)

विल्फ्रेड परेटो का जन्म सन् 1848 ई. को पेरिस में हुआ था। इनका पूरा नाम **मार्क्स विल्फ्रेडो फेडोरिको डुमस परेटो** था। परेटो का दृष्टिकोण उनके समकालीन समाजशास्त्रियों से अलग था। उनके विचार वैज्ञानिक तथा आनुभाविक थे। इनके पिता इटालियन थे तथा माता फ्रांसीसी थीं। उनकी दो बहनें थीं। परेटो ने सिविल इंजीनियरिंग की शिक्षा ट्यूरिन के पॉलिटेक्निकल स्कूल से प्राप्त की थी। उन्होंने जीवन में अपने पिता का अनुसरण किया और वो गणतंत्रीय, लोकतंत्रीय एवं शांतिवादी विचारधारा के समर्थक हो गये, परन्तु कुछ समय बाद उन्होंने राजनीतिक एवं व्यक्तिगत कारणों से इन विचारों का परित्याग कर दिया। उसके उपरान्त मानवतावादी, प्रगतिशील लोकतंत्रीय मूल्यों के प्रति निंदात्मक व्यवहार अपना लिया। परेटो इटली के एक उच्च अभिजात वर्ग के थे।

उन्होंने सन् 1889 में एलेजेंड्रीना बाकुनिन नामक रूसी युवती से विवाह किया तथा फ्लोरेंस छोड़ कर फीसोल के एक गांव में रहने लगे। वहाँ इन्होंने अर्थशास्त्र के अध्ययन की शुरुआत की। स्वतंत्र व्यापार से संबंधित विवाद जो उस समय चल रहा था, में उलझ जाने के कारण उनकी अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के अध्ययन में रुचि पैदा हो गई। अर्थशास्त्र का अध्ययन करते समय उन्होंने यह

TOUCH 'n PASS

अनुभव किया कि उस समय अर्थशास्त्र का चिंतन भौतिक विज्ञान की तुलना में अवैज्ञानिक था। अत: उसने नवीन अर्थशास्त्र के अध्ययन की तरफ अपना ध्यान केन्द्रित किया। जो सुनिश्चित रूप से वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित था और आर्थिक क्षेत्र में कार्य करने के लिए उपयुक्त और विश्वसनीय मार्गदर्शक का कार्य कर सकता था। 1893 तक अर्थशास्त्र में उन्हें पर्याप्त मान्यता मिल गई थी, अत: उन्हें लुसाने (Lausanne) विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर पद हेतु आमंत्रित किया गया। जीवन के अन्तिम दिनों में वह हृदय रोग से पीड़ित हो गए। 19 अगस्त 1923 को 75 वर्ष की आयु में परेटो की मृत्यु हो गई। लोग परेटो को अवैज्ञानिक न कहें, इसलिए उन्होंने कहा कि समाजशास्त्र को तर्कसंगत परीक्षणात्मक पद्धति का अनुप्रयोग करना चाहिए। इस पद्धति से उनका अभिप्राय उसे अनुभव द्वारा देखने से था। परेटो ने अपने शोध के निबंधों में यह स्पष्ट किया था, कि वे सामाजिक विज्ञान के अध्ययन में उन्ही पद्धतियों का प्रयोग करके सामाजिक वास्तविकता का अध्ययन करना चाहते हैं, जिनका उपयोग प्राकृतिक विज्ञानों जैसे—भौतिकी, रसायन, खगोल विज्ञान आदि के लिए किया जाता है। प्राकृतिक विज्ञानों के सिद्धान्तों के आधार पर परेटो का यह विश्वास था, कि सामाजिक व्यवस्था एक संतुलन की व्यवस्था है। इसके किसी एक भाग में अव्यवस्था होने पर सामंजस्य हेतु उसके अन्य भागों में परिवर्तन उसी रूप में होता है। सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तियों की रुचियाँ, प्रेरणाएँ और भावनाएँ भौतिक पदार्थों में विद्यमान अणुओं की भाँति होती हैं। उनके अनुसार सामाजिक व्यवस्था वह ढाँचा है जिसमें मनुष्य के व्यवहार को निर्धारित करने के लिए समाज के प्रवृत्तियों में आपसी प्रभाव और बदलाव का विश्लेषण किया जा सकता है, परन्तु परेटो सभी प्रवृत्तियों में रुचि नहीं लेते थे। वह सिर्फ उन प्रवृत्तियों का अध्ययन करना चाहते थे, जो युक्तिसंगत नहीं थीं। उनके द्वारा किए गए अध्ययन में यह बात स्पष्ट हो गई थी कि अर्थशास्त्रियों द्वारा मानव क्रियाओं के युक्तिसंगत प्रवृत्तियों का अध्ययन मानव व्यवहार के सम्पूर्ण क्षेत्र को अपनी परिधि में नहीं समेट सकता। उसके अनुसार कई मानव व्यवहार ऐसे भी हैं, जो युक्तिसंगत और तर्कसंगत नहीं होते।

विल्फ्रेड परेटो की मुख्य कृतियाँ (Main Works of Vilfredo Pareto)

विल्फ्रेड परेटो की मुख्य कृतियाँ निम्नांकित हैं—

1. द कोर्स ऑफ इकोनोमिक पॉलिटिकल (The Course of Economic Political, 1896)
2. लेस सिस्टम सोशियलिस्ट (Less System Socialist, 1902)
3. द सोशलिस्ट सिस्टम (The Socialist System, 1902)
4. मैनुअल दि इकोनोमिया पोलिटिकल (Manual the Economia Political, 1906) तथा इसका फ्रेंच रूपान्तरण 1909 में प्रकाशित हुआ।
5. मैनुअल ऑफ इकोनॉमिक पॉलिटिक्स (Manual of Economic Politics, 1906)
6. ट्रेटेटो दि सोशियोलॉजिया जेनरेल (Treatto the Sociologia generale, 1907-1912) अंग्रेजी भाषाविद् इसे 'ट्रीटीज ऑन जनरल सोशियोलॉजी' (Treatise on General Sociology, 1916) के नाम से जानते हैं। ट्रीटीज का अंग्रेजी रूपान्तर 'मस्तिष्क एवं समाज' (Mind and Society, 1935) नाम से प्रकाशित हुई।
7. ट्रांसफार्मेजिन दि ला डिमार्जिया (Transformagin the La Dimargia, 1921)।

समाजशास्त्र : एक तार्किक प्रयोगात्मक विज्ञान (Sociology : A Logico Experimental Science)

परेटो के वैज्ञानिक अध्ययन का प्रयास उन साधनों को ज्ञात करना था जिसकी सहायता से उन अतार्किक आधारों की तार्किक दृष्टिकोण से विवेचना की जा सके जिससे मानव व्यवहार प्रभावित होता है। मानव व्यवहारों की विवेचना आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर करने वाले वेबलिन तथा अन्य विद्वानों से असहमति जताते हुए परेटो ने मत दिया कि, समाजशास्त्रीय अवधारणाओं के आधार पर आर्थिक सिद्धान्तों की विवेचना होनी चाहिए। इनके इस दृष्टिकोण द्वारा मानव व्यवहार से सम्बन्धित उन विशेषताओं को सही ढंग से समझा जा सकता है, जिनकी विवेचना करने में सिद्ध हो चुके आर्थिक विश्लेषण और अन्य अमूर्त सिद्धान्तों का प्रयोग हो। परेटो के अनुसार, ऐसी तार्किकता के आधार पर समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों का विकास होना चाहिए जो आर्थिक और राजनैतिक चिन्तन को सही दिशा प्रदान कर सके। समाजशास्त्र के रूप को स्पष्ट करते हुए परेटो ने लिखा है कि समाजशास्त्र वह सामाजिक विज्ञान है जिसका मुख्य कार्य व्यक्तियों की अतार्किक क्रियाओं का विश्लेषण करने के लिए एक तार्किक प्रयोगात्मक आधार प्राप्त करना है। परेटो के समाजशास्त्र को अनेक विद्वानों ने इसी कारण से 'मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्र' (Psychological Sociology) का नाम दिया है। परेटो ने मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का कुछ सीमा तक समावेश करके समाजशास्त्रीय चिन्तन को एक नया स्वरूप देने

का प्रयत्न किया, लेकिन मूल रूप से उनके समाजशास्त्र को 'समन्वयात्मक समाजशास्त्र' (Coordinating Sociology) ही कहा जाता है। इसके द्वारा मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाले उन आधारों को समझा जा सकता है, जिसका अध्ययन अन्य सामाजिक विज्ञानों द्वारा नहीं किया जा सकता है। इसलिए यह विज्ञान की दृष्टि से समन्वयात्मक (Coordinating) है। इस प्रकार परेटो एक ऐसे विज्ञान को विकसित करना चाहते थे जो कि समाजशास्त्र के रूप में ऐसे तार्किक सिद्धान्तों का विकास कर सके जिनका आधार विभिन्न प्रकार की सामाजिक घटनाएँ हों। परेटो ने अपने समाजशास्त्र को 'तार्किक प्रयोगात्मक विज्ञान' (Logical Experimental Science) नाम दिया क्योंकि इसे तार्किक प्रयोगात्मक पद्धति की सहायता से एक विज्ञान के रूप में विकसित किया जा सकता है।

परेटो वैज्ञानिक पद्धति द्वारा समाजशास्त्र को विज्ञान के रूप में विकसित करना चाहते थे। परेटो से पूर्व अन्य वैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों ने भौतिक विज्ञान की पद्धति के आधार पर समाजशास्त्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने का सुझाव दिया। परेटो चूँकि विज्ञान स्नातक थे, इसलिए उन्होंने अपनी पुस्तक 'ट्रीटीज ऑन जनरल सोशियोलॉजी' में काम्ट, स्पेन्सर आदि विद्वानों द्वारा वैज्ञानिक पद्धतियों को 'झूठे विज्ञानवाद' की संज्ञा दी है तथा उन पद्धतियों का भी विरोध किया है। **परेटो के अनुसार**, वे पद्धतियाँ जिनकी सहायता से भौतिक विज्ञान की विषयवस्तु का अध्ययन किया जाता है, उन पद्धतियों के प्रयोग से समाजशास्त्र का अध्ययन करना उपयुक्त नहीं है। वैज्ञानिक समाजशास्त्र के पद्धति का आधार निरीक्षण, वस्तुनिष्ठ अनुभवों के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष होने चाहिए।

परेटो ने इस अध्ययन पद्धति को 'तार्किक प्रयोगात्मक पद्धति' नाम दिया। इस पद्धति के अनुसार समाजशास्त्र से सम्बन्धित अध्ययन का आधार अवलोकन और परीक्षण होना चाहिए। परेटो ने एक इटैलियन शब्द 'एक्सपेरिएन्जा' प्रयोग किया है, जिसका शाब्दिक अर्थ अवलोकन तथा आवश्यकता होने पर उसके नियन्त्रित अवलोकन से है और इसकी सहायता से प्राप्त परिणामों को तार्किक रूप से प्रमाणित किया जा सकता है।

अत: अवलोकन पर आधारित प्रयोगों को महत्त्व देने वाली पद्धति तथा उनसे प्राप्त परिणाम को तर्क के माध्यम से सिद्ध करने की क्षमता रखने वाली पद्धति को **तार्किक-प्रयोगात्मक पद्धति** कहते हैं। प्राकृतिक विज्ञानों के प्रयोगात्मक होने का कारण इनसे सम्बन्धित अवधारणाओं का विकास प्रयोगों द्वारा होना है। इसके विपरीत समाजशास्त्रीय अध्ययनों के लिए नियन्त्रित अवलोकन को ही पूरक माना जाता है। इस आधार पर कहा जा सकता हैं, कि तार्किक प्रयोगात्मक पद्धति समाज के लिए ऐसी पद्धति है, जिसके द्वारा प्रयोगसिद्ध समानताओं अथवा विभिन्न लक्ष्यों के बीच रहने वाले नियमित सम्बन्धों को ज्ञात किया जा सके। अनुभवों के आधार पर विभिन्न सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करके निरीक्षण और प्रयोग द्वारा तथ्यों का परीक्षण करके समाजशास्त्र को विज्ञान के रूप में विकसित किया जा सकता है। विज्ञान का उद्देश्य लोगों की भावना को संतुष्ट करना नहीं अपितु यथार्थ नियमों को प्रस्तुत करना है, इसलिए हो सकता है कि इस विधि द्वारा समाजशास्त्र का अध्ययन करने पर प्राप्त परिणाम, सामान्य धारा के विपरीत हो। क्योंकि निरीक्षण एवं प्रयोग एक वैज्ञानिक पद्धति के गुण हैं।

प्रयोगात्मक पद्धति की विशेषताएँ (Characteristics of the Experiment Method)

1. **तथ्यात्मकता** (Emperical)—अवलोकन अथवा परीक्षण से प्राप्त होने वाले तत्त्व यथार्थ तत्त्व कहलाते हैं। इनकी सत्यता को तार्किक रूप से प्रमाणित किया जाता है। परेटो के अनुसार, 'तार्किक प्रयोगात्मक पद्धति का सम्बन्ध केवल यथार्थ तथ्यों को प्रस्तुत करने से है। जो तथ्य परीक्षण, अवलोकन तथा तार्किकता की परिधि से बाहर हैं, उन तथ्यों का अध्ययन नहीं किया जा सकता है।'
2. **भावना-हीनता** (Non-Ethical)—अवलोकन अथवा परीक्षण से प्राप्त तत्त्वों की व्याख्या तर्क के आधार पर की जाती है, भावना के आधार पर नहीं। इसलिए प्रयोगात्मक पद्धति में व्यक्तिगत भावनाओं अथवा संवेगों का स्थान नहीं है। परेटो के अनुसार, इस पद्धति में अवलोकन अथवा निरीक्षण की प्रधानता होने के कारण हो सकता है कि विभिन्न तर्क अध्ययनकर्त्ता की अपनी व्यक्तिगत भावनाओं के आधार पर प्रस्तुत किए गए हों। अत: अध्ययनकर्त्ता को इस प्रकार के दोषों से बचना चाहिए।
3. **सरलता** (Simplicity)—परेटो के अनुसार इस पद्धति के द्वारा प्राप्त परिणाम की विवेचना सरल ढंग से करनी चाहिए। सरलता का सीधा सम्बन्ध क्रमबद्धता, विचारों की स्पष्टता तथा सारयुक्त प्रस्तुतीकरण से है।
4. **अज्ञात तथ्यों का अध्ययन** (Study of Unknown Facts)—वर्तमान तथ्यों की विवेचना अतीत के आधार पर करने की अपेक्षा से अधिक अच्छा तरीका यह है कि अतीत की व्याख्या वर्तमान स्थिति के आधार पर की जाए। परेटो के

TOUCH 'n PASS

अनुसार, 'प्रयोगात्मक पद्धति द्वारा वर्तमान समाज के ज्ञात तथ्यों को समझकर हम अतीत के अज्ञात तथ्यों को भी समझ सकते हैं।'

5. **निर्भर योग्य कारकों की खोज** (Search of Dependable Factors)—परेटो के अनुसार, 'सामाजिक घटना किसी एक कारक का परिणाम नहीं है। समाज की प्रत्येक घटना का सम्बन्ध दूसरी घटनाओं से होता है।' परेटो सुझाव देते हैं, कि नियन्त्रित अवलोकन द्वारा किए जाने वाले प्रयोगों से ही निर्भर योग्य कारकों की खोज की जा सकती है।
6. **गणनात्मक विश्लेषण** (Quantitative Analysis)—परेटो प्रारम्भ से ही गणित को विज्ञान की भाषा मानते रहे थे। अपने इसी दृष्टिकोण के कारण तार्किक प्रयोगात्मक पद्धति के अन्तर्गत गणित के प्रयोग को आवश्यक माना है। परेटो ने इस पद्धति के अन्तर्गत सामाजिक तथ्यों के गणनात्मक अथवा सांख्यिकीय विश्लेषण को अधिक महत्त्व दिया है। परेटो के अनुसार, समाजशास्त्र को वैज्ञानिक बनाने का आधार प्रयोगात्मक पद्धति होती है।

परेटो का समाजशास्त्र में योगदान (Pareto's Contribution to Sociology)

परेटो के समाजशास्त्रीय सिद्धांतो का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह उन विज्ञानियों में से एक थे, जिन्होने सामाजिक व्यवस्था के विचार की उचित परिभाषा दी थी, कि समाजिक व्यवस्था का विश्लेषण उसके भागों की बीच परस्पर संबंध और परस्पर अधीन क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता है। उनका **अभिजात वर्ग** और **अभिजन परिभ्रमण का सिद्धान्त** अभिजात वर्ग के अध्ययन में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान में यह राजनीति विज्ञानियों तथा समाजशास्त्रियों के लिए प्रेरणादायक बना हुआ है। वर्तमान में भी शासकीय तथा गैर-शासकीय वर्ग के उच्च स्तर के व्यक्तियों की कार्य पद्धति के परीक्षण में इन्हीं विचारधाराओं का प्रयोग किया जाता है। परेटो ने दुर्खीम की भाँति सामाजिक पद्धति की आवश्यकताओं पर मंथन करने की आवश्यकता पर बल दिया तथा व्यावहारिक तथा व्यक्तिवादी विचारों को मान्यता नहीं दी। दुर्खीम द्वारा सामाजिक तथ्यों की वस्तुनिष्ठ प्रकृति पर जोर दिया गया है। इसके विपरीत परेटो द्वारा मनुष्य व्यवहार की इच्छाओं, भावनाओं और उसकी प्रवृत्तियों पर भी विचार करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। उनकी रचनाओं में मैक्स वेबर, दुर्खीम आदि विचारकों का प्रभाव दिखाई देता है। परेटो के विचारधारा का प्रभाव हैराल्ड लासवैस जैसे राजनीति विज्ञानियों की रचनाओं में देखा जा सकता है। लासवैल, परेटो के प्रारंभिक अनुयायियों में से एक था। लासवैल ने परेटो के अभिजात वर्ग गठन तथा अभिजन परिभ्रमण से सम्बन्धित सिद्धान्तो से प्रेरणा ली थी। अनेक विचारको जैसे—सी. राइट मिल्स, टी.बी. बोटोमोर, सुजान, किलर, आदि अन्य समाज वैज्ञानिकों की रचनाओं में परेटो के विचारों का प्रभाव परिलक्षित होता है। परेटो ने समाजशास्त्र की वैज्ञानिक आवधारणा में प्रमुख चार धारणाओं को शामिल किया है, जिसको व्यवस्था के आन्तरिक तत्व के रूप में समझा जाता है। परेटो ने इन चार प्रमुख धारणाओं को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है।

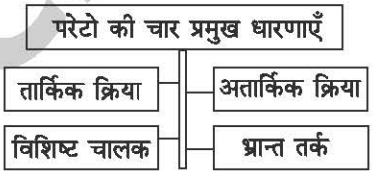

प्र.2. परेटो के सामाजिक क्रिया के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
Describe the types of social action of Pareto.

उत्तर

सामाजिक क्रिया के प्रकार (Types of Social Action)

परेटो ने अपने सामाजिक क्रिया की अवधारणा में दो प्रकार की क्रियाओं का उल्लेख किया है।

तार्किक क्रिया (Logical Action)

परेटो के अनुसार तार्किक क्रियाओं का आधार **वैषयिक** (Objective) होता है। यह वस्तुनिष्ठ होती है। वे क्रियाएँ जो कि तर्कपूर्ण रीति साधन को लक्ष्य के साथ सम्बद्ध करती है, तथा कर्त्ता के साथ अन्य व्यक्ति जो उस विषय के विशेषज्ञ होते है, उनकी दृष्टि से भी तर्कपूर्ण हों। परेटो प्रत्येक व्यक्तिगत तथा सामाजिक क्रिया के मुख्यत: दो आधार मानते हैं—लक्ष्य तथा साधन। प्रत्येक लक्ष्य की पूर्ति में कुछ साधन प्रयोग किये जाते हैं। इस तार्किक क्रिया में कर्त्ता लक्ष्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से ऐसे साधनों का प्रयोग करता है, जो अनुभव सिद्ध तथा तर्क की कसौटी पर खरे उतरते हों। इन तार्किक क्रियाओं में लक्ष्य तथा साधन के मध्य समन्वय

पाया जाता है। अत: इन तार्किक कार्यों को ही **वैषयिक** कार्य कहते हैं। वैषयिक पक्ष के अनुसार यह घटना जैसी होती है, उसी रूप में समझी जाती है। इसे यथार्थ अथवा वास्तविक घटना भी कहा जाता है। यह उस घटना का वैषयिक पक्ष कहलाता है। इस वैषयिक पक्ष को समझने का आधार व्यक्ति का स्वयं का ज्ञान होता है। अवलोकन, परीक्षण तथा तटस्थता से इनकी सत्यता का प्रमाण किया जा सकता है। परेटो के अनुसार अर्थशास्त्र में जो भी सिद्धान्त होते हैं। वह सभी तार्किक क्रिया की श्रेणी में आते हैं, तथ्यों के अन्दर कुछ ऐसे चर (Variables) और तत्व होते हैं, जिन्हे आर्थिक सिद्धान्त अमूर्त रूप में विद्यमान रखता है, यही उनके लिये तार्किक क्रिया (Logical Action) है। परेटो के मतानुसार, किसी भी विशुद्ध विज्ञान के लिए यह जरूरी है, कि व्यक्ति किसी घटना के प्रति अपने मस्तिष्क में जो भी विचार करता है, व सामान्य सोच के अनुसार यदि बैठ जाता है, तो यह तार्किक क्रिया है। उदाहरण स्वरूप यदि कोई व्यक्ति यह विचार रखता है, कि साइनाइड खाने से तुरन्त मृत्यु हो जाती है और वास्तविकता भी यही है, कि यह विचार सत्य है तो यह वैज्ञानिक अवलोकन है। इसी को परेटो तार्किक क्रिया कहते हैं। इसे परिभाषित करते हुए वह लिखते हैं, तार्किक क्रियाएँ वे हैं जिनमें वस्तुपरकता और व्यक्तिपरकता एक साथ होती हैं।

एक अन्य स्थान पर परेटो ने तार्किक क्रिया को परिभाषित करते हुए वस्तुपरकता व व्यक्तिपरकता के मध्य भेद को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार व्यक्ति स्वयं के उद्देश्य की दृष्टि से अपने लक्ष्य को निर्धारित करता है। यह लक्ष्य उसके लिए वस्तुपरक है।

उससे सामाजिक प्रघटना के प्रति पहले से ही अपने मस्तिष्क में एक सुनिश्चित विचारधारा बना रखी है। इसके उपरान्त इस व्यक्तिपरक सोच के द्वारा वह समझता है, कि जो भी उपाय उसके द्वारा किया जा रहा है, वह वस्तुपरक है। अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति में वह कुछ साधनों को प्रयोग में लेता है। **उदाहरणस्वरूप**, व्यक्ति ऐसा विचार करता है, कि वह जीवन में डॉक्टर बनने के लिए कोचिंग कक्षाओं में जाता है, पुस्तकालय में बैठता है। अत: वह सब क्रियाएँ साधन हैं, जिनके माध्यम से वह वस्तुपरक लक्ष्यों यानि डॉक्टर बनने के उद्देश्य को प्राप्त करना चाहता है।

अन्य शब्दों में व्यक्तिपरकता के माध्यम से निर्धारित वस्तुपरक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वह यह कदम उठाता है। अत: इस तरह का उसका प्रयास तब उचित होगा जब तक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सही है। अत: इस परिभाषा में परेटो द्वारा व्यक्तिपरक तथा वस्तुपरक दोनों के अनुरूप बनाने के लिए तार्किक सम्बन्धों पर बल दिया है। डॉक्टर बनने हेतु व्यक्ति जिन साधनों को उपयोग में लेता है, यदि वे साधन तार्किक रूप से डॉक्टर बनने के लक्ष्य के अनुरूप है, तो यह क्रिया तार्किक मानी जाएगी। दूसरी परिभाषा में परेटो ने तार्किक क्रिया के लिए एक और दिशा जोड़ दी है। प्रारम्भिक परिभाषा में उन्होंने तार्किक क्रिया को एक क्रिया माना। इसमें व्यक्तिपरक साधन और वस्तुपरक साधन एक साथ विद्यमान हैं। इसको सूत्र के रूप में इस प्रकार समझ सकते हैं—

तार्किक क्रिया = व्यक्तिपरकता + वस्तुपरकता

(Logical Action) = (Subjectivity + Objectivity)

दूसरी परिभाषा में परेटो ने वस्तुपरकता और व्यक्तिपरकता में तार्किक आधार को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। उनका विचार है, कि लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधन जितने सही व उचित होंगे, उसी अनुपात में लक्ष्य प्राप्ति होगी। इस परिभाषा में महत्त्वपूर्ण दशा तर्क संगति (Logicality) है। इसे निम्न प्रकार से सूत्र रूप में रखा जा सकता है

तार्किक क्रिया = व्यक्तिपरकता + वस्तुपरकता + तर्क संगति

(Logical Action) = (Subjectivity + Objectivity + Logicality)

तर्कसंगत क्रियाएँ वे मानवीय क्रियाएँ हैं, जो साधन और साध्य में समायोजन स्थापित करती हैं। तर्कसंगत क्रियाओं का आधार प्राय: वस्तुनिष्ठ होता है, इसका आशय घटना को उसके वास्तविक स्वरूप में देखने से है। तर्कसंगत क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अतर्कसंगत क्रियाओं का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है।

अतार्किक क्रिया (Non-Logical Action)

अतार्किक क्रियाएँ वे क्रियाएँ है जो एक विशिष्ट मानसिक अवस्था से उत्पन्न होती हैं और उस क्रिया को करने वाला उसके पक्ष में अनेक युक्तियां पेश करता है। अतार्किक क्रिया में लक्ष्य तथा साधन के मध्य समन्वय नहीं पाया जाता है और न ही उन्हें तर्क के आधार पर प्रमाणित कर सकते हैं। अतार्किक क्रियाएँ व्यक्तिपरक (Subjective) होती है, उनमें भावना का तत्व विद्यमान होता है। इन्ही व्यक्तिपरक क्रियाओं को **प्रातीतिक पक्ष** भी कहते हैं। कभी-कभी क्रिया करने वाला व्यक्ति अपनी बुद्धि, कल्पना तथा अनुभव द्वारा किसी क्रिया के स्वरूप को अपने मस्तिष्क में विद्यमान रखकर उसके अनुसार कार्य करने लगता है। इसी स्वरूप को विद्वानों ने **प्रातीतिक पक्ष** नाम दिया है। प्रातातिक पक्ष के सम्बन्ध में पारसन्स का मत है कि, 'प्रातातिक लक्ष्य स्पष्ट रूप से वह प्रत्याशित अवस्था है जिसको कर्त्ता स्वयं आन्तरिक रूप से चाहता है, और अपनी क्रिया का उद्देश्य मानता है।'

अतार्किक क्रियाएँ अनुमान तथा कल्पना पर आधारित होती है, उनमें लक्ष्य तथा साधन का सामंजस्य नहीं होता है। यह क्रिया व्यक्तिनिष्ठ मानी जाती है। परेटो की व्याख्या में तार्किक क्रिया वह है जिसमें वस्तुपरक दोनों उद्देश्य समान हो जाए तथा इनके मध्य सम्बन्ध भी तर्कपूर्ण होने चाहिए। एवं व्यक्तिपरक वास्तविक रूप से समाजशास्त्र की परिभाषा को परेटो अतार्किक क्रिया द्वारा समझाते हैं। इसको उन्होंने सकारात्मक रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार अतार्किक क्रिया वह है जो तार्किक नहीं हो। सम्पूर्ण क्रिया में से यदि तार्किक क्रिया को निकाल दिया जाए, तो जो शेष बचेगा वह अतार्किक क्रिया होगी। परेटो ने तार्किक क्रियाओं को बहुत स्पष्ट और सुदृढ़ आधार पर रखा है। यह क्रियाएँ तर्क पर आधारित होती है, परन्तु जब वह अतार्किक क्रियाओं को परिभाषित करते हैं तो वह यह बताते है कि मनुष्य की जो भी मानसिक दशा होती है जैसे—संवेगात्मक, भावात्मक, हर्ष, क्रोध यह सभी अतार्किक क्रियाओं का अध्ययन मनोविज्ञान के क्षेत्र में आता है। अत: परेटो की दृष्टि में यह मानकर चलना चाहिए कि अतार्किक क्रिया का अध्ययन चाहे मनोविज्ञान ही क्यों न करता हो, समाजशास्त्रीय है। अतर्कसंगत क्रियाएँ वे मानवीय क्रियाएँ हैं, जिसमें साधन और साध्य के मध्य तार्किक सामंजस्य का अभाव विद्यमान रहता है। अतर्कसंगत क्रियाओं का आधार व्यक्तिनिष्ठ होता है। अत: व्यक्ति किसी भी घटना का मूल्यांकन अपने दृष्टिकोण से करता है, जो वास्तविक भी हो सकता है और नहीं भी। मनुष्य की क्रियाएँ तार्किक एवं अतार्किक दोनो ही हो सकती है। इन क्रियाओं के सम्बन्ध में मानव के समक्ष निम्नलिखित तीन प्रकार की समस्याएँ आती है।

1. व्यक्ति के जो निर्धारित लक्ष्य होते हैं, वह व्यक्तिगत तथा सामाजिक किसी भी प्रकार के हो सकते हैं। लक्ष्यों के विषय में ज्ञान का अभाव होने पर साधन को तार्किक एवं अतार्किक समझना एक दुष्कर कार्य है।
2. यदि लक्ष्य का सम्बन्ध पारलौकिक हो तब यह जानना और भी दुष्कर कार्य होता है कि लक्ष्य व साधन के मध्य उचित सम्बन्ध विद्यमान है, अथवा नहीं।
3. एक कार्य जो एक के लिए उचित है, वही कार्य दूसरे के लिए अनुचित भी हो सकता है अत: उचित व अनुचित कार्यों का पता लगाना भी एक दुष्कर कार्य है।

इन समस्याओं के कारण ही मानव समाज में अतार्किक क्रियाओं की प्रमुखता रही है तथा समाज का अस्तित्व भी इन्हीं पर निर्भर करता है। मनुष्य द्वारा अतार्किक क्रियाएँ क्यों की जाती हैं परेटो ने इसके कुछ कारण बताए हैं, जो निम्न प्रकार से है—

1. मूल प्रवृत्तियाँ (Basic Instincts),
2. चालक (Driver),
3. स्वार्थ (Selfishness),
4. मनोभाव (Attitude), तथा
5. भ्रान्त तर्क (Derivatives) आदि।

परन्तु परेटो इन सभी में विशिष्टचालक तथा भ्रान्त तर्क को अधिक महत्त्व देते हैं। चालक प्राय: स्थायी व्यवहार को उत्पन्न करते हैं। मूल प्रवृत्तियाँ तथा भावनाएँ भी चालक के ही विशेष रूप हैं। चालकों के माध्यम से भावनाओं तथा मूल प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति की जाती है। भ्रान्त तर्क के माध्यम से व्यक्ति स्वयं की क्रियाओं के औचित्य को प्रमाणित करके तथा स्वयं के व्यवहार के वास्तविक उद्देश्य को छुपाने का प्रयास करता है। तार्किक तथा अतार्किक आधार पर ही परेटो ने सामाजिक घटनाओं को दो प्रकार से विभाजित किया है। वैषयिक एवं प्रतीतिक अतार्किक क्रियाओं का मुख्य स्रोत मनुष्य की मनोदशा ही है। इनके सामाजिक क्रिया के सिद्धान्तीकरण में अतार्किक क्रियाएँ समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दोनो हैं।

अतार्किक क्रिया का उद्गम : मस्तिष्क की दशा (State of Mind)

परेटो को यह विचार, 'अतार्किक क्रियाओं का सरोकार मस्तिष्क की दशाओं से है', तो स्पष्ट हो जाने पर वह इन अतार्किक क्रियाओं का दोहरा वर्गीकरण करते हैं। सर्वप्रथम, मानव मस्तिष्क में जो भी भाव जैसे—घृणा, प्रेम, विवाह संबंध आदि विद्यमान हैं, वह अमूर्त हैं अर्थात् उन्हें देखा नहीं जा सकता है। अभिव्यक्तियों (Expression) को सहज कर रखना मस्तिष्क की दशा है। अभिव्यक्तियों में संवेगों को विकसित किया जाता है। संवेगों के अनेक स्वरूप होते हैं जैसे—नैतिक, धार्मिक आदि। इनकी अभिव्यक्ति व्यक्ति द्वारा क्रिया करने के दौरान होती है। तथ्यों तथा अभिव्यक्तियों को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। परन्तु मस्तिष्क की दशाओं को हम प्रत्यक्ष देख नहीं सकते हैं। वे तीनों स्थितियों को एक त्रिभुज के रूप में रखते हैं।

1. **मस्तिष्क की दशा**—इसका अवलोकन नहीं किया जा सकता, यह निश्चित होता है।
2. मस्तिष्क वह भाग है जो तथ्यों के साथ जुड़ा होता है। इसका अवलोकन किया जा सकता है, और

TOUCH 'n PASS

3. इस भाग का प्रदर्शन अभिव्यक्तियों में दिखाई देता है। इसे भाषा व कला में परखा जा सकता है। त्रिभुज द्वारा इसे परेटो व्यक्त करते हैं।

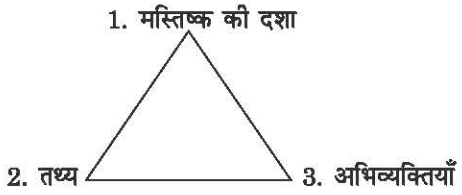

इस त्रिभुज के माध्यम से हम यह समझ सकते हैं, कि अतार्किक क्रिया पूर्णत: मस्तिष्क से जुड़ी रहती है। अथवा इसके विश्लेषण का केन्द्र बिन्दु मस्तिष्क की अवस्था है। द्वितीय एवं तृतीय दोनों ऐसी क्रियाएँ हैं जिनका अवलोकन सम्भव है। हमारी अतार्किक क्रिया की जो भी समझ है, उसे हम द्वितीय एवं तृतीय के द्वारा जान सकते हैं प्रथम को समझने का हमारा एक मात्र आधार द्वितीय एवं तृतीय है। द्वितीय एवं तृतीय का निर्वाचन करने के उपरान्त की हम मस्तिष्क की दशा को समझ सकते हैं। परेटो मानते है कि मानव मस्तिष्क के यह तीनों तत्त्व परस्पर सम्पर्क में रहते हैं। इसका एक निष्कर्ष यह भी है, कि तृतीय का कारण द्वितीय नहीं है। वास्तविकता यह है कि त्रिभुज के तीनों कोण परस्पर जुड़े होते हैं। इस जोड़ में द्वितीय एवं तृतीय का प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। परन्तु जहाँ तक कोई भी क्रिया अतार्किक हैं प्रथम और तृतीय तथा प्रथम व द्वितीय के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण द्वितीय एवं तृतीय का कम महत्त्वपूर्ण कारण है। यह तो सिर्फ प्रथम की अभिव्यक्ति मात्र है, जिसे संवेगों तथा भावनाओं में देखते हैं। वास्तव में प्रथम ही मूल स्रोत है। जिससे द्वितीय एवं तृतीय का उद्‌गम होता है।

यह भी सत्य है, कि प्रथम और तृतीय हमेशा परस्पर निर्भर रहेंगे। यह भी सत्य है, कि इन दोनों का सम्बन्ध कारण = कार्य का नहीं है, ये फिर भी अतार्किक क्रिया के लिए तृतीय अधिक महत्त्व रखती है। पारसन्स कहते हैं, कि मस्तिष्क की दशा जानने के लिए तृतीय एक विश्वासपात्र सूचकांक है। हालाँकि, प्रथम का अवलोकन करना सम्भव नहीं है। इसका अध्ययन प्रत्यक्ष रूप में असम्भव है फिर भी तृतीय गति अभिव्यक्तियों द्वारा इसे समझ सकते हैं। इस गणितीय व्याख्या के उपरान्त परेटो कहते है कि अतार्किक क्रिया स्वयं में अविभाज्य नहीं है। इसमें दो कोटियाँ विद्यमान हैं—विशिष्ट चालक एवं भ्रान्त तर्क।

प्र.3. विशिष्ट चालकों के प्रकारों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
Describe the types of residues in detail.

उत्तर

विशिष्ट चालकों के प्रकार
(Types of Residues)

विशिष्ट चालकों की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए परेटो ने लगभग 50 विशिष्ट चालको की चर्चा की तथा इन्हें श्रेणियों में विभाजित करके इनकी व्यापकता पर प्रकाश डाला। प्रत्येक श्रेणी के विशिष्ट चालक अनेक उपवर्गों में तथा प्रत्येक उपवर्ग कुछ उपखण्डों में विभाजित हैं। इसी कारण रेमण्ड एरो ने परेटो द्वारा प्रस्तुत विशिष्ट चालकों के वर्गीकरण को स्तरीय वर्गीकरण कहा है। विशिष्ट चालकों की इन सभी श्रेणियों को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है—

1. **सम्मिलन या संयोजन के विशिष्ट चालक** (Residues of Combination)—परेटो ने माना कि सम्मिलन के विशिष्ट चालक मानव की उन प्रवृत्तियों में देखने को मिलते हैं जिनमें वह कुछ विशेष विचारों और वस्तुओं के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने हेतु कुछ सिद्धान्तों की खोज करने का प्रयास करता है। विभिन्न क्षेत्रों में सम्मिलन की प्रवृत्ति देखने को मिलती है, जिनको इस प्रकार के विशिष्ट चालकों के उपवर्ग कहा जा सकता है। प्रथम उपवर्ग में व्यक्ति उन विचारों तथा वस्तुओं के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है, जिनके गुण एक दूसरे के लगभग समान होते हैं। दूसरे उप-वर्ग में उन वस्तुओं या घटनाओं के मध्य सम्मिलन किया जाता है, जो विभिन्न विशेषताओं से युक्त होती हैं। तीसरे प्रकार का सम्मिलन अज्ञात वस्तुओं या अज्ञात शक्तियों से सम्बन्धित है। अन्तिम उपवर्ग में परेटो ने एक विशेष प्रेरणा के स्वरूप का कुछ अन्य प्रेरणाओं से सम्मिलन करने की मानव-प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है। परेटो के अनुसार, हमारे दैनिक जीवन में सम्मिलन के विशिष्ट चालक मौजूद रहते हैं। **उदाहरणस्वरूप** कुछ विचारों तथा वस्तुओं के मध्य इस प्रकार सम्मिलन किया जाता है कि, 'सुन्दर तथा स्वच्छ घर में रहने वाला व्यक्ति भी परिष्कृत विचारों का होगा' या कोई सुन्दर वस्तु स्वप्न में देखने का अर्थ भविष्य में अच्छे भाग्य का संकेत करता है। इसी तरह शव यात्रा देखने का सम्बन्ध दीर्घायु होने से जोड़ना या असमान

TOUCH 'n PASS

विशेषताओं के सम्मिलन का उदाहरण है। इसी प्रकार जादू-टोना आदि भी धर्म तथा दूसरे प्रकार के संवेगों से सम्बन्ध रखता रखने वाला विशिष्ट चालक है, जो सम्मिलन की प्रवृत्ति को व्यक्त करता है।

2. **सामूहिकता के स्थायित्व के विशिष्ट चालक** (Residues of the Persistence of Aggregates)—'यह विशिष्ट चालक समाज में सामूहिकता को स्थायित्व प्रदान करते हैं' (परेटो)। इसमें वे प्रेरणाएँ हैं, जो व्यक्ति के पास्परिक सम्बन्धों, मनुष्य एवं स्थानों के मध्य सम्बन्धों तथा जीवित व मृत व्यक्तियों के मध्य सम्बन्धों को स्थायित्व देती है। अत: विशिष्ट चालक मनुष्य की भावनाओं की अभिव्यक्ति होते हैं, तथा एक पीढ़ी द्वारा अन्य पीढ़ी को हस्तान्तरित किए जाते हैं। इनके लिए व्यक्तियों में सम्मान का भाव होता है। इन्ही विशिष्ट चालकों के माध्यम से हम स्वयं के परिवार, नगर, देश, प्रजाति अथवा इनके सदस्यों के साथ स्वयं सम्बन्धित रहते हैं। परेटो ने सामूहिकता को स्थायित्व प्रदान करने अथवा इसमें वृद्धि करने वाले विशिष्ट चालकों के स्पष्टीकरण को 8 उपवर्गों में बाँटा। प्रथम वर्ग में कुछ विशेष व्यक्तियों, स्थानों तथा सामाजिक वर्गों से व्यक्ति के सम्बन्ध को स्थायित्व देने वाले विशिष्ट चालकों का समावेश है। इसके प्रभाव से लोगों को अपने माता-पिता, नातेदारों अथवा मित्रों से स्थायी सम्बन्ध बनाये रखने की प्रेरणा मिलती है। अपने गांव या मकान को छोड़ना नहीं चाहते हैं। दूसरे तथा तीसरे वर्ग में परेटो द्वारा उन विशिष्ट चालकों की चर्चा की गई है, जो लोगों को स्मरण कराते हैं। मृत व्यक्तियों तथा वस्तुओं को सहेज कर रखने की प्रेरणा देकर उनके साथ हमारा भावानात्मक सम्बन्ध बनाए रखते हैं। चौथे वर्ग में हमारी अपनी संस्कृति, विश्वासों और मूल्यों को स्थिर बनाए रखने की प्रेरणा देने वाले चालक आते हैं। पांचवे वर्ग के चालक व्यक्ति को अपने आस-पास की वस्तुओं तथा घटनाओं से एकरूपता स्थापित करने के लिए प्रेरित करते हैं। छठे वर्ग के विशिष्ट चालकों के प्रभाव से व्यक्ति स्वयं की भावनाओं को यथार्थ मे परिवर्तित करके सामूहिक जीवन हेतु त्यागपूर्ण कार्य सम्पन्न करता है तथा सातवें व आठवें वर्ग में उन विशिष्ट चालकों का उल्लेख किया जो वैयक्तिक सम्बन्धों की स्थापना तथा नए विश्वासों के सृजन को प्रोत्साहन देते हैं। अत: स्पष्ट है कि इस श्रेणी के सभी विशिष्ट चालक सामूहिक जीवन को स्थायित्व प्रदान करने में विशेष भूमिका निभाते हैं।

3. **बाह्य क्रियाओं द्वारा भावनाओं के अभिव्यक्ति के विशिष्ट चालक** (Residues of the Manifestation of Sentiments Through Exterior Acts)—इस श्रेणी के अन्तर्गत वे विशिष्ट चालक शामिल हैं, जिनके माध्यम से हम अपनी भावनाओं को बाह्य क्रियाओं द्वारा प्रदर्शित करने के लिए प्रेरणा लेते हैं। इन विशिष्ट चालकों को दो उपवर्गों में विभाजित किया गया है जिसका प्रथम उपवर्ग सामूहिक जीवन में व्यक्ति के संवेगात्मक व्यवहार के स्पष्टीकरण को सन्दर्भित करता है, उदाहरण के लिए दर्शक द्वारा किसी एक कार्यक्रम को देखकर पसन्द आने पर ताली बजाना या न पसन्द आने पर शोर मचाना अथवा विरोध करना ऐसे उपवर्ग के विशिष्ट चालक हैं। जबकि, द्वितीय उपवर्ग व्यक्ति द्वारा की जाने वाली कई धार्मिक क्रियाओं के द्वारा ईश्वर के प्रति स्वयं की धार्मिक अवस्थाओं को प्रकट करने से सम्बन्धित चालकों से जुड़ा है। अत: यह स्पष्ट है, कि इस श्रेणी के विशिष्ट चालक वे हैं जो व्यक्ति को स्वयं के संवेगों की अभिव्यक्ति हेतु कुछ बाह्य क्रियाएँ करने के लिए प्रेरित करते हैं। इन चालकों के प्रभाव से संचालित बाह्य क्रियाओं का संवेगात्मक रूप होता है।

4. **सामाजिकता से सम्बन्धित विशिष्ट चालक** (Residues of Sociability)—यह वह विशिष्ट चालक हैं, जो व्यक्ति को स्वयं के विचारों तथा व्यवहारों को समूह के अनुसार बनाकर उसे एक सामाजिक प्राणी बनने के लिए प्रेरित करते हैं। इस श्रेणी के विशिष्ट चालकों को परेटो 6 उपवर्गों में विभक्त करके स्पष्ट करते हैं। परेटो द्वारा किये गये वर्गीकरण के आधार पर हम यह कह सकते हैं, कि यह विशिष्ट चालक विभिन्न प्रेरणाओं के माध्यम से व्यक्ति को कुछ विशेष समाजो का सदस्य बनने के लिए प्रेरित करते हैं। उसे अन्य की भाँति बनने की मांग करते हैं। व्यक्ति के अन्दर दया भावना को पुष्ट बनाते हैं। दूसरों के प्रति त्याग को प्रोत्साहन देते हैं। सामाजिक स्तरीकरण को स्वीकारने की प्रेरणा देते हैं तथा दूसरों के लिए स्वयं के सुखों का त्याग करने की भावना उत्पन्न करते हैं। परेटो ने इस श्रेणी के विशिष्ट चालकों के जिन उपवर्गों तथा उप खण्डों का उल्लेख किया, उन्हें निम्नांकित प्रकार से समझा जा सकता है—

(i) **विशिष्ट समाजों में सहभागिता**—इस प्रथम उपवर्ग के अन्तर्गत परेटो द्वारा उन विशिष्ट चालकों को समाहित किया गया है, जिनके द्वारा किसी व्यक्ति को अनेक संगठनों अथवा समूह का सदस्य बनने की प्रेरणा प्राप्त होती है। अत: यह समूह या संगठन उस समूह से सर्वथा विपरीत होते हैं, जिसमें व्यक्ति का जन्म होता है। खेल संगठन व अन्य

TOUCH 'n' PASS

संगठन इसी प्रकार की समितियां मानी जाती हैं, जो किसी मनुष्य की भावनाओं, संवेगों को प्रभावशील बनाने में सहयोग करती हैं।

(ii) **अन्य की भूमिका का निर्वहन व स्वअनुशासन**—इस उपवर्ग में विशिष्ट चालक किसी व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों के विचारों, व्यवहार के समान भूमिका निर्वहन पर जोर देते हैं। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति स्वयं व दूसरों पर अनुशासन बनाये रखने के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है। कुछ विशिष्ट चालक समाज में स्थापित आदर्शों जैसे—परंपराएँ, प्रथाएँ व रूढ़ियों को बनाये रखने के लिए प्रेरित करते हैं, ताकि समाज में समरूपता बनी रहे।

(iii) **दया की भावना का विकास**—तीसरा उपवर्ग वह है, जिसके अन्तर्गत क्रूरता व दया की भावना पर प्रभाव डालने वाले विशिष्ट कारक आते हैं। इनसे प्रेरित होकर ही व्यक्ति में दया की भावना का विकास होता है तथा क्रूर भावनाओं के लिए द्वेष दर्शाता है। कुछ चालकों द्वारा निदेयी भावनाओं को व्यागने पर बल दिया जाता है।

(iv) **आत्मोसर्ग एवं बलिदान की प्रेरणा**—चौथे उपवर्ग के अन्तर्गत वह विशिष्ट चालक सम्मिलित हैं, जो व्यक्ति को आत्म बलिदान व स्व आहुति के लिए प्रेरित करते हैं। इस चालक से प्रभावित होकर व्यक्ति या तो स्वयं के जीवन को जोखिम में डालकर अन्य के हितार्थ कार्य करता है, या फिर वह अन्य को सहभागी बनाकर स्वयं को सामाजिक बनाने में वृद्धि करता है।

(v) **सामाजिक संस्तरण के प्रति विश्वास**—इस उपवर्ग के अन्तर्गत वह विशिष्ट चालक आते हैं, जो सामाजिक संस्तरण के लिए व्यक्ति में श्रद्धा या विश्वास बढ़ाते हैं। तात्पर्य यह हैं कि इसके माध्यम से व्यक्ति स्वयं से निम्न तथा उच्च सामाजिक स्थिति के लोगों के लिए कुछ विशेष संवेगों का विकास करती हैं। इस प्रकार व्यक्ति इनके अनुसार ही सामाज में स्वीकार व्यवहार करने की कोशिश करता है।

(vi) **पलायनवादिता**—अंतिम उपवर्ष उन विशिष्ट चालकों का है जो व्यक्ति को उसके समाज के प्रति स्वयं के उत्तरदायित्व को देखते हुए समाज से पलायन की भावना को बल प्रदान करते है।

5. **व्यक्तित्व संगठन के विशिष्ट चालक** (Residues of Personality Integrity)—इस श्रेणी के अन्तर्गत वे प्रेरणाएँ आती है, जो कि व्यक्तित्व के अनेक तत्वों या लक्ष्यों को संगठित या संयोजित करती है। इन विशिष्ट चालकों के प्रभाव से हम उन स्थितियों का विरोध करते हैं, जो व्यक्तित्व सम्बन्धी संगठन को नष्ट करने वाले प्रतीत होते हैं। यही विशिष्ट चालक हमें स्वयं के व्यक्तित्व के विभिन्न तथा बिखरे हुए तत्त्वों को पुन: बटोरने तथा व्यक्तित्व को ऊपर उठाने के लिए प्रेरित करते हैं। क्या उचित है? क्या अनुचित? इसका ज्ञान हमें इन्हीं चालकों के मध्यम से मिलता है।
6. **काम सम्बन्धी विशिष्ट चालक** (Residues of Sex)—परेटो के अनुसार, विश्व में प्रत्येक धर्म काम संतुष्टि के लिए कुछ न कुछ निषेधों व नियंत्रण को अवश्य प्रभावी बनाने की कोशिश करता है। परन्तु इसके उपरान्त भी काम सम्बन्धी व्यवहारों में बढ़ोत्तरी होना प्रत्येक मानव समाज की विशेषता है। इसका कारण यह काम सम्बन्धी विशेष चालक है जो काम भावनाओं को प्रकट व प्रेरित करते हैं। प्राय: काम सम्बन्धी इन विशिष्ट चालकों को वैयक्तिक माना जाता है, परन्तु इससे उत्पन्न व्यवहारों के सामाजिक प्रभाव का वर्णन करते हुए परेटो ने उसके विस्तार को बताया है। यह चालक एक तरफ तो यौन सम्बन्धी व्यवहारों के प्रेरक होते हैं, वही अन्य तरफ यह पांचवी श्रेणी के विशिष्ट चालकों से सम्बद्ध होकर यौन नैतिकता को विकसित करने के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं।

वास्तव में प्रत्येक समाज में विद्यमान विशिष्ट चालक हमारे व्यवहारों को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करते हैं। परन्तु अलग-अलग व्यक्तियों व समूहों में इनकी प्रभावशीलता भिन्न-भिन्न होती है। इसका आशय यह है, कि कुछ व्यक्तियों के व्यवहार 'संयोजन के विशिष्ट चालकों' से अधिक प्रभावित होते हैं, वही दूसरी तरफ कुछ व्यक्तियों को 'व्यक्तित्व के संगठन के विशिष्ट चालक' अधिक प्रभावित कर सकते हैं। अत: यह स्पष्ट है, कि व्यक्ति के व्यवहारों पर विशिष्ट चालकों का प्रभाव बहुत सीमा तक सामाजिक दशाओं व समय कारक से होता है। परेटो द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि यद्यपि इन विशिष्ट चालकों का कोई तार्किक प्रयोगात्मक आधार नहीं होता। परन्तु यह मानव व्यवहारों को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विशिष्ट चालक जो सामाजिकता से सम्बन्धित व्यक्ति में मानवीय गुणों को प्रोत्साहित कर उसे समाज के अनुकूल बनाने में सहयोगी होते हैं। जबकि वह विशिष्ट चालक जो संयोजन से सम्बन्धित होते हैं, हमें विभिन्न घटनाओं के मध्य एक तार्किक सम्बन्ध जोड़ने की प्रेरणा प्रदान करके मानसिक सन्तुष्टि देते हैं। वास्तव में इस प्रकार के विशिष्ट चालक विभिन्न प्रकार के विश्वासों को प्रभावशील बनाकर उनके द्वारा घटनाओं की एक सरल व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए आधार देते हैं। समाज व्यवस्था के संतुलन को बनाये

TOUCH 'n PASS

रखने में इन विशिष्ट चालकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। सामाजिक व्यवस्था एक बड़ी सीमा तक व्यक्तित्व के संगठन पर निर्भर होती हैं। जिस समाज में व्यक्तियों का व्यक्तित्व अधिक संगठित होता है, वहाँ की सामाजिक व्यवस्था उतनी ही संतुलित तथा प्रभावपूर्ण प्रतीत होती है।

यह विशिष्ट चालक लोगों को स्वयं के व्यक्तित्व में नैतिक मूल्यों का समावेश करने और सामाजिक मूल्यों से भिन्न जो भी व्यवहार हो उनका तिरस्कार करने के लिए प्रेरित करते हैं। यह कार्य तार्किक आधार पर उतने व्यवस्थित प्रकार से नही किया जा सकता जितना कि इन विशिष्ट चालकों से प्राप्त हुई प्रेरणाओं के द्वारा किया जा सकता है। समाज का स्थायित्व और निरन्तरता कुछ ऐसी प्रेरणाओं पर निर्धारित होता है, जो भिन्न व्यक्तियों, समूहों तथा अनुभूतियों को परस्पर जोड़ते हैं। इसका अर्थ है, कि सामूहिकता के स्थायित्व के विशिष्ट चालक जब हमें स्वयं की मातृभूमि, राष्ट्र व संस्कृति के प्रति समर्पित रहने की प्रेरणा देते हैं। तो इससे सामाजिक व्यवस्था अधिक दृढ़ बन जाती है। इन विशिष्ट चालकों को प्रभाव के कारण ही हम महापुरुषों के व्यवहारों का अनुसरण करते हैं। अपने अतीत के प्रति श्रद्धा रखते हैं, तथा उन मूल्यों हेतु बड़े से बड़ा बलिदान करने को तत्पर हो जाते हैं। जिन्हें हमारे समाज में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इन्ही व्यवहारों के कारण एक सांस्कृतिक विरासत का निर्माण होता है, तथा जो उपयोगी व्यवहार है, वह परम्परा के रूप में स्थायी रूप प्राप्त कर लेते हैं। अत: यह स्पष्ट होता है, कि विशिष्ट चालकों के पीछे कोई तार्किक आधार न होने के बाद भी यह इनके सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

प्र.4. भ्रान्त तर्क को स्पष्ट करते हुए, इसके प्रकार पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालिए।
Clarifying the derivations, throw light on its types in detail.

उत्तर

भ्रान्त तर्क
(Derivations)

मानव एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी की भूमिका में वह अनेक प्रकार से क्रिया अथवा व्यवहार करता है। कोई भी व्यक्ति समाज में जो भी कार्य करता है। उस व्यक्ति के अनुसार, वह सम्पादित कार्य ठीक अथवा उचित ही रहता है। परन्तु यह सम्भावित हो सकता है कि अन्य व्यक्ति अथवा संगठन उसके कुछ कार्यों को उचित या ठीक न माने, अर्थात् अनुचित मानते हैं। अत: इस स्थिति में उस व्यक्ति को अपनी सफाई देनी पड़ सकती है कि उसके द्वारा किया गया कोई भी कार्य अनुचित नहीं है। अपने उसी कार्य अथवा व्यवहार को उपयोगी प्रमाणित करने के लिए व्यक्ति स्वयं की प्रकृति अथवा आदर्शों के अनुकूल अनेक तरीके अथवा साक्ष्य प्रस्तुत करता है, इसे ही परेटो ने भ्रान्त तर्क कहा है। भ्रान्त तर्क चाहे अनुभव सिद्ध हो या न हो, वह तर्कपूर्ण हो या ना हो, उनकी उपयोगिता समाज में हो अथवा नहीं, यह भ्रान्त तर्क इस अर्थ में भ्रान्त है कि ये सामान्य मत के विपरीत अतार्किक तथा प्रयोग पर सिद्ध नहीं होते हैं। अत: यह माना जा सकता है कि भ्रान्त तर्क विशिष्ट चालकों की अपेक्षा ज्यादा अस्थिर एवं परिवर्तनीय होते हैं। **परेटो के अनुसार**, "भ्रान्त तर्क को सामान्य भाषा में वैचारिकी, सिद्धान्तवादिता तथा न्यायपूर्ण औचित्य कहा जाता है।" परेटो के विचार से कोई भी समाजशास्त्री घटनाओं की व्याख्या अथवा विश्लेषण में उन भ्रान्त तर्कों की किसी न किसी रूप में स्वीकारता अथवा देखता है। विज्ञान प्रत्येक परिणामों पर बिल्कुल भी स्थिर नहीं रह सकता। ऐसे निष्कर्ष प्राय: गलत अतर्कसंगत तथा अवैज्ञानिक होते हैं।

फेयरचाइल्ड ने परेटो की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, भ्रान्त तर्क क्रियाओं का वह व्यापक क्षेत्र है, जिसके द्वारा मनुष्य व्यवहार की तार्किकता या औचित्य के सम्बन्ध में स्वयं अपने तथा अपने साथियों के समझने व विश्वास दिलाने का प्रयत्न करता हैं। इन भ्रान्त तर्कों को उनकी सत्यता या असत्यता के आधार पर स्वीकार या अस्वीकार इस कारण किया जाता है कि वे हमारे सन्देह और भावनाओं को उचित या अनुचित प्रतीत होते हैं। **उदाहरण**—फैशन, विज्ञापन आदि इसी प्रकार के भ्रान्त तर्कों पर आधारित है।

इसके सम्बन्ध में समाजशास्त्री मार्टिण्डेल ने लिखा है, "भ्रान्त तर्क मनुष्य के कार्यों की हृदय व्याख्या के तरीके हैं।" इस सन्दर्भ में परेटो का यह कथन उचित प्रतीत होता है कि व्यक्ति के कुछ व्यवहार किसी तर्क या सिद्धान्त से प्रभावित नहीं होते बल्कि पहले व्यक्ति व्यवहार करता है तत्पश्चात् स्वयं के व्यवहार की उपयोगिता को सिद्ध करता है। परेटो का विचार है कि सामान्य व्यक्ति ही केवल अपने जीवन में भ्रान्त तर्कों का उपयोग नहीं करते, वरन् राजनीति दर्शन और समाज विज्ञान के भी बड़े-बड़े विद्वान स्वयं के कार्यों तथा अपने विचारों को भ्रान्त तर्कों की सहायता से उपयोगी सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। इस सन्दर्भ में उन्होंने कॉम्टे के विचारों की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया है, कि कॉम्टे ने मानवता के धर्म के रूप में जिस अवधारणा को प्रस्तुत किया वह मुख्यत: मिथ्या तथ्यों पर आधारित एक ऐसा तरीका है, जिसे भ्रान्त तर्कों द्वारा सिद्ध करने की कोशिश की जाती है। इस प्रकार हम यह कह

सकते है कि व्यक्ति स्वयं के व्यवहार को उचित प्रमाणित करने के लिए जिन तर्कों का उपयोग या सहारा लेते हैं, वे ही भ्रान्त तर्क है।

भ्रान्त तर्क के प्रकार (Types of Derivations)

परेटो ने भ्रान्त तर्कों को चार वर्गों में विभक्त किया है—

1. **घोषणाएँ** (Assertions)—परेटो का इस वर्ग के भ्रान्त तर्क से तात्पर्य उन साधारण घोषणाओं या विज्ञान के प्रकार से है जो अनुभव तथा परिणात्मक तथ्यों पर आधारित नहीं होते हैं। परन्तु इसके बावजूद इनकी पुष्टि में काल्पनिक अथवा वास्तविक तथ्यों को प्रस्तुत किया जा सकता है, अर्थात् यह इतनी दृढ़ता तथा भरोसे के साथ प्रकट किये जाते है कि लोगों को उस पर सहज ही भरोसा उत्पन्न हो जाए। उस घोषणा का प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि तर्क में कितनी बार पुनरावृत्ति की जाती है इससे बिल्कुल असत्य कथन भी सत्य प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार के भ्रान्त तर्क को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है—
   (i) भावनात्मक तर्क
   (ii) मिश्रित तर्क
   (i) **भावनात्मक भ्रांत तर्क**—इस प्रकार के भ्रांत तर्क भावनात्मक रूप में प्रस्तुत किए जाते है। भावनात्मक तर्क होने के कारण किसी के द्वारा साधारणतया इसका विरोध नहीं किया जाता। जब एक माँ स्वयं के पुत्र को किसी व्यवहार हेतु यह घोषणा देती है कि स्वयं से बड़े सभी व्यक्तियों की आज्ञा का पालन करो, क्योंकि तुम्हारा दायित्व आज्ञा का पालन करना है। इस प्रकार के तर्क को केवल भावना की ही स्वीकृति प्राप्त होती है।
   (ii) **मिश्रित भ्रांत तर्क**—इसमें भावनाओं के साथ कुछ सीमा तक तथ्यों का भी मिश्रण होता है। उदाहरण के लिए सैनिकों को भावनात्मक आधार पर युद्ध से पहले अपने राष्ट्र के प्रति समर्पण की शिक्षा दी जाती है।
2. **अधिकार या अधिसत्ता** (Authority)—वह भ्रान्त तर्क जिनकी मान्यता के पीछे कोई शक्ति या सत्ता होती है, वह इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। जैसे किसी कारण से जब एक व्यक्ति किसी एक क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है, तथा लोग जब गलती से उसे दूसरे क्षेत्र में भी प्रतिष्ठित मान लेते है, जबकि वास्तविकता में उसे उस क्षेत्र का कुछ भी ज्ञान नहीं होता फिर भी उसकी प्रतिष्ठा के कारण उनके कथन को लोग आसानी से ही मान लेते हैं। यह सत्य सिर्फ व्यक्तिगत होकर ईश्वरीय या सामाजिक शक्ति भी हो सकती है। उदाहरण—अनेक धार्मिक नियम, प्रथा, परम्पराएँ आदि की अभिव्यक्ति इतनी शक्तिशाली होती है, कि वह मानव व्यवहार को स्वत: नियंत्रित कर सकती है। इस प्रकार यह भ्रांत तर्क तीन प्रकार का होता है—
   (i) ईश्वरीयसत्ता (Devine Authority)
   (ii) व्यक्ति की सत्ता (Authority Man)
   (iii) परम्परा की सत्ता (Authority of Tradition)
   (i) **ईश्वरीय सत्ता** (Divine Authority)—परेटो के अनुसार ईश्वर या एक अलौकिक सत्ता में अधिकांश लोग विश्वास करते है। परिणामस्वरूप जब व्यक्ति स्वयं से किसी विशिष्ट व्यवहार के पक्ष में कोई ठोस तर्क देने में समर्थ नही हो पाता तब वह ऐसा भ्रांत तर्क अवश्य देता है जिसका सम्बन्ध ईश्वरीय सत्ता से होता है। इस तरह के भ्रांत तर्कों के उदाहरण स्वरूप में किसी व्यवहार का कारण ईश्वर की इच्छा या भाग्य का परिणाम मानना ले सकते है।
   (ii) **व्यक्ति की सत्ता** (Authority of Man)—प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक संबंध समाज के अन्दर किसी व्यक्ति की सत्ता से प्रभावित होते हैं। यह सत्ता वैधानिक या प्रथागत भी हो सकती है। लोग जिसे स्वयं से अधिक प्रतिष्ठित या सत्तासम्पन्न मानते हैं उसके द्वारा दिये जाने वाले तर्क या कथन को सहजता से स्वीकार लेते हैं। **उदाहरण के लिए,** परिवार में बच्चों पर पिता की सत्ता, पत्नी पर पति की सत्ता और विद्यालय में शिक्षक की छात्र पर सत्ता, कार्यकर्त्ताओं या नेताओं की सत्ता। इससे अभिप्राय है कि जब सत्ता सम्पन्न व्यक्ति के नाम से एक अधीन व्यक्ति के सामने कोई तर्क दिया जाता है तो अधीन व्यक्ति उसकी विश्वसनीयता से परिचित होने का प्रयत्न नहीं करता।
   (iii) **परंपरा की सत्ता** (Authority of Tradition)—जब कोई व्यक्ति स्वयं के कार्यों या व्यवहारों का औचित्य सिद्ध करने हेतु परम्पराओं के आधार पर भी तर्क प्रस्तुत करता है। तब यह भ्रांत तर्क परम्परा की सत्ता को स्पष्ट करता है।

TOUCH 'n PASS

उदाहरण के लिए, दाम्पत्य जीवन तभी सफल हो सकता है, जब विवाह अपनी जाति में किया जाता है। इसके अतिरिक्त सामान्यत: लोग परम्पराओं या प्रथाओं की सत्ता से जुड़े होते है और वे साम्प्रदायिक झगड़ों, जातिगत हिंसाओं एवं क्षेत्रवाद के संदर्भ में इस प्रकार के तर्क देते है जिन्हें अनुचित न मानकर उचित मान लिया जाता है।

3. **भावना या सिद्धान्तों के अनुरूप** (Accord with Sentiments of Priniciples)—इसके अन्तर्गत उन भ्रान्त तर्कों को शामिल करते हैं जो किसी कार्य को करने के कारण प्रमाणित करने के उद्देश्य से एक व्यक्ति प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के तर्क कुछ विशेष भावनाओं से सम्बन्धित होते हैं तथा उसी आधार पर उस कार्य को उचित मान लिया जाता हैं जिन भावनाओं पर भ्रान्त तर्क आधारित होते हैं, वह व्यक्ति से या ईश्वर से जुड़ी हो सकती है।
   उदाहरण—व्यक्ति कोई काम करके यह सिद्ध कर सकता है कि उसने यह काम राष्ट्रीय हित हेतु किया हो। इसी प्रकार नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, वैधानिक तथा अनेक सिद्धान्त बने हुए हैं, जो भावनाओं पर आधारित है।
4. **मौखिक प्रमाण** (Verbal Proof)—इस श्रेणी में वे मिथ्या तर्क, सन्देश मूलक तथा द्विअर्थी बातें आती हैं जो वास्तविक तथ्यों के अनुकूल नहीं होती लेकिन जिनको व्यवहार या आचरण के औचित्य को सिद्ध करने हेतु उपयोग किया जाता है। परेटो यह भी मानते है कि विभिन्न धर्मों की पौराणिक गाथाओं में जिन बहुत से मौखिक प्रमाणों का सम्मिलन होता है, वे प्रमाण भी तार्किक अथवा प्रयोगसिद्ध न होकर भ्रान्त तर्क ही होते हैं।
   अत: परेटो इस विचार से बिल्कुल भी सहमत नहीं हैं कि यह भ्रान्त तर्क पूर्णत: अनुपयोगी है अथवा हानिकारक होते हैं। परेटो इस मत को अपने अध्ययन में प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं कि अनेक भ्रान्त तर्क ऐसे भी होते हैं जो सामाजिक व्यवस्था में एकता को बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं और इसके विपरीत ऐसे कितने सत्य हैं जो सामाजिक व्यवस्था अथवा संगठन के लिए हानिकारक परिलक्षित हुए हैं। अत: परेटो के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक सत्य उपस्थित है और प्रत्येक भ्रान्त तर्क समाज हेतु हानिकारक होता है।

विशिष्ट चालक जहाँ मानव व्यवहार पर प्रभाव डालने वाली स्थिर प्रेरणाएँ हैं वहीं भ्रान्त तर्क अपनी प्रकृति से परस्पर विरोधी, परिवर्तनशील तथा विविधतापूर्ण हो सकते हैं। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के प्रत्येक व्यवहार व कार्यों का न सिर्फ स्वयं उचित समझता है कि बल्कि वह अन्य के सामने भी किसी न किसी प्रकार से तर्क के आधार पर उन व्यवहारों तथा क्रियाओं को उचित सिद्ध करने की कोशिश करता है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. बिल्फ्रेड परेटो की कृतियों में शामिल नहीं है–
(क) द कोर्स ऑफ इकोनोमिक पालिटिकल (ख) लेस सिस्टम सोशियलिस्ट
(ग) माइंड एण्ड सोसायटी (घ) डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसायटी
उत्तर (घ) डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसायटी

प्र.2. परेटो की कृति 'द माइण्ड एण्ड सोसायटी' (The Mind and Society) का प्रकाशन किस वर्ष हुआ?
(क) 1935 (ख) 1940 (ग) 1930 (घ) 1920
उत्तर (क) 1935

प्र.3. परेटो ने किस सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया?
(क) तार्किक व अतार्किक क्रिया (ख) विशिष्ट चालक
(ग) भ्रान्त तर्क (घ) आत्महत्या का सिद्धान्त
उत्तर (घ) आत्महत्या का सिद्धान्त

प्र.4. विल्फ्रेड परेटो का जन्म कब हुआ था?
(क) 1855 (ख) 1856 (ग) 1848 (घ) 1852
उत्तर (ग) 1848

TOUCH 'n' PASS

प्र.5. विशिष्ट चालक व भ्रान्त तर्क की अवधारणा का प्रतिपादन किसने किया?
(क) विल्फ्रेडो परेटो (ख) मैक्स वेबर (ग) इमाईल दुर्खीम (घ) जी०एच० मीड
उत्तर (क) विल्फ्रेडो परेटो

प्र.6. परेटो ने सामाजिक क्रिया के कितने प्रकारों का वर्णन अपने क्रिया सिद्धान्त में किया है?
(क) 3 (ख) 4 (ग) 2 (घ) 5
उत्तर (ग) 2

प्र.7. परेटो के अनुसार तार्किक क्रिया होती है—
(क) व्यक्तिपरक (ख) वस्तुनिष्ठ (ग) आर्थिक (घ) भावनात्मक
उत्तर (ख) वस्तुनिष्ठ

प्र.8. परेटो की अतार्किक क्रिया में 'प्रातीतिक पक्ष' से आशय है—
(क) क्रिया में बुद्धि कल्पना का स्वरूप उपस्थित होना (ख) सामूहिकता की भावना
(ग) प्रत्यक्ष अनुभव (घ) स्वयं की भावना
उत्तर (क) क्रिया में बुद्धि कल्पना का स्वरूप उपस्थित होना

प्र.9. ..... के अनुसार, भ्रान्त तर्क एक प्रकार का मौसम पंछी है, जो हवा की दिशा के अनुसार बदल जाता है।
(क) परेटो (ख) सोरोकिन (ग) दुर्खीम (घ) बेवर
उत्तर (ख) सोरोकिन

प्र.10. भ्रान्त तर्क की विशेषता नहीं है—
(क) यह वास्तविकता को छिपाने की कोशिश है। (ख) भ्रान्त तर्क अतार्किक क्रियाएँ एवं तथ्य हैं।
(ग) यह विचारधाराओं के साथ-साथ चलते हैं। (घ) यह कम लचीले होते हैं।
उत्तर (घ) यह कम लचीले होते हैं।

प्र.11. परेटो सिद्धान्त को ..... नियम से भी जाना जाता है।
(क) 80/20 (ख) 70/30 (ग) 50/50 (घ) 90/10
उत्तर (क) 80/20

प्र.12. परेटो चार्ट के प्रवर्त्तक कौन हैं?
(क) विल्फ्रेडो परेटो (ख) सबिनो परेटो (ग) डोनाटेला डेला पोर्टा (घ) एलेसेंड्रो परेटो
उत्तर (क) विल्फ्रेडो परेटो

प्र.13. सामाजिक परिवर्तन के चक्रीय परिवर्तन के समर्थक कौन नहीं है?
(क) कार्ल मार्क्स (ख) टायनबी (ग) पैरेटो (घ) सोरोकिन
उत्तर (क) कार्ल मार्क्स

प्र.14. कार्ल मार्क्स का वर्ग-संघर्ष किस श्रेणी में आता है?
(क) धार्मिक (ख) राजनीतिक (ग) आर्थिक (घ) सामाजिक
उत्तर (ग) आर्थिक

प्र.15. सामाजिक प्रक्रिया के निर्माण में प्रमुख तत्त्व क्या है?
(क) निरन्तरता (ख) सामाजिक संबंध (ग) परिवर्तनशीलता (घ) ये सभी
उत्तर (घ) ये सभी

TOUCH 'n PASS

❑

UNIT-V

कार्ल मार्क्स
Karl Marx

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. कार्ल मार्क्स के अनुसार समाज की आर्थिक संरचना क्या है?
What is economic structure according to Karl Marx?

उत्तर कार्ल मार्क्स ने माना कि अर्थव्यवस्था किसी भी समाज की मूल संरचना है, जिस पर अन्य संस्थाएँ निर्भर हैं। परिवार पहला स्कूल है जहाँ बच्चे अपनी प्रारंभिक शिक्षा शुरू करते हैं। शिक्षक की भूमिका माँ और परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा निभाई जाती है।

प्र.2. कार्ल मार्क्स के अनुसार सामाजिक परिवर्तन कैसे होता है?
How to social change according to Karl Marx?

उत्तर मार्क्स के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन प्रौद्योगिक तथा आर्थिक कारकों से जनित है। इसीलिए उनके सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त को 'आर्थिक निर्धारणवाद' या सामाजिक परिवर्तन का प्रौद्योगिकीय सिद्धान्त भी कहा गया है।

प्र.3. कार्ल मार्क्स के मुख्य विचार क्या हैं?
What are main ideas of Karl Marx?

उत्तर उनके प्रमुख सिद्धांत पूँजीवाद और उसकी कमियों की आलोचना थे। मार्क्स ने सोचा था कि पूँजीवादी व्यवस्था अनिवार्य रूप से खुद को नष्ट कर देगी। उत्पीड़ित श्रमिक अलग-थलग हो जाएंगे और अंततः मालिकों को उखाड़ फेंककर उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण कर लेंगे, जिससे एक वर्गहीन समाज की शुरुआत होगी।

प्र.4. कार्ल मार्क्स के अनुसार समाज के पाँच चरण कौन-से हैं?
Which five steps according to Karl Marx?

उत्तर मार्क्स ने उत्पादन के जिन मुख्य तरीकों की पहचान की उनमें आदिम साम्यवाद, गुलाम समाज, सामंतवाद, पूँजीवाद और साम्यवाद शामिल हैं। उत्पादन के इन चरणों में से प्रत्येक में, लोग प्रकृति और उत्पादन के साथ अलग-अलग तरीकों से बातचीत करते हैं। उस उत्पादन से कोई भी अधिशेष अलग तरीके से वितरित किया गया था।

प्र.5. कार्ल मार्क्स कौन थे और उनका समाजवाद का सिद्धांत क्या था?
Who was Karl Marx and what was his theory of socialism?

उत्तर कार्ल मार्क्स साम्यवाद और समाजवाद पर अपने सिद्धांतों के लिए जाने जाते हैं। उनका मानना था कि पूँजीवादी व्यवस्था स्वाभाविक रूप से त्रुटिपूर्ण थी और अंततः अपने ही पतन का कारण बनेगी। मार्क्स का मानना था कि शासक वर्ग ने सर्वहारा वर्ग (मजदूर वर्ग) का शोषण किया और यह शोषण अंततः एक क्रांति की ओर ले जाएगा।

प्र.6. समाजशास्त्र में कार्ल मार्क्स का सिद्धांत क्या हैं?
What is theory of Karl Marx in sociology?

उत्तर मार्क्स के सिद्धांतों ने संघर्ष सिद्धांत नामक एक समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य का निर्माण किया, जिसमें कहा गया कि पूँजीवादी समाज श्रमिकों और शासकों के बीच संघर्ष पर बने थे। इस सिद्धांत में, समाज अमीरों को सत्ता में और गरीबों को सरकार के अधीन बनाए रखने के लिए वर्ग संघर्ष पर निर्भर करता है।

प्र.7. कार्ल मार्क्स ने समाजशास्त्र को कैसे प्रभावित किया?
How to do effect sociology by Karl Marx?

TOUCH 'n' PASS

उत्तर समाजशास्त्रीय सिद्धांत में मार्क्स का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान उनका विश्लेषण का सामान्य तरीका, 'द्वंद्वात्मक' मॉडल था, जो प्रत्येक सामाजिक प्रणाली को उसके भीतर अंतर्निहित ताकतों के रूप में मानता है जो 'विरोधाभास' (असमानता) को जन्म देते हैं जिन्हें केवल एक नए सामाजिक द्वारा ही हल किया जा सकता है। प्रणाली।

प्र.8. कार्ल मार्क्स के अनुसार सामाजिक व्यवस्था क्या है?
What is social arrangement according to Karl Marx?

उत्तर मार्क्स के अनुसार, समाज कोई अस्थायी ढांचा नहीं बल्कि गतिशील परिपूर्णता है। इस परिपूर्णता को आर्थिक कारक ही गति प्रदान करता है। आर्थिक कारक पर अपने सम्पूर्ण सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत को आधारित करते हुए मार्क्स ने लिखा है, राजनीतिक, न्यायिक, दार्शनिक, साहित्यिक और कलात्मक विकास आर्थिक विकास पर निर्भर होता है।

प्र.9. आर्थिक संरचना से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by economic structure?

उत्तर परिवहन और संचार प्रणाली, औद्योगिक सुविधाएँ, शिक्षा और प्रौद्योगिकी सहित अंतर्निहित ढांचा, जो किसी देश या क्षेत्र को विनिमय मूल्य के साथ सामान, सेवाओं और अन्य संसाधनों का उत्पादन करने में सक्षम बनाता है।

प्र.10. कार्ल मार्क्स के अनुसार आर्थिक विकास के पाँच चरण कौन-से हैं?
Which are five steps of economic development according to Karl Marx?

उत्तर इस सोवियत व्याख्या के अनुसार, मार्क्स ने मानव सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं के पांच प्रगतिशील चरणों को रेखांकित किया था। 'वर्गहीन' आदिम समुदाय, शास्त्रीय काल का दास-आधारित समाज, दास प्रथा पर आधारित सामंती समाज, आधुनिक बुर्जुआ समाज।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. कार्ल मार्क्स के प्रमुख सिद्धान्त का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
Explain the major principles of Karl Marx in short.

उत्तर

कार्ल मार्क्स के प्रमुख सिद्धान्त
(Major Principles of Karl Marx)

वैज्ञानिक समाजवाद का प्रवर्तक कार्ल मार्क्स को माना जाता है। मार्क्स के पूर्ववर्ती विचारक जो नवयुग समाजवाद के सपने लिए हुए थे, उन्हें मार्क्स ने साकार बनाने का प्रयास किया। मार्क्स ने अपने विचारों को 'वैज्ञानिक समाजवाद' की संज्ञा दी है। उसने एक वैज्ञानिक की भाँति समाज के स्वरूप एवं विकास के नियमों की खोज करने का प्रयत्न किया था। इसलिए उनके विचारों को वैज्ञानिक कहा गया है। उसने यह पता लगाया कि समाज में परिवर्तन क्यों होते हैं तथा भविष्य में ये परिवर्तन किस प्रकार तथा किस दिशा में होंगे। अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मानव समाज में परिवर्तन अकस्मात् नहीं होते हैं, अपितु कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार होते हैं। कार्ल मार्क्स का दर्शन अत्यन्त ही विशाल तथा सुसम्बद्ध है। केटलिन के अनुसार, 'क्रान्तिकारी कदम वर्ग संघर्ष के सिद्धांत पर, वर्ग संघर्ष अतिरिक्त मूल्य के आर्थिक सिद्धान्त पर, आर्थिक सिद्धान्त इतिहास की आर्थिक व्याख्या पर तथा यह व्याख्या मार्क्स एवं हीगल के द्वन्द्ववाद पर तथा द्वन्द्ववादी भौतिकवादी विचारधारा पर आधारित है।' कार्ल मार्क्स के सिद्धांतों को ही 'मार्क्सवाद' कहा जाता है। इसके प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित हैं—

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
2. ऐतिहासिक भौतिकवाद
3. वर्ग संघर्ष का सिद्धांत
4. अलगाव का सिद्धान्त
5. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत
6. सर्वहारा वर्ग की तानाशाही
7. एक साम्यवादी समाज की दृष्टि।

पाठ्यक्रमानुसार कुछ सिद्धान्तों का वर्णन निम्नलिखित है—

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
2. ऐतिहासिक भौतिकवाद

TOUCH 'n PASS

3. वर्ग संघर्ष का सिद्धांत
4. अलगाव का सिद्धान्त।

प्र.2. कार्ल मार्क्स की मुख्य रचनाएँ लिखिए।
Write the main works of Karl Marx.

उत्तर

कार्ल मार्क्स की मुख्य रचनाएँ
(Main Works of Karl Marx)

मार्क्स ने अपने जीवनकाल में अनेक रचनाएँ लिखीं, उनकी दो सबसे महत्त्वपूर्ण रचनाएँ समाजवादी घोषणापत्र (Communist Manifesto) तथा दास कैपिटल (Das Capital) हैं। कार्ल मार्क्स की कुछ मुख्य रचनाएँ निम्नवत हैं—

1. समाजवादी घोषणापत्र (Communist Manifesto)
2. दास कैपिटल (Das Capital 1867)
3. दि पॉवर्टी ऑफ फिलॉसफी (The Poverty of Philosopy (1847)
4. दि कन्ट्रीब्यूशन टू दि क्रिटिक ऑफ पोलिटिकल इकोनोमी (The Critique of Political Economy (1859)
5. मूल्य, कीमत तथा लाभ [Value, Price and Profit (1865)]
6. फ्रांस का गृह-युद्ध [The Civil War in France (1870-71)]
7. गोथा कार्यक्रम की आलोचना [The Critic of Gotha Programme (1875)]
8. फ्रांस में वर्ग-संघर्ष [Class-Struggle in France (1848)]
9. दि जर्मनी आइडियोलोजी (The German Ideology)
10. पवित्र परिवार [The Holy Family (1844)]
11. हीगल के अधिकार दर्शन की आलोचना की भूमिका।
12. Inaugural Address to the International Working Men Association
13. Das Capital (2nd Part, Pub. by Angels)
14. Das Capital (3rd Part, Pub. by Angels).

प्र.3. द्वन्द्वात्मक विकास के नियमों का उल्लेख कीजिए।
Explain the laws of dialectical development.

उत्तर

द्वन्द्वात्मक विकास के नियम
(Laws of Dialectical Development)

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में प्रकृति का विकास कुछ नियमों के अनुसार होता है, जो निम्न हैं—

1. **विपक्ष की एकता और संघर्ष का नियम** (The Law of Unity and Interpretation of Opposites)—लेनिन के मतानुसार, विपरीत पक्षों के संघर्ष एवं एकता का नियम ही द्वन्द्ववाद का मूलतत्त्व है। इसी नियम द्वारा मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का उदय हुआ था। विकास आंतरिक संघर्ष से प्रेरित होता है। विरोधी तत्त्व जब तक संतुलित एवं सुप्त अवस्था में रहता है तब तक परिवर्तन असम्भव है, परन्तु जब कोई हावी होने लगता है तो उसके विरोध के लिए विभिन्न परिवर्तन होते हैं। जैसे—चुम्बक के दो-सिरे उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव होते हैं। ये स्पष्ट रूप से भिन्न एवं एक-दूसरे के विपरीत होते हैं। ये दोनों ध्रुव पृथक होते हैं। यदि दोनों को मध्य से काट दिया जाए तो, ऐसा प्रतीत होता है कि उसका एक हिस्सा दक्षिणी ध्रुव एवं दूसरा उत्तरी ध्रुव हो जाएगा। परन्तु ऐसा नहीं होता बल्कि दोनों टुकड़ों में ही उत्तरी एवं दक्षिणी उत्पन्न हो जाते हैं। प्रत्येक वस्तु में विरोधी तत्त्व उपलब्ध होते हैं। ठीक उसी प्रकार समाज में पूँजीपति एवं श्रमिक एक-दूसरे के विपरीत चरित्र होने के बावजूद एकतापूर्वक कार्य करके पूँजीवादी समाज का निर्माण करते हैं। परस्पर विरोधों का यह रूप अनिवार्यता नवीन एवं प्राचीन के मध्य संघर्षों को उत्पन्न करता है।
2. **परिणात्मक से गुणात्मक परिवर्तन के रूपान्तरण का नियम** (The Law of Transformation from Quantitative to Qualitative Change)—इसका द्वितीय नियम यह है कि मात्रा में अधिक अन्तर है तो गुणों में भी अन्तर होगा। **उदाहरण**—पानी का तापमान एक निश्चित सीमा तक बढ़ जाने पर वह वाष्पित हो जाता है। इस प्रकार यह नियम प्रकृति में होने वाले अचानक परिवर्तनों की व्याख्या करता है।

TOUCH 'n' PASS

3. **निषेध का नियम** (The Law of Negation)—इस नियम के अन्तर्गत भौतिक संसार के विकास की सामान्य स्थिति एवं प्रवृत्ति की व्याख्या की जाती है। इस नियम के अनुसार, यह प्रमाणित होता है कि विरोधी शक्तियों के संघर्ष से मूल वस्तु का निषेध हो जाता है एवं जो नवीन वस्तुएँ उत्पन्न होती है, वे पूर्व की अपेक्षा अधिक उन्नत एवं शक्तिशाली होती है।

प्र.4. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की आलोचना दीजिए।
Give the critique of dialectical materialism.

उत्तर

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की आलोचना
(Critique of Dialectical Materialism)

मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सिद्धान्त के निम्न तर्कों को आधार बनाकर आलोचनाएँ की गई हैं—

1. **आत्मतत्त्व की घोर उपेक्षा** (Blatant Disregard for Self)—मार्क्स मात्र पदार्थ एवं इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान को ही स्वीकृति प्रदान करता है एवं आत्मतत्त्व की मार्क्स ने उपेक्षा की है।
2. **भौतिकवाद की धारणा अस्पष्ट एवं गूढ़** (Concept of Materialism Vague and Mysterious)—अपने ग्रन्थों में मार्क्स ने भौतिकवाद की व्याख्या नहीं की उन्होंने यह सिद्ध करना उचित नहीं समझा कि पदार्थ किस प्रकार गतिशील होता है। इस सन्दर्भ में वेपर का मत है कि 'द्वन्द्ववाद की धारणा अत्यन्त गूढ़ एवं अस्पष्ट है।'
3. **भौतिकवादी दर्शन** (Materialistic Philosophy)—मार्क्स का विचार है कि प्रत्येक मानव की चेतना भौतिक तत्त्वों पर आश्रित होती है। भौतिक सन्तुष्टि ही मानव जीवन की आधारशिला एवं उनके श्रेष्ठतम जीवन का उद्देश्य है। आलोचकों के मतानुसार मात्र भौतिकवादी दर्शन के आधार पर आदर्शवादी दर्शन की सृष्टि नहीं हो सकती।
4. **चेतन द्वारा जड़ पदार्थों का संचालन** (Movement of Matter by Consciousness)—मार्क्स चेतन तत्त्वों का स्रोत जड़ पदार्थ एवं संसार के समस्त चेतन व्यक्ति को मानता है। उन जड़ पदार्थों में किसी भी प्रकार की गति नहीं होती है। मार्क्स का उन जड़ पदार्थों में स्वयं गतिशील तथा विकासशील होना तर्क संगत नहीं माना गया है।
5. **द्वन्द्वात्मक पद्धति से विकास एक कपोल कल्पना** (Development Through Dialectical Method is a Fantasy)—केरयू हाण्ट के मतानुसार, 'यद्यपि द्वन्द्ववाद हमें मानव विकास के इतिहास में मूल्यवान क्रान्तियों का दिग्दर्शन कराता है, लेकिन मार्क्स का यह दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता कि सत्य का अनुसन्धान करने के लिए यही एकमात्र पद्धति है।'

प्र.5. अलगाववाद के सिद्धान्त का उल्लेख कीजिए।
Explain the theory of alienation.

उत्तर

अलगाववाद का सिद्धान्त
(Theory of Alienation)

शाब्दिक अर्थ में अलगाव का अर्थ किसी अपने से अलग होने या सम्बन्ध विच्छेद करने से होता है। किसी वस्तु का पृथक्करण भी अलगाव कहलाता है। अलगाव एक ऐसी अनुभूति है जो किसी न किसी स्तर पर व्यक्ति के अलग होने की स्थिति को इंगित करती है। अलगाव व्यक्ति का अमानवीकरण स्वरूप है। अंग्रेजी भाषा में अलगाव के लिए Alienation शब्द प्रयोग में लाया जाता है। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अलगाव का प्रयोग व्यापक नहीं था, परन्तु 20वीं शताब्दी के मध्य में इस पद का प्रयोग दर्शनशास्त्र में होना प्रारम्भ हुआ।

हीगल के अनुसार, 'अलगाव वह स्थिति है जो व्यक्ति को या तो समाज में काटती है और उसके स्व (आत्मा) से जोड़ती है अथवा यह वह स्थिति है जो व्यक्ति को स्व से काटकर सामाजिकता से जोड़ती है।'

लिविस फ्यूर के अनुसार, 'अलगाव से अभिप्राय उस भावात्मक स्तर से है जिसमें ऐसा व्यवहार निहित रहता है कि व्यक्ति आत्मघातक रूप में कार्य करने पर बाध्य हो जाता है।'

अलगाव शब्द का प्रयोग मार्क्सवाद में व्यापक स्वरूप में परिलक्षित है। कार्ल मार्क्स ने अलगाव की अवधारणा पर अपने विचार रखे हैं। इन्होंने अलगाव के विकास के कई अवस्थाएँ बताई हैं। इनमें से मूल स्वरूप की व्याख्या मार्क्स ने की है। मार्क्स के अनुसार, 'अलगाव वह अवस्था है, जिसमें कामगार उसके स्वयं के श्रम से उपार्जित वस्तुओं से अपने आप को अलग रखता है। कामगार स्वयं को शक्तिहीन तथा गुलाम मानता है तथा स्वयं के गुणों को उपेक्षित करके उत्पादन प्रक्रिया में जुटा रहता है।'

TOUCH 'n PASS

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि अलगाव की अवधारणा में बराबर विविधता रही है। अलगाव एक ऐसा विघटन है जो स्थिति और सन्दर्भ में मनुष्य को आन्तरिक रूप में विशेष प्रकार से कट जाने का भाव उत्पन्न कराता है। इसमें निम्नलिखित तत्त्व दिखाई देते हैं—

1. अलगाव व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि स्तरों पर आक्रांत करता है। इन स्थितियों में व्यक्ति अलगाव को ही अपनी नियति मानकर अंतर्मुखी हो जाता है।
2. अलगाव का कोई एक निश्चित स्वरूप नहीं है, वह तो स्थितियों व जीवन के विविध रूप की अनुरूपता में विविध रूप में सन्निहित होता है।
3. अलगाव एक भ्रमकारी और विनाशकारी स्थिति है, जिसमें व्यक्ति अपने से दूर चला जाता है। उसके स्वयं के सामाजिक परिवेश में क्या हो रहा है, उससे वह अनजान रहता है।
4. मार्क्स के अनुसार अलगाव की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। प्रथम अवस्था में कामगार कारखाने के उत्पादन में अपना सहयोग देता है। इस अवस्था में वह अलगाव की भावना से विमुख होता है। अलगाव की द्वितीय अवस्था में उस कारखाने के मालिक का लाभ तो बराबर बढ़ रहा है, लेकिन कामगार अर्थात मजदूर की अवस्था बदत्तर होती जा रही है। इस अवस्था में उसे स्वयं से अलगाव होने लगता है। इस प्रकार के अलगाव को आत्म अलगाव कहते हैं। अलगाव की तृतीय अवस्था में एक से ज्यादा कामगार स्वयं के अलगाव का अनुभव करते हैं, फलस्वरूप यह अलगाव व्यक्तिगत न होकर सामूहिक अलगाव बनने लगता है। अलगाव की चरम अवस्था अर्थात् चतुर्थ अवस्था में जब कामगारों में श्रम से अलगाव की तीव्र भावना जाग्रत हो जाती है। इस भावना से एक ऐसा वातावरण उत्पन्न होने लगता है, जिससे कि उन्हें लगता है कि पूँजीवाद को खत्म करने का एकमात्र विकल्प क्रान्ति है अर्थात् क्रान्ति की भावना प्रबल हो जाती है।
5. अलगाव में व्यक्ति का भौतिक, आध्यात्मिक या मानसिक स्तरों पर जीवन के किसी पहलू किसी अन्य भौतिक, अभौतिक सम्बन्ध या स्वयं के व्यक्तित्व, सामर्थ्य या विचार शक्ति से कट जाने की भावना होती है।

प्र.6. अलगाव की विशेषताएँ लिखिए।
Write the characteristics of blienation.

उत्तर

अलगाव की विशेषताएँ
(Characteristics of Alienation)

अलगाव पर उपलब्ध साहित्य चाहे वह मार्क्सवादी हो या गैर-मार्क्सवादी, उनमें कुछ विशेषताएँ हैं, जिनका वर्णन इस प्रकार है—

1. **वैयक्तिक विघटन** (Personal Disorganisation)—इस प्रकार की अवस्था में व्यक्ति अपने समाज द्वारा निर्धारित नियमों आदि को नहीं मानता है तथा वह अपने स्वयं के लक्ष्यों और नियमों की प्राप्ति के लिए जागरूक होता है। इस स्थिति को ऐनोमिक (Anomic) कहा जाता है। ऐनोमिक की अवधारणा का प्रतिपादन दुर्खीम ने किया तथा इसका विकास रॉबर्ट मर्टन ने किया।
2. **सामाजिक अनुकूलन का अभाव** (Lack of Social Adaptation)—इस अवस्था में व्यक्ति पर उसके समाज का अंकुश नहीं रह जाता है, फलस्वरूप वह समूह या समाज के साथ अनुकूलन नहीं कर पाता है। वह अपने कार्य को बिना किसी भाव, संवेग तथा प्रतिबद्धता के बिना करता है।
3. **अलगाव एक दार्शनिक कोटि है** (Alienation is Philsophical Category)—अलगाव की अवधारणा का मूल हीगेल का दर्शनवाद ही था। अलगाव दर्शनवाद की वह कोटि है, जिसमें वैयक्तिक गतिविधियों का परिवर्तन वस्तुगत स्वरूप में होता है, इसके परिणामस्वरूप सभी मानवीय क्रिया-कलाप गौण हो जाते हैं तथा उस पर उत्पादन की प्रक्रिया भारी पड़ने लगती है।
4. **कामगार का अमानवीकरण** (Dehumanisation of Human)—पूँजीवादी व्यवस्था वस्तु के अधिक से अधिक उत्पादन पर बल देती है। परिणामस्वरूप इसमें उत्पादन से जुड़े व्यक्ति की संवेगों, इच्छाओं, भावनाओं आदि का कोई जुड़ाव नहीं होता है। उदाहरण—यदि कोई स्त्री अपने परिवार के लिए भोजन पकाती है, वहीं अगर वह स्त्री यही भोजन कहीं कामगार के रूप में बनाती हैं, तो उसमें उसके संवेग या भावनाएँ नहीं जुड़ी होती हैं। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया उसके लिए यांत्रिक मात्र है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अलगाव की स्थिति में व्यक्ति में अमानवीयता आ जाती है।

TOUCH N PASS

5. **स्वयं और दुनिया से पृथक्करण** (Dissociation from Self and World)—कुछ लेखकों के अनुसार अलगाव एक व्यक्तिगत समस्या है। इसमें व्यक्ति स्वयं को अपने समान और इर्द-गिर्द के लोगों से पृथक कर लेता है। इसमें व्यक्ति की मानसिक दशा अलगाव के स्वरूपों में अनुकूलित हो जाती है।
6. **वस्तुगत जीवन पद्धति** (Materialistic Way of Life)—यह भावना की वह अनुभूति है, जो व्यक्ति को अपने लोगों, समाज आदि से पूरी तरह से अलग कर देती है। इसके अतिरिक्त उसे अपने कार्य तथा समाज से भी विमुख कर देती है।
7. **अलगाव एक समाजशास्त्रीय कोटि है** (Alienation is a Sociological Category)—अलगाव में व्यक्ति प्राय: अपने समाज और सामाजिक संस्थाओं से विमुख हो जाता है। गैर मार्क्सवादी लेखक इस प्रक्रिया का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक स्तर पर भी करते हैं।

प्र.7. अलगाव के रूपों का उल्लेख कीजिए।
Explain the forms of alienation.

उत्तर

अलगाव के रूप
(Forms of Alienation)

मार्क्सवादी विचारधारा में अलगाव का अर्थ स्वयं के श्रम से अलग होने की भावना से होता है। मार्क्स के अनुसार अलगाव के चार स्वरूप हैं, जो निम्न हैं—

1. **श्रम के उत्पाद से अलगाव** (Alienation from the Product of Labour)—श्रम के उत्पाद से अलगाव तब होता है जब श्रमिक किसी ऐसे संगठन को वस्तुओं के उत्पादन के लिए श्रम प्रदान करते हैं जो दूसरों के लिए उत्पादों का उत्पादन करता है। वर्तमान समय में उत्पादन की प्रक्रिया अत्यधिक खण्डित है क्योंकि श्रमिक इन बात से अनभिज्ञ होते हैं, कि वे श्रम करके क्या उत्पादन कर रहे हैं। श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तुओं पर पूँजीपतियों का स्वामित्व होता है। पूँजीपति उत्पादित उत्पाद पर अपना नियंत्रण रखता है। इससे वह अपने धन और शक्ति में वृद्धि करता है।
2. **श्रम की प्रक्रिया से अलगाव** (Alienation from the Labour Process)—उत्पाद श्रम पर नियंत्रण की कमी के कारण उत्पादन या श्रम प्रक्रिया से अलगाव उत्पन्न हो जाता है। श्रमिक जितना अधिक उत्पादन करते हैं, उतना ही ज्यादा उत्पादक शक्ति पर पूँजीपति का नियन्त्रण और स्वामित्व होता है। उत्पादन से श्रमिकों का जुड़ाव होता है, परन्तु उस पर उनका नियंत्रण नहीं होता है, इसलिए श्रमिक का श्रम की प्रक्रिया से अलगाव उत्पन्न हो जाता है।
3. **मानवता से अलगाव** (Alienation from Humanity)—मानवता से अलगाव वह श्रम है, जिसमें मनुष्य की प्रवृत्ति रचनात्मक होती है तथा मनुष्य प्रकृति के साथ सम्बन्ध बनाने के लिए अपने चेतन जीवन का प्रयोग करके प्राकृतिक प्रबंधन के माध्यम से वस्तुओं और विचारों को वास्तविक बनाते हैं। श्रमिक का श्रम थोपा हुआ श्रम है, वह जितना अधिक उत्पादन करता है, वस्तु उतनी ही सस्ती बन जाती है। श्रमिक मानसिक रूप से कमजोर तथा शारीरिक रूप से थका होता है। इसके कारण उसका मानवता से अलगाव होने लगता है।
4. **समाज से अलगाव** (Alienation from Society)—स्वयं या पूँजीवादी समाज से उत्पन्न अलगाव को अन्य लोगों या समाज से अलगाव कहते हैं। इस प्रकार के अलगाव में लोगों के सामाजिक सम्बन्ध भी अलग-अलग पड़ जाते हैं। इसमें वह प्रतियोगिता शामिल है जिसमें श्रमिकों या समाज के सदस्यों द्वारा अपनी कार्यक्षमता में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने की होड़ लगी रहती है। प्राय: नियोजित और बेरोजगार लोगों के मध्य इस प्रकार के अलगाव का अनुभव होता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का विस्तार से वर्णन कीजिए।
Describe the dialectical materialism in detail.

उत्तर

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
(Dialectical Materialism)

मार्क्स के सम्पूर्ण चिन्तन का मूलाधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत है। इस सिद्धांत के प्रतिपादन में मार्क्स ने हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धति से द्वन्द्ववाद का विचार एवं फायरबाख या फ्यूरबैक (Feuer back) से भौतिकवाद का दृष्टिकोण ग्रहण किया। रूसी विद्वान वि० अफवास्येव के अनुसार, 'मार्क्स ने द्वन्द्ववाद का विचार हीगल से तथा भौतिकवाद का विचार फायरबाख से ग्रहण

TOUCH 'n PASS

किया और उनका शुद्धिकरण तथा समन्वय करके अपने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत का निर्माण किया।' इन दोनों के सम्मिश्रण ने द्वन्द्ववाद के सिद्धांत को बिल्कुल नवीन एवं मौलिक दिशा प्रदान की। इस नवीन सिद्धांत की उपयोगिता इस तथ्य से स्पष्ट होती है कि मार्क्स ने समस्त साम्यवादियों के लिए इसकी उपमा एक दिशा-निर्देश यन्त्र से दी जिसका प्रयोग करके साम्यवादी अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों के संचालन की दिशा निर्धारित करते हैं। इसकी सहायता से प्रत्येक साम्यवादी न केवल सही दृष्टिकोण अपना सकता है, सामाजिक घटनाओं के आन्तरिक सम्बन्धों को समझ सकता है, उनकी गति को पहचान सकता है और यह जान सकता है कि वर्तमान में उनका विकास किस दिशा में हो रहा है बल्कि वह यह भी जान सकता है कि भविष्य में उनका विकास किस दिशा में होगा। मार्क्स ने हीगल के द्वन्दात्मक आत्मवाद को अस्वीकार करते हुए स्वयं के दर्शन को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित किया। हीगल के मत में भौतिक वस्तुएँ, प्रकृति आदि आत्मा के विकार अर्थात् उससे उत्पन्न है, परन्तु मार्क्स कहते हैं जिसे हम आत्मा, मन अथवा मस्तिष्क कहते हैं, यह भौतिक शरीर से उत्पन्न वस्तु है, ठीक वैसे ही जैसे घड़ी के पुर्जों को एक निश्चित क्रम से संयुक्त कर देने पर उनमें गति उत्पन्न हो जाती है। मार्क्स का दर्शन इस प्रकार हीगल के दर्शन का एक विपरीत रूप है। मार्क्स ने स्वयं के ग्रन्थ 'दास कैपिटल' में लिखा है,' मैंने हीगल के द्वन्द्ववाद को सिर (मस्तिष्क, आत्मा) के बल खड़ा पाया, मैंने उसे पैरों के बल (पृथ्वी पर, भौतिकवाद के आधार पर) खड़ा कर दिया।' यदि आप रहस्यमय खोल में से तार्किक सार तत्त्व को ढूँढ निकालना चाहते हैं, तो आपको उसे (हीगल के द्वन्द्ववाद के) बिल्कुल ही उलट देना होगा।'

1. द्वन्द्ववाद का अर्थ
2. हीगल का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
3. कार्ल मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
4. मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विशेषताएँ
5. द्वन्द्वात्मक विकास के नियम
6. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की आलोचना

द्वन्द्ववाद का अर्थ (Meaning of Dialectism)

'द्वन्द्ववाद' शब्द अंग्रेजी के 'Dialectic' शब्द से बना है जो यूनानी शब्द 'Dialego' से लिया गया है। जिसका शाब्दिक अर्थ है—बातचीत करना या तर्क-वितर्क करना। द्वन्द्ववाद के अन्तर्गत प्राचीन समय में तर्क-वितर्क से प्रतिवादी द्वारा दिए गए तर्क एवं युक्तियों का विरोध करके 'सत्य' तक पहुँचने की कला थी। प्राचीन काल में ऐसे दार्शनिक थे जिनका मानना था कि विरोधी विचारों की अभिव्यक्ति एवं विरोधी का संघर्ष सत्य तक पहुँचने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है।

हीगल का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Hegel's Dialectism Materialism)

हीगल की द्वन्द्ववादी प्रणाली में 'बुद्धिसंगत तत्त्व' है। इसमें विकास का विचार निहित है। हीगल घटना को पुनर्जनन, विनाश एवं परिवर्तन के अनुक्रम के रूप में देखते हैं। हीगल के मतानुसार, 'संसार में प्रत्येक वस्तु की प्रतिवादी वस्तु अवश्य होती है। पहले 'वाद' (Thesis) होता है और तब उसका 'प्रतिवाद'। इन दोनों के संघर्ष से एक तीसरी वस्तु उत्पन्न होती है जिसे 'संवाद' कहते हैं।' 'संवाद' में ही 'वाद' एवं 'प्रतिवाद' दोनों की ही विशेषताओं का सम्मिलित रूप है। 'संवाद' इस अर्थ में 'वाद' एवं 'प्रतिवाद' इन दोनों का ही उल्लंघन करता है। 'संवाद' एक नवीन परिस्थिति है। किन्तु यह अस्थायी परिस्थिति होती है, जो प्रगति के समय स्वयं 'वाद' का रूप धारण कर लेता है। इसके बाद 'प्रतिवाद' उत्पन्न होता है। इसके पश्चात् इन दोनों का संघर्ष शुरू होता है। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप एक अन्य 'संवाद' उत्पन्न होता है, जो 'संवाद' से उच्चतम कोटि का होता है। यह प्रक्रिया लगातार गतिमान होती है एवं इसी कारण मानव जाति की प्रगति का क्रम चलता रहता है। हीगल द्वारा प्रदत्त द्वन्द्वात्मक प्रणाली उन्नतिशील है, परन्तु हीगल की दार्शनिक प्रणाली आदर्शवादी, आत्मवादी एवं भाववादी है। हीगल का यह विश्वास है कि समाज एवं प्रकृति का विकास 'निरपेक्ष विचार से ही शासित होता है। हीगल ने प्रत्येक तथ्य को उलट-पुलट दिया है, यथार्थ विकास के स्थान पर विचार आत्म विकास को और वस्तुओं के द्वन्द्ववाद के स्थान पर विचारों के द्वन्द्ववाद को बैठा दिया है।' मार्क्स द्वारा इन समस्त कमियों को दूर किया गया है।

कार्ल मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Karl Marx's Dialectical Materialism)

हीगलवादी द्वन्दवाद की कुछ 'छाया' स्पष्ट रूप से मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के रूप में प्रदर्शित होती है। इसलिए, मार्क्स द्वारा हीगल की द्वन्द्वात्मक विकासवाद को मान्यता दी जाती है, किन्तु स्वनिरपेक्ष विचार के सिद्धान्त को इन्होनें पूर्णत: अस्वीकार

TOUCH 'n' PASS

कर दिया। उनका विश्वास है कि हीगल ने स्वयं के द्वन्द्ववादी सिद्धान्त में प्रयोग सिद्ध एवं वास्तविक तथ्यों पर बिल्कुल भी ध्यान केन्द्रित नहीं किया है। इसकी उन्होंने अवहेलना की जिसमें उन्हें जीविकोपार्जन हेतु समस्त साधन उपलब्ध होते हैं। इसके साथ ही हीगल ने उस संसार को स्मृतिविहीन कर दिया जिससे उन्हें अपने समस्त विचार एवं उससे सम्बन्धित नियमों की अन्तर्वस्तु प्राप्त हुई थी। मस्तिष्क अपनी कल्पना के पंख लगाकर मुक्त आकाश में चाहे जितना उड़ सकता है, परन्तु उसके पांव सदा धरती पर रहेंगे, टहनी तो डाल पर ही उग सकती है। हीगल के अनुसार, मानव समाज की प्रगति लगातार द्वन्दवादी व्यवस्था से ही होती है। 'विचार' इस प्रगति का प्रमुख बिन्दु माना जाता है। उन्होंने बाह्य जगत को ही आभ्यन्तरिक विचारों का एक रूप माना है। परन्तु मार्क्स ने भौतिक जगत को ही कारण माना है एवं स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि भौतिक जगत ही आन्तरिक विचारों का जनक है। इस प्रकार, मार्क्स का द्वन्द्ववाद हीगल के द्वन्द्ववाद से पूर्णत: विपरीत है।

मार्क्स के मतानुसार, 'मेरी द्वन्दात्मक प्रणाली हीगल की प्रणाली से न केवल भिन्न है, वरन उससे बिल्कुल विपरीत है। हीगल के लिए चिन्तन की प्रक्रिया जिसे उन्होंने 'विचार' का नाम देकर एक स्वतन्त्र विषय के रूप में बदल दिया है, वास्तविक जगत् का सृजनकर्त्ता है और वास्तविक जगत् 'विचार' का बाह्य रूप है इसके विपरीत, मेरे लिए आदर्श मानव के मस्तिष्क द्वारा प्रतिबिम्बित और विचार के रूप में परिवर्तित भौतिक जगत् के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।'

ई० स्तेपानोवा के मतानुसार, यह सत्य है कि लुडविग फायरबाख की रचनाओं में हीगल के भाववादी दर्शन की आलोचना की गई थी, परन्तु उन रचनाओं ने मार्क्स को भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाने में सहयोग भी प्रदान किया था। लेकिन फायरबाख केवल प्राकृतिक घटनाओं की ही व्याख्या भौतिकवादी ढंग से किया करते थे, इतिहास, सामाजिक सम्बन्धों और राजनीति की व्याख्या करने में उनका दृष्टिकोण भाववादी ही बना रहा। मार्क्स ने फायरबाख को यह श्रेय तो दिया कि हीगल की आलोचना करने वाले वही सर्वप्रथम भौतिकवादी दार्शनिक थे। साथ ही उन्होंने फायरबाख के भौतिकवाद की सीमाओं और असंगतियों को भी बताया। मार्क्स का उद्देश्य, एक ऐसे सुसम्बद्ध एवं सुसंगत भौतिकवाद विश्वदर्शन की रचना करना था जो सामाजिक जीवन और प्रकृति दोनों पर लागू हो सके। मार्क्स ने विज्ञान, (मुख्य रूप से प्राकृतिक विज्ञान) द्वारा प्रदत्त सामग्री के आधार पर भौतिकवाद एवं द्वन्द्ववाद दोनों को समान सुसम्बद्ध विश्व दर्शन के रूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही हीगल के द्वन्द्ववाद की रूपान्तरण किया।

मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विशेषताएँ (Characteristics of Marxian Dialectical Materialism)

मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

1. **आंगिक एकता** (Organic Unity)—द्वन्द्ववाद के अनुसार सम्पूर्ण विश्व एक भौतिक दुनिया है जिसमें वस्तुएँ एवं घटनाएँ परस्पर एक-दूसरे से पूर्णत: सम्बन्धित होती हैं। प्रकृति के समस्त पदार्थों में परस्पर निर्भरता एवं आंगिक एकता मिलती है। प्रकृति के सभी पदार्थ एक-दूसरे के पूरक होते हैं एवं एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं।
2. **गतिशीलता** (Dynamic)—प्रकृति में उपस्थित प्रत्येक पदार्थ निरन्तर गतिमान है। गतिशीलता के कारण ही उसमें निरन्तर नवीन परिवर्तन होते रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप हमेशा नये पदार्थ का विकास होता है। इस प्रकार यह भौतिकवादी जगत् निरन्तर गतिशील, परिवर्तनशील एवं विकासशील है।
3. **परिवर्तनशीलता** (Changeable)—आर्थिक शक्तियों के कारण ही सामाजिक विकास होता है। जिस प्रकार भौतिक जगत परिवर्तनशील होता है। उसी प्रकार सामाजिक जीवन भी निरन्तर परिवर्तनशील है। ये समस्त प्रतिक्रियाएँ द्वन्द्ववाद के माध्यम से पूर्ण होती हैं।
4. **परिमाणात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन** (Quantitative and Qualitative Change)—प्रकृति के अन्तर्गत विकास एवं परिवर्तन मात्र परिमाणात्मक (Quantitive) ही नहीं होते अपितु गुणात्मक (Qualitiative) भी होते हैं। गुणात्मक परिवर्तन अचानक क्रान्तिकारी प्रवृत्ति के होते हैं। इसमें पुरानी वस्तुएँ नष्ट होकर नवीन वस्तुओं में परिवर्तित हो जाती हैं या उनका स्थान नई वस्तुएँ ग्रहण कर लेती हैं। जैसे—पानी गर्म हो जाने के पश्चात् एक विशेष तापमान पर आकर वाष्प का रूप ले लेता है, इस प्रकार गुणात्मक परिवर्तन होता है।
5. **नकारात्मक एवं सकारात्मक संघर्ष** (Negative and Positive Conflict)—मार्क्स के अनुसार, प्रत्येक वस्तु में सकारात्मक एवं नकारात्मक रूप में विरोध अथवा संघर्ष का गुण अवश्य मौजूद होता है। यही संघर्ष जगत विकास का

TOUCH 'n PASS

आधार है और इसके माध्यम से विरोधी पक्षों में परस्पर टकराव के कारण ही नये पदार्थों का जन्म होता है तथा नवीन वस्तुओं का अस्तित्व इसी संघर्ष में मौजूद होता है।

6. **क्रान्तिकारी प्रक्रिया** (Revolutionary Process)—गुणात्मक परिवर्तन के आने को क्रान्तिकारी प्रक्रिया माना जाता है। वस्तुओं में गुणात्मक परिवर्तन शीघ्रता या अचानक होता है।

प्र.2. ऐतिहासिक भौतिकवाद तथा काल मार्क्स की भौतिवादी की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
Describe in detail the historical materialism and materialism of karl Marx.

उत्तर

ऐतिहासिक भौतिकवाद
(Historical Materialism)

मार्क्स से पूर्व इतिहास की व्याख्या का आधार आदर्शवादी दृष्टिकोण था। उदाहरण के लिए हीगल ने जैसे मानवीय इतिहास के विचारों को ही इतिहास माना तथा ऑगस्ट कॉम्टे ने सामाजिक विकास को तीन स्तरों में विभाजित किया। वैसे ही मार्क्स ने इतिहास की आर्थिक या भौतिकवादी व्याख्या की है, इसलिए इसे 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' भी कहा जाता है। मार्क्स ने इतिहास की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी व्याख्या को ही 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' या 'इतिहास की भौतिक व्याख्या' नाम दिया। हीगल का मानना था कि निरपेक्ष विचार की अभिव्यक्ति सम्पूर्ण जगत में होती है तथा समाज और इतिहास में परिवर्तन का कारण विचारों में होने वाला परिवर्तन है। इसके विपरीत मार्क्स ने हीगल के सिद्धान्तों के विपरीत भौतिक पदार्थों के आधार पर ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या की है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन होने का कारण आर्थिक बताया है। यह सिद्धान्त सामाजिक जीवन के सामाजिक चेतना से सम्बन्धों का भी उल्लेख करता है तथा इसी सहसम्बन्ध के कारण प्रत्येक समस्या की व्याख्या की जाती है। कार्ल मार्क्स ने ऐतिहासिक भौतिकवाद की परिभाषा देते हुए कहा है कि 'ऐतिहासिक भौतिकवाद एक दार्शनिक विज्ञान है, जिसका सम्बन्ध जीवन के सार्वभौमिक नियमों से अलग सामाजिक विकास के विशिष्ट नियमों से है।'

स्टालिन के शब्दों में, 'समाज के इतिहास का विज्ञान ही ऐतिहासिक भौतिकवाद कहलाता है।'

एम० सिदोरोव के अनुसार, 'ऐतिहासिक भौतिकवाद वह दार्शनिक विद्या है, जो समाज का तथा उस व्याख्या के विकास और कार्य को शामिल करने वाले मुख्य नियमों का एक अखण्ड व्याख्या के रूप में अध्ययन करती है।' संक्षपे में, 'ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक विकास का दार्शनिक सिद्धान्त है।'

वेपर के अनुसार, 'इस सिद्धान्त का प्रारम्भ इस साधारण सत्य से होता है कि लोग जीवन की आवश्यकताओं जैसे—भोजन, वस्त्र, आवास आदि के बिना नहीं रह सकते हैं, परन्तु यह सब उन्हें प्रकृति स्वयं बनाकर नहीं सौंपती। इन्हें प्राप्त करने के लिए मनुष्य को श्रम करना पड़ता है। अत: कहा जा सकता है कि सामाजिक जीवन का आधार श्रम होता है। श्रम मनुष्य की एक प्राकृतिक आवश्यकता है। श्रम और उत्पादक कार्य-कलाप के बिना मानव जीवन सम्भव नहीं हो पाएगा। अत: भौतिक सम्पदा का उत्पादन सामाजिक विकास का मुख्य उपादान है।' मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'जर्मन विचारधारा' में ऐतिहासिक भौतिकवाद की मुख्य बातों का उल्लेख किया है। मार्क्स के पूर्ववर्ती इतिहासकारों ने यह माना कि कुछ विशेष तथा महान व्यक्तियों के कार्य का परिणाम ही इतिहास है। मानव के सामाजिक जीवन और उसके विकास के लिए प्राकृतिक या भौगोलिक पर्यावरण उत्तरदायी है। मार्क्स इन विचारों से सहमत नहीं है। मार्क्स कहते हैं कि इन कारकों का प्रभाव मानव जीवन पर पड़ता है, परन्तु ये निर्णायक कारक नहीं होते हैं।

मार्क्स के अनुसार, 'आर्थिक कारक ही वह वास्तविक कारक हैं जो इतिहास बनाते हैं।' किसी समाज या राजनीतिक संगठन के आर्थिक ढाँचे का ज्ञान प्राप्त करके न्याय व्यवस्था को समझा जा सकता है। आर्थिक कारकों से मानवीय क्रियाएँ प्रभावित होती हैं। मार्क्स की ऐतिहासिक भौतिकवाद की इस व्याख्या ने इतिहास की व्याख्या की दिशा में क्रान्ति ला दी। मार्क्स की इस खोज ने इतिहास को विज्ञान की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या में समस्त मानवीय इतिहास की दो आधारभूत बातों का उल्लेख किया है, जो कि निम्नांकित हैं—

1. जीवित रहने के साधनों जैसे- भोजन, वस्त्र और आवास का उत्पादन
2. प्रजनन क्रिया जिससे कि सामाजिक व्यवस्था बनी रहे।

मार्क्स ने अपने इस सिद्धान्त में बताया है कि सामाजिक विकास का न तो कोई ईश्वरीय प्रेरक कारण है और न तो सामाजिक विकास कोई सीधी सरल रेखा के समान है। द्वन्द्वात्मक प्रणाली द्वारा सामाजिक प्रगति सुनिश्चित हो सकती है तथा आर्थिक तत्त्व विकास की प्रक्रिया एवं उसकी अन्तिम दिशा को निर्धारित करती है।

TOUCH 'n' PASS

इतिहास की आर्थिक या भौतिकवादी व्याख्या
(Materialistic or Economic Interpretation of History)

मार्क्स सामाजिक परिवर्तन हेतु आर्थिक कारक को ही मुख्य मानते हैं। इसलिए उनके सिद्धान्त को आर्थिक निर्धारणवाद या आर्थिक सिद्धान्त कहा जाता है। उनके अनुसार मानव के जीवन पर जनसंख्या, भौगोलिक परिस्थितियों एवं अन्य कारणों का प्रभाव तो पड़ता है, किन्तु उन्हें परिवर्तन के निर्णायक कारक नहीं मान सकते हैं। निर्णायक कारक तो उत्पादन प्रणाली ही है। मार्क्स ने अपने सिद्धान्त में लिखा है कि व्यक्ति को जीवित रहने हेतु कुछ भौतिक मूल्यों (रोटी, कपड़ा, मकान आदि) की आवश्यकता होती है। इन मूल्यों या आवश्यकताओं को एकत्र करने के लिए व्यक्ति को उत्पादन करना होता है। उत्पादन हेतु उत्पादन के साधनों (Means of production) की आवश्यकता होती है। व्यक्ति उत्पादन कार्य जिन साधनों के माध्यम से करता है, वह प्रौद्योगिकी कहलाता है। प्रौद्योगिकी में छोटे-छोटे यंत्र और बड़ी-बड़ी मशीनें शामिल हैं। प्रौद्योगिकी में परिवर्तन होने पर उत्पादन प्रणाली में भी परिवर्तन आता है।

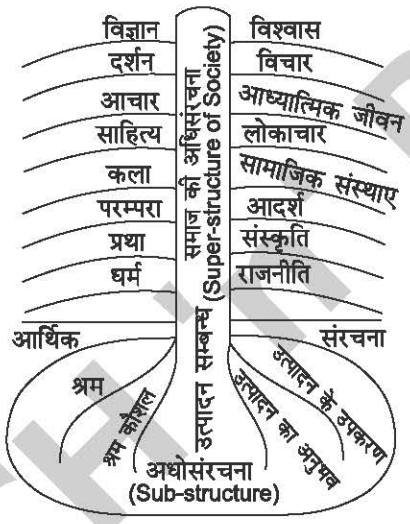

मार्क्स के अनुसार, स्वयं की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यक्ति उत्पादन प्रणाली (Mode of production) अपनाता है। उत्पादन प्रणाली दो पक्षों से निर्मित होती है, एक, उत्पादन के उपकरण अथवा प्रौद्योगिकी, श्रमिक, उत्पादन का अनुभव एवं श्रम-कौशल और दूसरा, उत्पादन के सम्बन्ध। हम जब किसी भी वस्तु का उत्पादन करते हैं, तो उसके लिए श्रम, औजार, अनुभव एवं कुशलता की आवश्यकता होती है। साथ ही जो सदस्य उत्पादन के कार्य में सम्बद्ध होते हैं, उनके मध्य कुछ आर्थिक सम्बन्ध भी उत्पन्न हो जाते हैं-जैसे, कृषक कृषि क्षेत्रों में उत्पादन करने के दौरान मजदूरों, लुहार, सुनार एवं उसके द्वारा उत्पादित वस्तु के खरीददारों से सम्बन्ध बनाता है। उत्पादन प्रणाली किसी भी अवस्था में स्थिर नहीं रहती बल्कि सदैव परिवर्तित होती रहती है। उत्पादन प्रणाली समाज का आधार है और उसी पर समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक-राजनीतिक संरचनाएँ, कला, विश्वास, प्रथाएँ, साहित्य, विज्ञान एवं दर्शन टिके हुए हैं। उत्पादन प्रणाली के समान ही समाज की 'अधिसंरचना' (Super-structure) भी उसी प्रकार की बन जाती है। 'अधिसंरचना' अर्थात् ऊपरी संरचना जिसमें धर्म, प्रथाएँ, राजनीति, साहित्य, कला, विज्ञान एवं संस्कृति आदि आते हैं। उत्पादन प्रणाली बदलने पर समाज की ऊपरी संरचना में भी परिवर्तन दिखायी देता है एवं सामाजिक संस्थाएँ परिवर्तित होती हैं और सामाजिक परिवर्तन घटित होता है। जब कृषि कार्य हल एवं बैलों के सहयोग से और उत्पादन कार्य लघु उद्योगों के अन्दर छोटे-छोटे औजारों से किया जाता था तो एक विशेष सामाजिक-संस्कृति, धर्म एवं राजनीति थी। जबकि वर्तमान में कृषि के लिए ट्रैक्टर एवं वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग तथा बड़ी-बड़ी मशीनों एवं कारखानों द्वारा व्यापक स्तर पर औद्योगिक उत्पादन किया जा रहा है। इससे एक अलग समाज स्पष्ट दिखाई देता है। इन दोनों अवस्थाओं की साहित्य, संस्कृति, धर्म, कला, राजनीति, दर्शन, प्रथा, नैतिकता एवं लोकाचारों में अधिक भिन्नता है। इस प्रकार उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन होने पर ही समाज में परिवर्तन स्पष्ट होता है। उत्पादन में कार्यरत लोगों के मध्य सम्बन्धों में भी परिवर्तन दिखाई देता है।

TOUCH 'n' PASS

आज युग में जो सम्बन्ध पूँजीपति व श्रमिकों में पाए जाते हैं वे कृषि युग के भूस्वामियों एवं मजदूरों के सम्बन्धों से इसी कारण भिन्न हैं।

मार्क्स के अनुसार, समाज की आर्थिक संरचना (Economic Structure) का निर्माण उत्पादन के सम्बन्धों के सम्पूर्ण योग से ही होता है। उदाहरण के लिए, कृषि युग में एक विशेष प्रकार की आर्थिक संरचना का निर्माण हुआ जिसमें जमींदार, कृषक एवं कृषि-श्रमिक के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्ध शामिल हैं, यह संरचना कृषि अर्थव्यवस्था कहलाती है। आधुनिक समय में आर्थिक संरचना कृषि युग की आर्थिक संरचना से भिन्न है, आज की आधुनिक संरचना में पूँजीपति, कारखाने के स्वामी एवं श्रमिकों के सम्बन्धों से मिलकर बनी है, यह औद्योगिक आर्थिक संरचना अथवा औद्योगिक अर्थव्यवस्था कहलाती है। संक्षेप में, मार्क्स के अनुसार सामाजिक परिवर्तन के लिए मुख्य रूप से उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन ही उत्तरदायी है, जब आर्थिक संरचना का निर्माण करने वाले उत्पादन के उपकरणों (प्रौद्योगिकी), उत्पादन के कौशल, ज्ञान, उत्पादन के सम्बन्ध आदि में परिवर्तन आता है तो सम्पूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक अधि-संरचना (Super-structure) भी बदल जाती है जिसे हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन के लिए मुख्यत: आर्थिक कारक को ही महत्त्वपूर्ण माना है। मार्क्स के वर्ग संघर्ष सिद्धान्त में भी आर्थिक परिस्थितियों के कारण यहाँ पर मुख्यत: पूँजीपति सामाजिक व्यवस्था को लिया गया है। मार्क्स ने समाज के वर्ग-संघर्ष में भी दो विरोधी तत्त्व रहते हैं, जिनके एक-दूसरे के मध्य संघर्ष के कारण सामाजिक प्रगति होती है। समाज में इन विरोधी तत्त्वों को मार्क्स 'वर्ग' का नाम देते हैं।

प्र.3. सामाजिक इतिहास का विभाजन बताइए एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
State the division of social history and evaluate critique of the historical materialism.

उत्तर

इतिहास का विभाजन
(History Division)

सामाजिक इतिहास में स्वतंत्र मनुष्य एवं दास, सामन्ती प्रभु एवं भूदास या मजदूर, कारीगर एवं उत्पाद कारीगर, मालिक एवं मजदूर वर्ग शामिल हैं। संक्षेप में मानव समाज का इतिहास दो प्रमुख वर्गों का शोषक एवं शोषितों का रहा है। ऐतिहासिक भौतिकवाद में विश्व के इतिहास की व्याख्या आर्थिक दृष्टिकोण से की जाती है। विश्व इतिहास को निम्नलिखित अवस्थाओं में समझ सकते हैं—आदिम साम्यवादी, दास, सामन्तवादी, पूँजीवादी एवं साम्यवाद।

1. **आदिम साम्यवादी समाज** (Primitive Communist Society)—मानव समाज के इतिहास का यह प्रथम चरण था। इसमें उत्पादन के साधनों पर पूर्ण नियंत्रण समुदाय का होता था। निजी सम्पत्ति की अवधारणा (Concept of Private Property) का अभाव था। यह समाज वर्गविहीन (Classless) समाज था, क्योंकि इसमें किसी तरह का शोषण नहीं था और न ही वर्ग व्यवस्था। इसके पश्चात समाज ऐशिमेटिक उत्पादन के साधनों के स्तर की ओर धीरे-धीरे अग्रसर हुआ।
2. **दास-मूलक समाज** (Slave Oriented Society)—**मार्क्स** के अनुसार, इस समाज में पहली बार मानव समाज के विकास में दो वर्गों का उदय हुआ—दास एवं मालिक वर्ग। विकास के इस स्तर में निजी स्वामित्व (Private Ownership) का सामूहिक स्वामित्व (Collective Ownership) के स्थान पर विकास हुआ। आर्थिक विकास इसी युग से तीव्र हुआ। इस स्तर से ही व्यापार, नगरों का निर्माण, धातुओं का प्रयोग आदि सम्भव हुआ।
3. **सामन्ती समाज** (Feudal Society)—इस युग में राजाओं का सत्ता पर पूर्ण अधिकार था। राजा ने स्वयं की सम्पूर्ण भूमि सामन्तों में विभाजित कर दी। सामन्तों का भूमिहीन कृषकों पर पूर्ण अधिकार होता था। मार्क्स इन भूमिहीन कृषकों को अर्द्धदास कहते हैं। अत: इस समाज में दो वर्ग थे—
   (i) सामन्त (Feudal Lords) और
   (ii) अर्द्धदास (Serfs)।
4. **पूँजीवाद समाज** (Capitalist Society)—यह समाज औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ। इस समाज में भी दो वर्ग मौजूद रहे—पूँजीपति (Capitalist) और श्रमिक या सर्वहारा (Proletariat)। यह वर्तमान समय का वर्ग है जिसमें उत्पादन के साधनों पर मुख्य अधिकार पूँजीपतियों का होता है, जबकि उत्पादन कार्य में मेहनत श्रमिकों की होती है। पूँजीपति सदैव श्रमिकों का शोषण करते हैं। इससे दोनों वर्गों के बीच वर्ग संघर्ष (Class Struggle) की प्रक्रिया चलती रहती है।

TOUCH 'n' PASS

मार्क्स ने विकास का अन्तिम चरण साम्यवादी समाज (Communism) को माना है। उनका मानना है कि वर्ग संघर्ष (Class Struggle) की प्रक्रिया इस समाज में समाप्त हो सकती है क्योंकि विकास की इस अवस्था में वर्ग विभाजन के साथ ही राज्य भी समाप्त हो जाएगा (Withering away of state)। परन्तु ऐतिहासिक अनुभवों से स्पष्ट होता है कि शीघ्र भविष्य में ऐसा समाज असम्भव है। मार्क्स प्रत्येक युग में दो वर्गों का उल्लेख करते हैं। एक वह वर्ग जो श्रम के द्वारा जीवनयापन करता है और दूसरा वह वर्ग जिसका उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व रहा है। परन्तु पूँजीवादी समाज से पूर्व समाज के दास, कृषि एवं श्रमिक वर्ग में उनकी आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ समान थीं लेकिन उनमें चेतना का अभाव था और इसीलिए मार्क्स ने इसे 'स्वयं में वर्ग' (Class in Itself) कहा। ये संगठित नहीं थे और इसलिए वह स्वयं के विरोध को वर्ग-संघर्ष तक नहीं ले जा सके। यह दोनों वर्ग अपने-अपने हितों को लेकर संघर्ष करते रहते हैं। किन्तु मार्क्स के अनुसार आगे पूँजीवाद में संघर्ष अवश्य होगा, क्योंकि यह समाज अतीत के समाज से कई अर्थों में भिन्न है। प्रत्येक वर्ग-संघर्ष का अन्त से नए समाज एवं नये वर्गों का उदय होता है।

मार्क्स के अनुसार समाज व्यवस्था का निर्धारण वर्गों की रचना एवं प्रकृति ही करती है। ऐतिहासिक रूप में देखें तो जैसे उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन हुआ वैसे ही समाज में भी परिवर्तन हुआ। कुछ विद्वानों के अनुसार मार्क्स को उद्विकासीय चिन्तक नहीं मानना चाहिए। मार्क्स का विचार कुछ स्तर तक उद्विकासीय इसलिए लगता है क्योंकि उन्होंने आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन के विचार को एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया। लेकिन मानव समाज के विकास के वैज्ञानिक खोजों ने महत्त्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन किए जिसमें कारीगरों को मजदूरों अथवा कारखाना मजदूरों में तथा सामन्तों को कारखाना मालिक में परिवर्तित कर उपर्युक्त मानव समाज के इतिहास में वर्ग संघर्ष न के बराबर या वस्तु वर्ग-संघर्ष का व्यापक रूप पूँजीवादी समाज में दिखाई देता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद की आलोचना (Critique of the Historical Materialism)

मार्क्स के 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या के सिद्धांत की पूँजीवादी समर्थकों ने निम्न तर्कों के आधार पर आलोचना व्यक्त की है—

1. **आर्थिक आधार पर सभी ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या सम्भव नहीं** (Not Possible to Explain All Historical Events on Economic Basis)—सभी ऐतिहासिक घटना का आधार आर्थिक तत्त्व नहीं माना जा सकता और यह कहना अनुचित है कि उत्पादन एवं वितरण की व्यवस्था का परिणाम ऐतिहासिक संघर्ष होता है। यद्यपि सन् 1914 में प्रथम विश्व युद्ध का कारण आर्थिक साम्राज्यवाद था, परन्तु इसमें राष्ट्रीय विचारों का संघर्ष भी उतना ही उल्लेखनीय था। क्रिस्टोफर लॉयड के शब्दों में, 'इतिहास की व्याख्या रोम के पतन और अभी-अभी हुए युद्धों के विस्फोट को नहीं समझ सकती। यह इतनी यान्त्रिक है कि मनोवैज्ञानिक आन्दोलनों तथा राष्ट्रीयता के विकास को नहीं समझा सकती। यह इतनी भौतिकवादी है कि इससे मस्तिष्क पर आदर्शों के प्रभाव को नहीं समझा जा सकता।'
2. **आर्थिक तत्त्व पर अनावश्यक बल** (Unnecessary Stress on Economic Element)—आलोचकों के अनुसार, मार्क्स ने समाज के राजनीतिक, सामाजिक एवं वैधानिक संरचना में आर्थिक तत्त्व को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया है। यह सत्य है कि वर्तमान दौर में आर्थिक तत्त्व पर ही आधारित नहीं होती है। आर्थिक तत्त्व के अलावा इस सम्बन्ध में अन्य तत्त्वों के द्वारा भी कार्य किया जाता है तथा सामाजिक जीवन को निर्धारित करने वाले इन अन्य तत्त्वों में भौगोलिक तत्त्व, सामाजिक वातावरण, मानवीय विचारों तथा अनुभूतियों का नाम लिया जा सकता है। प्रसिद्ध दार्शनिक बट्रेण्ड रसेल के विचारानुसार, 'राजनीतिक जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना भौतिक स्थितियों और माननीय भावनाओं की पारस्परिक क्रिया से निर्धारित होती है।'
3. **धर्म की उपेक्षा** (Disregard for Religion)—मार्क्स ने बदलाव लाने वाले तत्त्वों में धर्म जैसे तत्त्व की उपेक्षा की है, जबकि मानव इतिहास में धर्म एक प्रभावशाली तत्त्व रहा है। बहुत अधिक समय तक यूरोप में राजनीतिक परिवर्तनों को लाने में ईसाई धर्म की भूमिका उल्लेखनीय रही है।
4. **राजनीतिक सत्ता एकमात्र आर्थिक सत्ता नहीं** (Political Power is not Only Economic Power)—मार्क्स के अनुसार, राजनीतिक सत्ता का मूलकरण आर्थिक कारण ही है। वस्तुत: सर्वत्र आर्थिक कारण राजनीतिक सत्ता का मूल नहीं होते। स्पष्ट है नेपोलियन ने फ्रांस की राजनीतिक सत्ता सैनिक शक्ति के द्वारा ही प्राप्त की।
5. **इतिहास के निर्धारण में संयोग के तत्त्व की उपेक्षा** (Ignoring the Element of Chance in Determining History)—मानव इतिहास में कई परिवर्तन संयोग से ही होते हैं। संयोग ही था कि न्यूटन ने पेड़ से सेब गिरते देखा एवं

इसके आधार पर गुरुत्वाकर्षण के प्रमुख सिद्धांत का प्रतिपादन किया। अत: महत्त्वपूर्ण परिवर्तन संयोग से भी हो जाते हैं जबकि मार्क्स ने संयोग तत्त्व की उपेक्षा की है।

6. **इतिहास की धारा का साम्यवादी युग में आकर रुक जाना** (The Stream of History Stopped in the Communist Era)—इतिहास की भौतिक व्याख्या द्वारा मार्क्स ने यह साबित करने का प्रयत्न करते हैं कि 'साम्यवाद' विकास की अन्तिम अवस्था है, परन्तु 'साम्यवाद' की स्थिति को प्राप्त कर 'गतिशील भौतिक तत्त्व' अपनी गतिशीलता को क्यों छोड़ देता है? क्या उसके आगे का विकास असम्भव है? ऐसा प्रतीत होता है कि मार्क्स का भौतिक तत्त्व सोद्देश्यता को ग्रहण किए हुए अपने साम्यवादी उद्देश्य की प्राप्ति के साथ रुक जाता है। यह निष्कर्ष मार्क्सवाद की वैज्ञानिक मान्यताओं के विरोधाभाष में है।
7. **इतिहास की अवैज्ञानिक व्याख्या** (Unscientific Interpretation of History)—मार्क्स ने इतिहास की वैज्ञानिक व तर्क संगत व्याख्या नहीं की है। उसने अपने सिद्धांत को प्रमाणों के द्वारा पुष्टि नहीं की। उसने इतिहास के वैज्ञानिक तर्कसंगत अनुशीलन से पूर्व ही हीगल की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के आधार पर विचार कर लिया कि पूँजीवाद अपने विनाश की ओर उन्मुख है। उसने पूर्वाग्रहों से इतिहास का अध्ययन करके उसके नियम को खोजने का प्रयास किया।

प्र.4. वर्ग एवं वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए तथा वर्ग-संघर्ष की विशेषताओं एवं आलोचना पर प्रकाश डालिए।

Describe the theory of class and class-struggles and light on its criticism and characteristics.

उत्तर

वर्ग एवं वर्ग-संघर्ष
(Class and Class-Struggles)

मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार, मनुष्य सामान्यत: एक सामाजिक प्राणी है, किन्तु आधारभूत एवं स्पष्ट रूप में वह एक 'वर्ग प्रणाली' है। मार्क्स के कथनानुसार प्रत्येक युग में जीविकोपार्जन हेतु निम्न साधनों के कारण मनुष्य अलग-अलग वर्गों में वर्गीकृत हो जाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक वर्ग में एक विशेष वर्ग चेतना उत्पन्न हो जाती है। अर्थात् उत्पादन के नवीनतम तरीकों के आधार पर विभिन्न वर्गों का निर्माण हो जाता है। अत: एक समय की उत्पादन व्यवस्था ही उस काल के वर्गों की प्रकृति को निश्चित करती है।

1. वर्ग निर्माण के आधार
2. वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त
3. वर्ग संघर्ष और पूँजीवाद
4. वर्ग संघर्ष सिद्धान्त की विशेषताएँ
5. वर्ग संघर्ष सिद्धान्त की आलोचना

वर्ग निर्माण के आधार (Basis of Class Formation)

प्राचीन समुदायों में कोई विशेष वर्ग नहीं होता था एवं प्रकृति द्वारा प्रदान की गई वस्तुओं के प्रयोग से मनुष्य अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता था। क्योंकि उस समय साधनों का वितरण समान था, जिससे वर्गों की उत्पत्ति नहीं हुई थी। परन्तु शीघ्र ही साधनों में अन्तर होने के कारण समाज विभिन्न वर्गों एवं जातियों में वर्गीकृत हो गया। मार्क्स के मतानुसार, समाज स्वयं को वर्गों में विभक्त कर लेता है। यह विभाजन मुख्यत: शोषक एवं शोषित, धनी एवं निर्धन वर्ग, शासक व शासित वर्गों में भी होता है।

मार्क्स के विचारों के अनुसार आधुनिक युग में इन तीनों वर्गों की उत्पत्ति व्यापक पैमाने पर पूँजीवादी उद्योगों के उदय के परिणामस्वरूप हुई है। विभिन्न प्रकार के उत्पादन कार्यों में कार्यरत लोग निम्न समूहों में विभक्त हो जाते हैं। इनकी पूँजी कम ही होती है। इसी से ही ये अपना जीवनयापन करते हैं। इस प्रकार ये समूह 'मेहनतकश' या 'श्रमिक वर्ग' कहलाते हैं। समाज में इसके विपरीत एक अन्य वर्ग जिस पर पूँजी का अधिपत्य होता है, जिससे वह अन्य व्यक्तियों के श्रम को खरीदता है। वह पूँजीपति वर्ग कहलाता है। इस प्रकार मार्क्स का विचार है कि आर्थिक उत्पादन के स्तर पर समाज के दो मूल वर्ग होते हैं जैसे—दास एवं उन दासों के स्वामी। सामन्तवादी युग में इन दोनों वर्गों की विशेषता यह थी कि एक वर्ग के सदस्यों को आर्थिक उत्पादन के समस्त शक्तियों का अधिकार प्राप्त होता है जिसके बल पर दास वर्ग का शोषण होता है, परन्तु वास्तव में द्वितीय वर्ग के द्वारा ही मूल्यों या

TOUCH 'n' PASS

आर्थिक वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। जिसके कारण इनमें असंतोष की भावना उत्पन्न हो जाती है और इसके परिणामस्वरूप वर्गों में संघर्ष होने लगता है।

वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त (Theory of Class-Struggles)

वेपर के मतानुसार, मार्क्स के चिन्तन सिद्धान्त में वर्ग संघर्ष की अवधारणा का विशेष महत्त्व है। वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या एवं अतिरिक्त मूल्यों के सिद्धान्त पर आधारित है। मार्क्स के कथनानुसार, प्रत्येक समाज में दो विपरीत वर्ग उपस्थित होते हैं—शोषक एवं शोषित वर्ग। जब शोषक वर्ग की शोषण की सीमा अत्यधिक हो जाती है या शोषण नीति असहनीय हो जाती है। इस स्थिति में एक स्तर पर इन दोनों विपरीत पक्षों में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के लेखकों ने स्पष्ट रूप से बताया कि वर्ग-संघर्ष वर्ग आधारित समाजों में विकास के प्रति प्रेरक शक्ति है।

'अभी तक आर्विभूत समस्त समाज का इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास रहा है।'

'The history of all with into existing society is the history of class struggle'.

वर्ग संघर्ष और पूँजीवाद (Class Struggle and Capitalism)

मार्क्स के अनुसार, समाज का विकास आपसी सहयोग, समन्वय एवं वर्गों के मध्य शान्तिपूर्ण सम्बन्धों पर आधारित नहीं होता है अपितु यह विकास वर्गों के परस्पर संघर्षों के फलस्वरूप होता है। वर्ग संघर्ष के कारण ही समाज में अनेक परिवर्तन होते हैं। दास युग के अन्तर्गत स्वामी एवं दास, सामन्ती वर्ग में सामंत एवं किसान वर्ग शामिल होते हैं। वर्तमान युग में पूँजीवादी के अन्तर्गत जीविकोपार्जन के साधन के आधार पर समाज को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है—

1. पूँजीपति या बुर्जुआ वर्ग
2. श्रमजीवी या सर्वहारा वर्ग

पूँजीपति वर्ग श्रमिक या सर्वहारा वर्ग का शोषण करता है और इसलिए दोनों में संघर्ष होता है। श्रमिक वर्ग समाज का वह वर्ग होता है जो अपनी आजीविका के लिए पूर्ण रूप से एक मजदूर के रूप में अपनी मजदूरी पर निर्भर रहता है। मार्क्स के मतानुसार, श्रमिक एवं पूँजीपति, दोनों ही एक-दूसरे के पूरक होते हुए भी एक दूसरे के विरोधी हैं क्योंकि इनके हित समान नहीं है। पूँजीपति न्यूनतम मजदूरी देना चाहता है जिससे उसे अधिकतम लाभ मिल सके एवं मजदूर अधिक मजदूरी की इच्छा रखता है। अपने हितों के टकराव के कारण ही दोनों वर्गों में संघर्ष शुरू हो जाता है।

मार्क्स एवं एंगेल्स 'साम्यवादी घोषणापत्र' में लिखते हैं कि 'स्वतन्त्रत व्यक्ति तथा दास, अमीर तथा सामान्य जन, भूस्वामी तथा भूदास, पूँजीपति तथा दस्तकार, संक्षेप में उत्पीड़क तथा उत्पीड़ित, निरन्तर एक-दूसरे का विरोध करने तथा अनवरत्, कभी गुप्त रूप से तथा कभी खुलकर संघर्ष चलाते रहे हैं। इस संघर्ष की परिणति हर बार या तो समाज के क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण में हुई या संघर्ष करने वाले वर्गों के सर्वनाश में।'

मार्क्स ने आधुनिक पूँजीवादी युग को वर्ग-संघर्ष की पराकाष्ठा की अवस्था माना है। उत्पादन व्यवस्था में उत्पादनकर्त्ताओं की निरन्तर प्रतिस्पर्धा के कारण समस्त जमीन एवं पूँजी धीरे-धीरे कुछ गिने चुने लोगों के हाथों में सिमट जाएगी। मध्यम वर्ग आत्मनिर्भर न होने के कारण श्रमिक वर्ग बन जाता है जिससे इसका आकार बढ़ता जाएगा और ये पूँजीपति के उत्पादन क्षमता में वृद्धि करेंगे। श्रमिक या किसान वर्ग साधन एवं शक्ति के अभाव में बाजार से उचित लाभ नहीं प्राप्त कर पाएंगे तो देश के बाहर बाजार की खोज करना शुरू कर देंगे। सक्रिय श्रमिक वर्ग या सर्वहारा वर्ग अपने संगठन को मजबूत करने एवं अपने आन्दोलन को व्यापक बनाने के लिए आधुनिक साधनों का प्रयोग करने लगेंगे। इस प्रकार पूँजीपति एवं सर्वहारा वर्गों के मध्य संघर्ष उत्पन्न हो जाएगा।

वर्ग संघर्ष की भावना किस प्रकार पूँजीवाद के अंत की ओर ले जाती है, इसकी व्याख्या करते हुए कोकर लिखते हैं, 'पूँजीवादी व्यवस्था मजदूरों की संख्या बढ़ाती है, उन्हें वह संगठित समुदायों में एकत्रित कर देती है, उनमें वर्ग चेतना का प्रादुर्भाव करती है और उनमें परस्पर सम्पर्क तथा सहयोग स्थापित करने के लिए विश्वव्यापी पैमाने पर साधन प्रदान करती है। उनकी क्रय शक्ति को कम करती है और उनका अधिकाधिक शोषण करके उन्हें संगठित प्रतिरोध करने के लिए प्रेरित करती है।' मार्क्स का कहना है कि अब तक जिस वर्ग ने शोषक वर्ग से सत्ता छीनी वे स्वयं कालान्तर में शोषक बन गए। अत: अब तक विभिन्न क्रान्तियों के कारण इतिहास अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सका। किन्तु सर्वहारा एवं पूँजीपति के संघर्षों के परिणामस्वरूप जो क्रान्तियाँ हुईं, वे पिछली समस्त क्रान्तियों से अलग होंगी, इस कारण शोषक वर्ग का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा जिससे वर्ग विहीन समाज की स्थापना होगी।

TOUCH 'n PASS

वर्ग-संघर्ष सिद्धान्त की विशेषताएँ (Characteristics of Class Struggle Theory)

मार्क्स के अनुसार, 'इस संघर्ष में 'उसका' (पूँजीपति) विनाश और सर्वहारा वर्ग की विजय दोनों ही अवश्यम्भावी है।' उनके वर्ग संघर्ष से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—

1. समाज का विकास निम्न वर्गों के परस्पर संघर्ष का परिणाम है न कि आपसी सहयोग का
2. वर्ग संगठन एवं वर्ग चेतना के अभाव में क्रान्ति की भावना तीव्र नहीं होगी।
3. उत्पादन सम्बन्धों के आधार पर समाज में वर्ग विभाजन होता है। मुख्यत: समाज में दो वर्ग होते हैं जिनके हित परस्पर विरोधी पक्ष में उपस्थित होते हैं।
4. फ्रेडरिक पैटकिन्स के मतानुसार, 'उन्हें यह भी विश्वास दिलाया कि यह अन्तिम संघर्ष है और इसके बाद साम्यवादी समाज की स्थापना का सवेरा शुरू हो जाएगा।'

वर्ग-संघर्ष सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Class Struggle Theory)

वर्ग-संघर्ष सिद्धान्त की निम्न तर्कों पर आलोचना की गई है—

1. **मानव इतिहास संघर्ष का इतिहास नहीं है** (Human History is not a History of Struggle)—मार्क्स का सिद्धान्त वर्गों के संघर्ष पर अत्यधिक बल देता है। उनके अनुसार, 'वर्तमान समाज का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास है। इस तरह मार्क्स का यह विचार एकपक्षीय धारणा है। समाज में मुख्यत: संघर्ष के साथ ही सहयोग एवं एकता की प्रवृत्ति निहित होती है। समाज के निम्न वर्गों जैसे—किसान, श्रमिक, व्यापारी एवं कारीगर आदि सहयोग के कारण ही समाज में विद्यमान है, सहयोग के अभाव में समाज टूट जाता है।
2. **वर्ग की अस्पष्ट एवं दोषपूर्ण परिभाषा** (Unclear and Flawed Definition of Class)—मार्क्स द्वारा प्रदत्त परिभाषा दोषपूर्ण होती है। इसके अन्तर्गत श्रमिक एवं पूँजीपतियों के वर्ग पूर्णत: स्पष्ट नहीं है। वर्तमान समय में अनेक श्रमिक कम्पनियों का शेयर खरीदकर हिस्सेदार बन जाते हैं एवं अतिरिक्त लाभ कमाकर पूँजीपति बन जाते हैं।
3. **समाज में केवल दो ही वर्ग नहीं होते** (There are not only Two Classes in Society)—समाज में मार्क्स द्वारा दो ही वर्गों को मान्यता प्रदान की गई है जबकि इसमें एक अन्य वर्ग (मध्यम वर्ग)—वकील, इन्जीनियर, डॉक्टर, उच्च लोक सेवा के सदस्य एवं पत्रकार शामिल होते हैं। इनकी जनसंख्या निरन्तर बढ़ती जाती है। मार्क्स के समकालीन लेखकों के द्वारा इन पर ध्यान केन्द्रित किया गया, परन्तु मार्क्स ने इस पर ध्यान न देकर एक बड़ी गलती की है।
4. **मार्क्स की भविष्यवाणी का वैज्ञानिक आधार नहीं** (Marx's Prediction has no Scientific Basis)—वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त के विरुद्ध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आलोचना यह है कि सर्वहारा वर्ग की अंतिम विजय एवं उनके शासनवाद की स्थापना की भविष्यवाणी का कोई वैज्ञानिक तर्क नहीं है। इस पर लॉस्की ने मत दिया है कि 'हो सकता है कि पूँजीवाद के विनाश का परिणाम साम्यवाद न हो। बल्कि अराजकता हो जिसमें से एक ऐसे अधिनायकतन्त्र का जन्म हो सकता है जिसका कि सिद्धान्त में साम्यवादी आदर्शों से कोई सम्बन्ध न हो।'

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. कार्ल मार्क्स का जन्म किस वर्ष हुआ था?

(क) 1820 (ख) 1818 (ग) 1825 (घ) 1815

उत्तर (ख) 1818

प्र.2. कार्ल मार्क्स की किस रचना में सर्वप्रथम 'ऐतिहासिक भौतिकवाद एवं द्वन्द्वात्मक' (Historical Matrialism and Dialectical) के मूलभूत सूत्रों को प्रस्तुत किया गया था?

(क) दर्शनशास्त्र की दरिद्रता (ख) दास कैपिटल
(ग) समाजवादी घोषणापत्र (घ) पवित्र परिवार

उत्तर (क) दर्शनशास्त्र की दरिद्रता

TOUCH 'n' PASS

प्र.3. कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित प्रमुख सिद्धान्तों में सम्मिलित नहीं है—
(क) वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त (ख) ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त
(ग) अलगाववाद का सिद्धान्त (घ) सावयवी एकता का सिद्धान्त
उत्तर (घ) सावयवी एकता का सिद्धान्त

प्र.4. कार्ल मार्क्स की विश्व प्रसिद्ध कृति 'दास कैपिटल' (Das Capital) के प्रथम भाग का प्रकाशन किस वर्ष हुआ?
(क) 1865 (ख) 1866 (ग) 1867 (घ) 1864
उत्तर (ग) 1867

प्र.5. मार्क्स ने द्वन्द्ववाद का सिद्धान्त किससे ग्रहण किया?
(क) लॉक (ख) हीगल (ग) रूसो (घ) ग्रीन
उत्तर (ख) हीगल

प्र.6. कार्ल मार्क्स की कृतियों में शामिल नहीं है—
(क) दास कैपिटल (ख) दि जर्मनी आइडियोलॉजी
(ग) समाजवादी घोषणापत्र (घ) द प्रिन्सिपल्स ऑफ सोशियोलॉजी
उत्तर (घ) द प्रिन्सिपल्स ऑफ सोशियोलॉजी

प्र.7. मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विशेषता नहीं है—
(क) आंगिक एकता (ख) गतिशीलता
(ग) आत्मतत्त्व की घोर उपेक्षा (घ) परिवर्तनशीलता
उत्तर (ग) आत्मतत्त्व की घोर उपेक्षा

प्र.8. मार्क्स ने भौतिकवाद सम्बन्धी विचार किससे लिए थे?
(क) हीगल (ख) फायरबास (ग) एंजेल्स (घ) लेनिन
उत्तर (ख) फायरबास

प्र.9. समाजवादियों की बाइबिल कौन-सा ग्रंथ माना जाता है?
(क) दास कैपिटल (ख) कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो
(ग) द होली फैमिली (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) दास कैपिटल

प्र.10. कार्ल मार्क्स का जन्म किस देश में हुआ?
(क) अमेरिका (ख) फ्रांस (ग) इंग्लैण्ड (घ) जर्मनी
उत्तर (घ) जर्मनी

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VI

मैक्स वेबर
Max Weber

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मैक्स वेबर की प्रमुख रचनाएँ कौन-सी हैं?
What are the major works of Max Weber?

उत्तर मैक्स वेबर की अनेक रचनाएँ हैं जो निम्नलिखित हैं—

1. द प्रोटेस्टेंट एथिक्स एण्ड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म, सन् 1905
2. द रिलीजन ऑफ चाइना, सन् 1916
3. द रिलीजन ऑफ इंडिया, सन् 1916
4. इकोनॉमी एण्ड सोसायटी, सन् 1927
5. एसेज इन सोशियोलॉजी, सन् 1946
6. द हिन्दू सोशल सिस्टम, सन् 1950
7. एनाशैंट जुडेइज्म, सन् 1952
8. द मैथॉडोलॉजी ऑफ सोशल साइन्सेज, सन् 1946
9. जनरल इकोनॉमिक हिस्ट्री
10. द रेशनल एंड सोशल फाउंडेशन ऑफ म्यूजिक, सन् 1958

प्र.2. मैक्स वेबर की प्रमुख अवधारणाएँ एवं सिद्धान्तों को बताइए।
Explain the main concepts and the ories of Max Weber.

उत्तर वेबर की प्रमुख अवधारणाएँ एवं सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

1. सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त।
2. नौकरशाही।
3. आदर्श प्रारूप की अवधारणा।
4. सत्ता की अवधारणा।
5. सामाजिक वर्ग और प्रस्थिति।
6. पद्धतिशास्त्र।
7. धर्म का समाजशास्त्र।

प्र.3. सामाजिक क्रिया का अर्थ लिखिए।
Write the meaning of social action.

उत्तर वेबर के अवबोधात्मक समाजशास्त्र में सामाजिक क्रिया एक मुख्य मूल आधार है। सामाजिक क्रिया का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक दृष्टि से पूर्णत: अलग है। प्राय: यह स्पष्ट किया जाता है कि सामाजिक क्रिया व्यक्ति द्वारा समाज में रहकर किया गया उद्देश्यपूर्ण कार्य है। इसका आशय यह है कि क्रिया कभी भी उद्देश्यहीन नहीं होती तथा विभिन्न क्रियाओं के पीछे प्रेरणा अथवा कोई विशेष कारण होता है तथा इसके कुछ प्रभाव भी होते हैं। क्रिया एक मुख्य स्थिति से जुड़ी रहती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई सदस्य स्वयं के प्रयासों से अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करना चाहता है तो सहयोग तथा बाधक के रूप में विभिन्न समूह एवं संघ, व्यक्ति तथा उसके नियम उपस्थिति होते हैं। इन विभिन्न स्थितियों को हम 'क्रिया की स्थिति'

TOUCH 'n' PASS

(Situation of action) कहते हैं। इस प्रकार इस कथन की पुष्टि हो जाती है कि समाजशास्त्रीय रूप से क्रिया का सम्बन्ध प्रभाव, कारण, कर्त्ता स्थितियों से होता है। इनके अभाव में क्रिया सम्भव नहीं है।

प्र.4. शक्ति के स्त्रोत लिखिए।
Write the sources of power.

उत्तर वेबर द्वारा शक्ति के दो परस्पर विरोधी स्त्रोतों का उल्लेख किया गया है, जो निम्न प्रकार हैं—

1. वह शक्ति जो मुद्रा अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत औपचारिक मुक्त बाजार में पनपने वाले हितों के संयोजन से प्राप्त होती है। जैसे—कपास उत्पादकों का समूह अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु उत्पाद की आपूर्ति को नियंत्रित कर सकता है।
2. सत्ता की एक सीमित प्रणाली जो आदेश देने के अधिकार एवं उनका पालन करने के कर्त्तव्य को निर्धारित करती है। जैसे—सेना में एक सैनिक उच्च अधिकारी के आदेश का पालन करने हेतु बाध्य होता है। उच्च अधिकारी को संदेश आदेश प्रदान करने की शक्ति सत्ता की सीमित प्रणाली से प्राप्त होती है।

प्र.5. सत्ता के क्या कार्य हैं?
What are the functions of authority?

उत्तर सत्ता के निम्नलिखित कार्य होते हैं—

1. सत्ता को भिन्न परिस्थितियों में कार्य करना होता है।
2. सत्ता को लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की पूर्ति करनी होती है।
3. सत्ता ही विभिन्न स्थितियों; जैसे—समन्वय, प्रत्यायोजन, अनुशासन, नियंत्रण, बंधन आदि हेतु उत्तरदायी होती है।
4. सत्ताधारी स्वयं का कार्य स्वयं तथा अन्य अधीनस्थों के द्वारा करता है। इसके लिए विभिन्न संचार-साधनों, क्रियाविधियों आदि का प्रयोग किया जाता है।
5. सत्ता अपने समस्त कार्य निरन्तर विनिश्चित निर्माण प्रतिक्रियाओं द्वारा करती है।

प्र.6. सत्ता की कोई पाँच सीमाएँ लिखिए।
Write any five limitations of authority.

उत्तर 1. किसी भी राजसत्ता को यह अधिकार नहीं प्राप्त होता है कि वह किसी मनुष्य को उसकी सामान्य स्वतंत्रताओं, सम्पत्ति तथा जीवन जीने के अधिकार से वंचित रख सके। यह एक प्राकृतिक प्रतिबंध है।

2. सत्ता अपनी नीतियों, नियमों, संविधान कार्यक्रमों तथा योजनाओं से भी बंधी होती है जिनकी अवहेलना वह नहीं कर सकती।
3. किसी भी सत्ता द्वारा स्वयं के उद्घोषित आदर्शों एवं लक्ष्यों का उल्लंघन भी नहीं किया जा सकता है।
4. सत्ता का प्रयोग मनुष्य द्वारा किया जाता है एवं मानव क्षमताएँ भी सत्ता पर सीमाएँ लगाती हैं।
5. समस्त व्यवस्थाएँ मूल्यों, संस्कृति, परम्पराओं, रुढ़ियों तथा नैतिकताओं से बंधी होती हैं जिसका उल्लंघन उनके द्वारा नहीं किया जाना चाहिए।

प्र.7. सत्ता के आवश्यक तत्त्व संक्षेप में लिखिए।
Write the important elements of authority in short.

उत्तर 1. कोई शासक/स्वामी अथवा शासकों/स्वामियों का समूह।

2. कोई व्यक्ति/समूह जिस पर शासन किया जाता है।
3. प्रजा के आचरण को प्रभावित करने की शासक की इच्छा जो आदेशों के द्वारा व्यक्त होती है।
4. शासितों द्वारा प्रदर्शित आज्ञा-पालन के रूप में शासकों के प्रभाव का प्रमाण।
5. प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस बात को प्रमाणित किया जाना चाहिए कि शासितों द्वारा इस तथ्य को पूर्णत: स्वीकार कर लिया गया है कि शासकों के आदेशों का पालन किया जाना चाहिए।

प्र.8. सत्ता की कोई तीन विशेषताएँ लिखिए।
Write any three characteristics of authority.

उत्तर 1. सत्ता शक्ति का ही एक रूप है। शक्ति को जब सांस्कृतिक, वैधानिक एवं सामाजिक मान्यता प्राप्त हो जाती है तो वह सत्ता के रूप में प्रदर्शित होती है।

TOUCH 'n' PASS

2. सत्ता सदैव संस्थागत होती है। सत्ता के समस्त प्रकार कार्य-प्रणालियों, नियम, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, सांस्कृतिक परम्पराएँ, प्रथायें आदि से मुक्त होते हैं। अत: सत्ता कभी-भी वैयक्तिक नहीं होती है।
3. सत्ता विशिष्ट व्यक्ति से सम्बन्धित न होकर प्रस्थिति से सम्बन्धित होती है। जो व्यक्ति उस प्रस्थिति पर आसीन होता है वह सत्ता का प्रयोग करता है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सामाजिक क्रिया की विशेषताएँ बताइए।
Explain the characteristics of social action.

उत्तर

सामाजिक क्रिया की विशेषताएँ
(Characteristics of Social Action)

सामाजिक क्रिया की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. **सामाजिक क्रिया व्यवहार द्वारा प्रभावित** (Social Action Influenced by Behaviour)—सामाजिक क्रियाएँ व्यक्ति के भूत, वर्तमान तथा भावी व्यवहार द्वारा भी प्रभावित हो सकती हैं। **उदाहरण**-कोई व्यक्ति किसी दुश्मनी का बदला लेने के लिए किसी को मारता है तो मारने की क्रिया का सम्बन्ध आक्रान्त व्यक्ति की किसी क्रिया से प्रभावित था उसका यह प्रतिक्रिया स्वरूप है। ठीक इसी प्रकार कक्षा में प्रवक्ता के द्वारा लेक्चर देने के साथ-साथ नोट्स प्राप्त करना एक सामाजिक क्रिया है क्योंकि नोट्स लेने की यह क्रिया भी वर्तमान समय में प्रवक्ता द्वारा प्रदान लेक्चर की प्रतिक्रियास्वरूप हो रही है।
2. **प्रत्येक क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं** (Not Every Action is a Social Process)—समाज में घटित होने वाली समस्त क्रियाएँ सामाजिक क्रियाएँ नहीं होती हैं। सामाजिक क्रिया का सम्बन्ध एवं प्रभाव सामाजिक प्राणियों के साथ ही होता है। इस दृष्टिकोण से प्रत्येक प्रकार की क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं कही जा सकती है; जैसे-सामाजिक क्रिया धार्मिक व्यवहार करने की स्थिति में नहीं होती है। व्यक्ति जब ईश्वर का ध्यान लगाकर बैठ जाता है या अकेले में पूजा-अर्चना करता है तो इसे सामाजिक क्रिया नहीं कह सकते हैं। क्योंकि इस क्रिया में कोई अन्य व्यक्ति प्रभावित नहीं हो रहा है।
3. **मनुष्य का प्रत्येक सम्बन्ध सामाजिक नहीं** (Not Every Human Relationship is Social)—मनुष्यों के सभी सम्बन्धों का स्वरूप सामाजिक नहीं होता है। जब तक किसी भी व्यक्ति का व्यवहार दूसरों के व्यवहार से अर्थपूर्ण ढंग से सम्बन्धित एवं प्रभावित न हो। उदाहरण-दो व्यक्तियों में परस्पर यदि टकराव हो जाता है तथा वे दोनों एक-दूसरे से बिना कुछ बोले या बिना कुछ प्रतिक्रिया किए अपने-अपने कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं तो यह क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं कहलाती। यह सामाजिक क्रिया तभी कहलाएगी जब उनके मध्य परस्पर वाद-विवाद हो, क्योंकि तभी वे अपनी-अपनी प्रतिक्रिया या अन्त:सम्बन्धों के माध्यम से एक-दूसरे को प्रभावित करेंगे। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि समाजशास्त्र क्रिया के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति कोई भी क्रिया किन कारणों से कर रहा है। इसका समाज में कैसा प्रभाव पड़ेगा? अर्थात् क्रियाओं के मध्य कार्य कारण प्रभाव सम्बन्धों को ज्ञात किया जाता है।

प्र.2. सामाजिक क्रिया के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
Explain the types of social action.

उत्तर

सामाजिक क्रिया के प्रकार
(Types of Social Action)

वेबर ने सामाजिक क्रिया की अवधारणा को और अधिक स्पष्ट करने के लिए स्वयं की पुस्तक 'द थ्योरी ऑफ सोशल एण्ड इकनॉमिक ऑर्गेनाइजेशन' में इसे चार श्रेणियों में विभाजित किया है—

1. **तार्किक क्रियाएँ** (Logical Actions)—ये वे क्रियाएँ हैं जो कि सचेत रूप में किसी योजना के अन्तर्गत की जाती हैं तथा उनमें साधनों और लक्ष्यों का पूर्ण ध्यान रखा जाता है। इसके अतिरिक्त, इन क्रियाओं को करने में व्यक्ति अत्यधिक तर्क तथा विवेक से काम लेता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति एक नवीन उद्योग प्रारम्भ करता है, तो उसके लिए वह योजना बनाता है तथा क्रियाएँ करता है और उस योजना में उन साधनों का जिससे वस्तु प्राप्त होती है तथा वस्तु की

TOUCH 'n PASS

माँग का ध्यान रखता है। हम योजना बनाने में तथा साधनों को प्राप्त करने में तर्क की सहायता लेते हैं। इसी आधार पर इसे वेबर द्वारा तार्किक क्रिया कहा गया है।

2. **मूल्य-तर्कसंगत क्रियाएँ** (Value-Rational Actions)—ये क्रियाएँ मूल्य के संबंध में विशिष्ट रूप से तर्कसंगत होती हैं। इसमें क्रिया तर्कपूर्ण होती है परन्तु कर्त्ता इसमें क्रिया धार्मिक, व्यावहारिक मान्यताओं अथवा मूल्य के आधार पर करता है। वेबर के अनुसार, जब व्यक्ति मूल्य तर्कसंगत होते हैं, तो वे कुछ व्यक्तिपरक लक्ष्यों के लिए प्रतिबद्धता बनाते हैं और उन साधनों को अपनाते हैं जो इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में प्रभावी होते हैं। प्रत्येक समाज के कुछ मूल्य और मापदण्ड निश्चित होते हैं और इन्हीं मूल्यों एवं मापदण्डों के आधार पर उसे समझा जाता है। मूल्य और मापदण्डों की रक्षा प्रत्येक समाज करता है तथा समाज द्वारा व्यक्ति के व्यवहार को इस प्रकार निर्देशित किया जाता है कि वह उन्हीं मूल्यों और मापदण्डों के अनुसार ही व्यवहार करता है, जिसकी समान अपेक्षा रखता है। ये मूल्यात्मक क्रियाएँ समाज में प्राचीन से लेकर भविष्य में भी बनी रहेंगी। समाज में इन क्रियाओं को तर्क और बुद्धि के द्वारा समझा नहीं जा सकता है क्योंकि इनका स्वयं का मूल्य होता है। अपने से बड़ों के चरण स्पर्श करना लोगों का और माँग में सिन्दूर भरना एक विवाहित महिला का सामाजिक मूल्य है। इन्ही मूल्यों से व्यक्ति निर्देशित होता रहता है।
3. **प्रभावी या भावनात्मक क्रियाएँ** (Affective or Emotional Actions)—इन क्रियाओं को भावनाओं एवं संवेगों के आधार पर किया जाता है इसमें क्रियाओं का स्पष्टीकरण तर्क के आधार पर नहीं किया जाता है। अधिकांशत: ये भय, क्रोध, प्रेम और भ्रातृत्व आदि संवेगों के द्वारा पूर्ण की जाती हैं। यही तर्क है कि ये क्रियाएँ समाज विरोधी बन जाती हैं। वेबर द्वारा इनको अवशिष्ट क्रियाएँ भी कहा गया है।

प्र.3. शक्ति की विशेषताएँ लिखिए।
Write the characteristics of power.

उत्तर

शक्ति की विशेषताएँ
(Characteristics of Power)

शक्ति के मुख्य रूप से दो प्रमुख लक्षण होते हैं—
1. सम्बन्धमूलक (Relational)
2. स्थितिपरक (Situational)

1. **सम्बन्धमूलक** (Relational)—शक्ति हालाँकि एक व्यक्ति में दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता है किन्तु फिर भी यह एक साधारण व्यक्तिगत विशेषता न होकर एक मौलिक रूप से सम्बन्धमूलक या सम्बन्धपरक है। शक्ति सदैव दो या दो से अधिक कर्त्ताओं के मध्य क्रियाशील होती है। शक्तियुक्त कर्त्ता यदि अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करने में असमर्थ है तो उसकी शक्ति व्यर्थ हो जाती है। यह व्यवहार की तुलना एवं मूल्यांकन का आधार है; जैसे—एक धनाढ्य व्यक्ति के पास अधिक सम्पत्ति होती है एवं एक लेखक के पास अधिक प्रतिभा। इस प्रकार इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है? इसका निर्णय करना कठिन है। क्योंकि दोनों की क्षमताओं में भिन्नता होने पर किसी को भी शक्तिशाली नहीं कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि शक्ति इन दोनों की व्यक्तिगत विशेषता है लेकिन प्रभावित करने की उनकी क्षमता ज्ञात नहीं है। एक धनवान व्यक्ति को उस स्थिति में शक्तिशाली कहा जा सकता है जब उसके धन का प्रभाव लेखक की लेखनी पर पड़ेगा एवं लेखक को शक्तिशाली तब कहा जा सकता है जब उसकी लेखनी का प्रभाव धनवान व्यक्तियों पर पड़ेगा।
2. **स्थितिपरक** (Situational)—शक्ति स्थितिपरक होती है अर्थात् कर्त्ता द्वारा इसे विशेष स्थिति में ही प्रयुक्त किया जा सकता है; जैसे—एक न्यायाधीश अपनी शक्ति का प्रयोग अदालत के भीतर सम्बन्धित पक्षों में कर सकता है। ठीक इसी प्रकार एक लोकसभा अध्यक्ष मात्र संसद में सदस्यों पर अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है एवं सदन के बाहर संसद सदस्यों पर उनकी शक्ति निष्क्रिय है। हालाँकि शक्ति सम्बन्धपरक है फिर भी इसमें परिस्थितियाँ महत्त्वपूर्ण हैं।

प्र.4. सत्ता की आलोचना की व्याख्या कीजिए।
Explain the criticism of authority.

उत्तर

सत्ता की आलोचना
(Criticism of Authority)

सत्ता की आलोचनाएँ अग्रलिखित हैं—

TOUCH 'n PASS

1. मैक्स वेबर के सत्ता के सिद्धान्तों में वेबर के कथन ही स्वयं इसके विरोधी हैं। वेबर ने जहाँ एक तरफ सत्ता की व्याख्या 'संस्थागत शक्ति' या कानूनों द्वारा प्राप्त अधिकारों की शक्ति के रूप में की है। वहीं दूसरी ओर वेबर ने पारम्परिक सत्ता तथा करिश्माई (चमत्कारी सत्ता) को एक विशेष रूप प्रदान किया है। वास्तव में सत्ता के संस्थागत रूप के आधार पर मात्र कानूनी या वैधानिक सत्ता को ही न्यायोचित ठहराया जा सकता है किसी अन्य को नहीं।
2. वर्तमान समाज में मात्र वैधानिक सत्ता ही प्रभावी नहीं है बल्कि ऐसे समाजों में भी कुछ नेता स्वयं को करिश्माई सिद्ध करके सत्ता प्राप्ति में सफल हो जाते हैं।
3. वेबर का कथन है कि किसी भी समाज में एक समय में सत्ता के एक या एक से अधिक प्रकार उपलब्ध हो सकते हैं, किन्तु वास्तव में एक विशेष समय अवधि में किसी समाज में सत्ता का एक विशेष प्रकार ही अधिक प्रभावी होता है।

उपरोक्त आलोचनाओं के पश्चात् भी वेबर का 'सत्ता सिद्धान्त उनके राजनीतिक समाजशास्त्र का प्रमुख आधार है। वेबर वास्तव में सत्ता की अवधारणा एवं उसके विभिन्न प्रकारों के माध्यम से यह स्पष्ट करना चाहते थे कि कानूनी शक्ति के रूप में होने वाला परिवर्तन सामाजिक व्यवस्था के रूप में भी परिवर्तन उत्पन्न करता है। वेबर ने वैज्ञानिक आधार पर सत्ता की विवेचना करते हुए मानव व्यवहार के स्वरूप की व्याख्या की है एवं यह समझाते हैं कि कोई अधिकार न मिलने के पश्चात् भी लोग सत्ताधारी मनुष्य की श्रेष्ठता को स्वीकार कर लेते हैं।

प्र.5. शक्ति एवं सत्ता में सम्बन्ध बताइए।
State the relationship between power and authority.

उत्तर

शक्ति एवं सत्ता में सम्बन्ध
(Relationship between Power and Authority)

सत्ता में शक्ति का समावेश होता है चूँकि जब कोई व्यक्ति अन्य पर अपने व्यवहार थोपता है तो शक्ति का प्रदर्शन होता है। जहाँ पर सत्ता होती है वहीं शक्ति होती है। अधिकार एवं सत्ता के मध्य एक नियंत्रित सम्बन्ध होता है। सत्ता के अभाव में शक्ति असंस्थाकृत, असावधान, अनिश्चित होती है। सशक्त होने के कारण उनकी गरिमा के मानवीय आधार पर मानकीकरण किया जाता है। सत्ता को मात्र एक अभ्यास या साधना नहीं माना जाता है। सत्ता एक विशेष प्रकार की कार्यकारी कार्यवाही करता है। सत्ता एवं शक्ति में विशेष प्रकार का समावेश राजनीति में देखा जा सकता है। एम० जी० स्मिथ ने इस सम्बन्ध में कहा है, "शक्ति के बिना सत्ता अप्रभावशाली होती है। बिना सत्ता के शक्ति प्रभुत्व स्थापित कर सकती है किन्तु वह असंस्थाकृत रहती है। यहाँ कार्य और शक्ति में एकीकरण हो जाता है।" एक राजनीतिक संगठन में 'सत्ता-शक्ति सातत्य' स्थापित किया जाता है।

सत्ता तथा शक्ति में परस्पर सम्बन्ध होता है किन्तु ये स्वतंत्र हो जाते हैं। राजनीतिक व्यवस्थाओं में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ सत्ता किसी अन्य व्यक्ति के हाथों में तथा शक्ति किसी अन्य व्यक्ति के हाथों में है। इन दोनों में परस्पर संतुलन स्थापित करना राजनीतिक व्यवस्था की एक शाश्वत समस्या है। इसको सफल नेतृत्व द्वारा सुलझाया जा सकता है। इसी आधार पर सत्ता का अनुपालन होता है इससे सत्ताधारियों के अधिकारों के अधीनस्थों की स्वीकृति प्राप्त होती है। मैक्स वेबर ने सत्ता के विषय में तीन प्रमुख अस्पष्टताओं को उल्लेखित किया है किन्तु सत्ता के अनेक प्रकार मिश्रित रूप में होते हैं। सत्ता एवं शक्ति को राजनीतिक संगठनों में प्रायः संयुक्त किया जाता है।

चूँकि लोकप्रिय शासकों द्वारा भी सत्ता हेतु शक्ति का प्रयोग किया जाता है तथापि आवश्यकता से अधिक शक्ति के प्रयोग से सत्ता की हानि होती है। भिन्न-भिन्न समूहों में सत्ता एवं शक्ति अचानक या धीरे-धीरे विभिन्न व्यक्तियों के समूहों में परिवर्तित होते रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप वे केन्द्रित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए-सोवियत रूस एवं संयुक्त राज्य अमेरिका आदि।

प्र.6. प्रोटेस्टेंट धर्म का यूरोप के आर्थिक जीवन पर प्रभावों का उल्लेख कीजिए।
Explain the impacts of protestantism on the economic life of Europe.

उत्तर

प्रोटेस्टेंट धर्म का यूरोप के आर्थिक जीवन पर प्रभाव
(Impact of Protestantism on the Economic Life of Europe)

प्रोटेस्टेंट धर्म के वे आचार जो यूरोप के आर्थिक जीवन को प्रभावित करते हैं वह निम्नलिखित हैं—

1. **कार्य ही पूजा** (Work is Worship)—प्रोटेस्टेंट धर्म में कार्य करना श्रेष्ठ माना जाता है इसके विपरीत कैथोलिक धर्म में परिश्रम करना पाप एवं दण्ड माना जाता है। इस सन्दर्भ में कैथोलिक धर्म के साथ कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि आदम एवं ईव जब स्वर्ग में थे तो ईश्वर ने उन्हें एक पेड़ के फल को खाने हेतु मना किया था। ईश्वर द्वारा प्रदान इस पेड़ के

TOUCH 'n' PASS

फल को जो भी व्यक्ति खाएगा उसे अच्छे एवं बुरे का ज्ञान हो जाएगा। एक दिन आदम एवं ईव ने इस पेड़ के फल खा लिये जिस कारण ईश्वर इन दोनों से रूष्ट हो गए एवं इन दोनों को स्वर्ग से बहिष्कृत करते हुए धरती पर जाने का आदेश दिया और उनको श्राप दिया कि ईव एवं उसकी पुत्रियों के दो सन्तानें जन्म लेगी तथा आदम एवं उसके पुत्र परिश्रम कर पसीना बहाकर, रोजी-रोटी कमायेंगे। अत: इस कथा के माध्यम से यह स्पष्ट है कि कैथोलिक धर्म में परिश्रम करते हुए जीवनयापन करना अच्छी बात नहीं माना गया अपितु यह दण्ड है, वहीं प्रोटेस्टेंट धर्म परिश्रम करने पर बल देता है जिसे पूँजीवाद के विकास में एक विशेष योगदान माना जाता है।

2. **व्यावसायिक आचार** (Business Ethics)—प्रोटेस्टेंट धर्म में यह माना जाता है कि मनुष्य के जीवन में प्राप्त व्यावसायिक सफलता एवं असफलता के आधार पर यह निश्चित होता है कि मृत्यु के पश्चात् उसकी आत्मा स्वर्ग की भागीदार होगी या नरक की। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को यह नैतिक शिक्षा प्रदान की जाती है कि वह अपने कठिन परिश्रम से सफलता प्राप्त करे। इसी से ईश्वर प्रसन्न होते हैं, यही वह माध्यम है जिससे स्वर्ग व मुक्ति के द्वार खुल जाते हैं न कि मात्र गिरजाघर जाने से। पूँजीवाद को विकसित करने में प्रोटेस्टेंट आचार ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। परिश्रम, व्यावसायिक सफलता, उत्साह आदि पूँजीवाद के लिए अति आवश्यक है।
3. **ब्याज वसूलने की छूट** (Waiver of Interest)—प्रोटेस्टेंट धर्म में धन से और अधिक धन कमाना श्रेष्ठ माना जाता है तथा कोई मनुष्य अपने पैसों को ब्याज पर देकर भी धन कमा सकता है अर्थात् पैसे से पैसा कमा सकता है। इसके विपरीत इस्लाम धर्म में या कैथोलिक धर्म में ब्याज पर पैसा देकर धन कमाने की स्वीकृति से पूँजीवाद को बढ़ावा मिलता है।
4. **अवकाश पर रोक** (With holding of Leaves)—बिना किसी कारण के कार्यक्षेत्र से अधिक दिनों तक अवकाश लेना प्रोटेस्टेंट धर्म में अनुचित माना जाता है। पूँजीवाद की सफलता हेतु यह आवश्यक है कि कर्मचारी ज्यादा से ज्यादा कार्य करें एवं कम से कम अवकाश लें।
5. **मद्यपान पर रोक तथा ईमानदारी को बढ़ावा** (Prohibiting Alcoholism and Promoting Honesty)—प्रोटेस्टेंट धर्म में मदिरा का पान करना एवं मदिरा का सेवन करके कार्य पर जाना दोनों को अनुचित तथा ईमानदारी से कार्य करने को उचित माना जाता है। मदिरा का पान करके मशीन आदि जोखिम भरी जगह पर कार्य करना खतरों से खाली नहीं है। अत: मदिरा सेवन पर प्रतिबंध लगाकर पूँजीवादी यह धर्म व्यवस्था को प्रोत्साहित करता है।

प्र.7. पूँजीवाद तथा प्रोटेस्टेंट नीति में सम्बन्ध बताइए।
Explain the relationship of capitalism and protestant ethics.

उत्तर

पूँजीवाद तथा प्रोटेस्टेंट नीति का सम्बन्ध
(Relationship of Capitalism and Protestant Ethics)

वेबर को 'प्रोटेस्टेंट नीतियों' एवं 'पूँजीवाद की आत्मा' का अध्ययन करने पर इनके आधारों में अनेक असमानताएँ अनुभव हुईं, वेबर ने इसी आधार पर उसके परिणामों एवं कारणों का व्याख्यान किया। वेबर द्वारा प्रोटेस्टेंट नीति को कारण तथा पूँजीवाद को परिणाम माना गया है।

16वीं एवं 17वीं शताब्दी में धर्म संघों एवं इसकी मान्यताओं में होने वाले परिवर्तनों द्वारा मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन वेबर द्वारा किया गया। अनेक धर्मों एवं संघों द्वारा आरम्भ में धन तथा भौतिक वस्तुओं को संग्रहित करके रखना उचित माना गया, परन्तु कुछ समय पश्चात् ही इसे धार्मिकता की श्रेणी से हटाकर अधार्मिकता की श्रेणी में रख दिया गया तथा वैराग्य को ही उचित माना गया।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को बैराग्य की धारणा ने प्रभावित किया। ऐतिहासिक प्रमाणों को आधार बनाते हुए मैक्स वेबर ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि यूरोप के अनेक देशों में पूँजीवाद के आरम्भ तथा विकास हेतु प्रोटेस्टेंट की नीतियाँ सहायक रही हैं। प्रोटेस्टेंट धर्म की नैतिक शिक्षा धीरे-धीरे इसके उपरान्त समस्त अनुयायियों के जीवन में ढल गई एवं वे परिश्रम से आजीविका कमाने को उचित समझने लगे यही धारणा पूँजीवाद के विकास में अतिमहत्त्वपूर्ण रही है।

TOUCH 'n PASS

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मैक्स वेबर के अवबोधात्मक (वरस्टेहन) समाजशास्त्र की अवधारणा का विस्तार से वर्णन कीजिए।
Describe the Verstehen Sociology of Max Weber in detail.

उत्तर

मैक्स वेबर का अवबोधात्मक (वरस्टेहन) समाजशास्त्र
(Verstehen Sociology of Max Weber)

लगभग 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में समाजशास्त्र के चिन्तन की एक नवीन धारा का विकास हुआ जिसमें सामाजिक घटनाओं के व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन को महत्त्व दिया गया। जिसे 'अवबोधात्मक समाजशास्त्र' के नाम से जाना जाता है। थियोडोर अबेल ने लगभग सन् 1929 में वेबर के समाजशास्त्र को 'अवबोधात्मक समाजशास्त्र' की संज्ञा प्रदान की। जर्मन भाषा में इसे 'वरस्टेहन समाजशास्त्र' (Verstehen Sociology) कहा जाता है। वरस्टेहन (Verstehen) का अर्थ होता है 'अवबोधन' (Understanding) समझ अर्थात् व्यक्ति के व्यवहार के व्यक्तिनिष्ठ अर्थ को जानना या समझना। 19वीं शताब्दी के अन्त में, जर्मन दार्शनिकों द्वारा सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग सोच के विशिष्ट तरीकों की पहचान करने हेतु करना प्रारम्भ किया गया। इसके अन्तर्गत अन्य व्यक्तियों के व्यवहार को भली-भाँति समझने हेतु उसके साथ वार्तालाप करने पर बल दिया गया। मैक्स वेबर को 'अवबोधात्मक समाजशास्त्र का जनक' माना जाता है क्योंकि वेबर ने सामाजिक घटनाओं के 'व्यक्तिनिष्ठ अर्थ' को जानने पर विशेष बल दिया। वेबर से पूर्व भी विल्हेल्म डिल्थी (Wilhelm Dilthey) तथा जॉन गुस्टाव ड्रायसेन (Johann Gustav Droysen) आदि ने भी सामाजिक घटनाओं के 'अवबोध' पर चर्चा की थी। अवबोधात्मक समाजशास्त्र का व्याख्यान वेबर द्वारा चार प्रमुख बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है जो निम्नलिखित हैं—

1. अवबोधात्मक समाजशास्त्र की विषयवस्तु
2. अवबोधात्मक समाजशास्त्र का उद्देश्य
3. अवबोधात्मक समाजशास्त्र की पद्धति
4. अवबोधात्मक समाजशास्त्र एक विज्ञान के रूप में।

1. **अवबोधात्मक समाजशास्त्र की विषयवस्तु** (Subject Matter of Verstehen Sociology)—मैक्स वेबर के अनुसार, अवबोधात्मक समाजशास्त्र की विषयवस्तु सामाजिक क्रिया है। मैक्स वेबर का कथन है, "समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो सामाजिक क्रिया का अर्थपूर्ण बोध कराने का प्रयत्न करता है जिसमें इसकी गतिविधि एवं परिणामों के कारण सहित इसकी व्याख्या प्रस्तुत की जाती है।"
   सामाजिक क्रिया के 'व्यक्तिनिष्ठ अवबोध' पर मैक्स वेबर द्वारा विशेष बल दिया गया। वेबर यह मानते हैं कि समाजशास्त्र एक संस्कृति विज्ञान है इसलिए सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी इसके द्वारा महत्त्वपूर्ण सामाजिक घटनाओं का अध्ययन कराया जाता है। इसलिए इस रूप में सामाजिक क्रिया अवबोधात्मक समाजशास्त्र की विषयवस्तु है। वेबर सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था का आधार सामाजिक क्रिया को मानते हैं क्योंकि वह कहते हैं कि किसी भी सामाजिक संगठन या घटना का आरम्भ सामाजिक क्रिया से ही होता है। जैसे—किसी संस्था या समूह समिति का प्रारम्भ भी सामाजिक क्रिया से प्रारम्भ होता है। वेबर का कथन है, "जिस समय समाजशास्त्रीय सन्दर्भ में किसी राज्य, राष्ट्र निगम, परिवार या किसी सेना की टुकड़ी या इसी तरह के अन्य समूहों का उल्लेख किया जाता है उस समय उसका आशय व्यक्तियों की वास्तविक या सम्भव सामाजिक क्रियाओं का किसी-न-किसी रूप में विकास ही होता है।"
   वेबर ने समाजशास्त्र को मात्र सामाजिक क्रिया के अध्ययन तक ही सीमित नहीं रखा है बल्कि सम्पूर्ण क्रिया की प्रक्रिया तथा परिणाम का भी अध्ययन करना शामिल किया है। सामाजिक क्रिया के परिणामस्वरूप सामाजिक सम्बन्ध बनते हैं। इसी के फलस्वरूप राज्य, राष्ट्र, परिवार तथा सामाजिक संगठन एवं सामाजिक संरचनाओं का निर्माण होता है। इसलिए ये सभी समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र में शामिल हैं।
2. **अवबोधात्मक समाजशास्त्र का उद्देश्य** (Aim of Verstehen Sociology)—मैक्स वेबर के अनुसार, अवबोधात्मक समाजशास्त्र का उद्देश्य सामाजिक क्रिया का अवबोधन, उस क्रिया को समझना तथा उसके विषय में जानकारी प्राप्त करना है। किसी भी सामाजिक क्रिया को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है—
   (i) वस्तुनिष्ठ अर्थ (ii) तत्त्व-दार्शनिक अर्थ (iii) व्यक्तिनिष्ठ अर्थ

TOUCH 'n' PASS

(i) **वस्तुनिष्ठ अर्थ** (Objective Meaning)—वस्तुनिष्ठ या तटस्थ भाव से, वस्तुओं को वैसे ही देखें जैसे वे प्रत्यक्षवादी या वैज्ञानिक रूप में उपस्थित हैं।

(ii) **तत्त्व-दार्शनिक अर्थ** (Meta-philosophical meaning)—अर्थात् जिस रूप में तर्कशास्त्री का दृष्टिकोण होता है या तत्त्व-दार्शनिक देखते हैं।

(iii) **व्यक्तिनिष्ठ अर्थ** (Subjective Meaning)—व्यक्तिनिष्ठ अर्थात् वह अर्थ जो क्रिया के कर्त्ता के द्वारा लगाया जाता है। मैक्स वेबर के समाजशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक क्रिया के इसी व्यक्तिनिष्ठ अवबोध को ज्ञात करना है। मैक्स वेबर द्वारा व्यक्तिनिष्ठ अर्थ को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है—

(a) वास्तविक रूप में विद्यमान अर्थ (Actually Existing Meaning)

(b) सैद्धान्तिक रूप में सुचिंतित विशुद्ध अर्थ (Theoretically Conceived Pure Meaning)

वास्तविक अर्थ वह होता है जो कर्त्ता द्वारा अपने स्वयं के व्यवहार में लगाया जाता है। वहीं दूसरी ओर समाज में प्रचलित मूल्यों के आधार पर जो अर्थ निकाला जाता है। सैद्धान्तिक रूप से सुचिन्तित अर्थ कहलाता है तथा इसे आदर्श प्रारूपीय अर्थ (Ideal Type Meaning) भी कहा जाता है। जैसे—नौकरशाही व्यक्ति का अर्थ लालफीताशाही या कार्य में विलम्ब करने वाला है। जो वास्तविक रूप में विद्यमान व्यक्तिनिष्ठ अर्थ है।

सैद्धान्तिक अर्थ के आधार पर वास्तविक रूप में विद्यमान अर्थ को ज्ञात करने का प्रयत्न किया जाता है। सामाजिक क्रिया का अवबोध भी दो प्रकार से किया जा सकता है—बौद्धिक विधि एवं भावात्मक विधि द्वारा। तर्क की सहायता बौद्धिक विधि में ली जाती है। उदाहरण के लिए—3 को 3 से गुणा करने के पश्चात् इसका परिणाम 9 आता है यह एक तर्काश्रित अवबोध व्याख्यात्मक या भावात्मक अवबोध को सन्दर्भित करता है जबकि भावात्मक विधि में सामाजिक क्रिया का स्पष्टीकरण उसके प्रयोजन के दृष्टिकोण में किया जाता है। जैसे—4 व्यक्तियों द्वारा मिलकर फर्नीचर बनाने की क्रिया को उसके प्रयोजन जीविकोपार्जन के अर्थ में समझा जा सकता है।

3. **अवबोधात्मक समाजशास्त्र की पद्धति** (Method of Verstehen Sociology)—समाजशास्त्र की निम्नलिखित पद्धतियों के अन्तर्गत निम्न तीन बातों को शामिल किया गया है—

(i) ऐतिहासिक व्यष्टि का चयन मूल्यानुकूल मानदण्ड हो (ii) अवबोध की पद्धति निर्वचन हो एवं

(iii) तुलना के लिए आदर्श प्रारूप का प्रयोग किया जाए।

मैक्स वेबर के विचारों के अनुसार सांस्कृतिक विज्ञानों का विषय क्षेत्र सांस्कृतिक जगत या दुनिया है। सांस्कृतिक संसार से 'ऐतिहासिक व्यष्टि' (Historical Individual) का निर्वाचन कर इसका अध्ययन करवाना चाहिए। मैक्स वेबर के अनुसार 'ऐतिहासिक व्यष्टि' उस सांस्कृतिक घटना से जुड़ा है जो अध्ययनकर्त्ता के युग तथा समाज के मूल्यों के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न यह है कि अध्ययन के लिए ऐतिहासिक व्यष्टि का चुनाव किस प्रकार किया जाए? क्या उन विशेषताओं को आधार बनाकर ऐतिहासिक व्यष्टि का चुनाव करना चाहिए जो विषय के युग एवं समाज के मूल्यों के अनुकूल हो या जो अध्ययनकर्त्ता के युग और समाज के मूल्यों के अनुकूल हो।

रिकर्ट प्रथम उपागम के पक्ष में है वहीं मैक्स वेबर द्वारा द्वितीय दृष्टिकोण अर्थात् स्वयं अध्ययनकर्त्ता के युग एवं समाज के मूल्यों के अनुकूल विशेषताओं के सन्दर्भ में ऐतिहासिक व्यष्टि के निरूपण के पक्ष का समर्थन करते हैं। मूल्यों की बहुलता प्रत्येक समाज में देखी जा सकती है। इस प्रकार की परिस्थितियों को अलग-अलग अध्ययनकर्त्ता भिन्न-भिन्न मूल्यों के आधारों पर निरूपित कर सकते हैं। इस परिस्थिति में किसी भी घटना का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक कि समस्त मूल्यों के दृष्टिकोण से उसका स्पष्टीकरण न हो जाए। परन्तु प्रत्येक विज्ञान एवं व्यक्ति की एक क्षमता होती है, इसलिए समस्त दृष्टिकोणों से घटना का अध्ययन करना संभव नहीं हो सकता। अत: प्रत्येक व्यक्ति एवं विज्ञान किसी विशिष्ट दृष्टिकोण को ही स्वीकार करता है। किन्तु यह विशिष्ट दृष्टिकोण क्या होगा? इसके मूल्यांकन का निर्धारण मानदण्ड के आधार पर ही किया जाता है। अध्ययनकर्त्ता समस्या का चुनाव एक व्यक्ति विशेष के मूल्यों से न होकर स्वयं से न करके युग एवं समाज के वस्तुनिष्ठ मूल्य से करता है, इसलिए अध्ययन में वस्तुनिष्ठता तथा नैतिक तटस्थता बनी रहती है और समस्या का अध्ययन तार्किक ढंग से किया जाता है। सामाजिक क्रिया के अवबोध के लिए मैक्स वेबर द्वारा निर्वचन पद्धति को स्वीकार करने हेतु विशेष बल दिया जाता है।

TOUCH 'n' PASS

वेबर निर्वाचन पद्धति को सामाजिक क्रिया के अवबोध हेतु महत्त्वपूर्ण मानते हैं और यह निर्वचन तर्क एवं भाषाशास्त्र मूल्यांकन के आधार पर सम्भव हो सकता है। परन्तु वेबर सामाजिक क्रिया के तार्किक निर्वचन (Rational Interpretation) को श्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि इसमें घटनाओं की व्याख्या कार्य-कारण (Causal) के आधार पर की जाती है।

इसके साथ ही मैक्स वेबर सामाजिक क्रिया के निर्वचन के लिए तुलनात्मक पद्धति को स्वीकार करने पर बल देते हैं। वह इसी सन्दर्भ में आदर्श प्रारूप (Idea Type) को निर्मित करने का सुझाव देते हैं। 'आदर्श प्रारूप' में अध्ययन किए जाने वाले विषय से सम्बन्धित कुछ अनिवार्य तथा विशिष्ट विशेषताओं को सामान्य तरीके से शामिल किया जाता है। 'आदर्श प्रारूप' के निर्माण के पश्चात् उसकी तुलना सामाजिक क्रिया के वास्तविक स्वरूप के साथ संभव होती है और इसमें निहित व्यक्तिनिष्ठ अर्थ को ज्ञात करना सम्भव है।

4. **अवबोधात्मक समाजशास्त्र एक विज्ञान के रूप में** (Verstehen Sociology as a Science)—समाजशास्त्रीय जगत में वेबर से पूर्व प्रत्यक्षवाद का बोलबाला था एवं समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में ख्याति प्राप्त हुई थी किन्तु फिर भी वेबर के अनुसार, समाजशास्त्र के विज्ञान के मार्ग में तीन समस्याएँ थी जो निम्नलिखित हैं—
   (i) यह वह समय था जब समाजशास्त्र का झुकाव सैद्धान्तिकता की ओर अधिक था। स्पेन्सर, कॉम्टे, मार्क्स आदि समस्त समाजशास्त्रियों ने पूर्वाग्रह से मुक्त अध्ययन करने पर विशेष बल प्रदान करने के स्थान पर पूर्व निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार ही तथ्यों को स्वयं के अध्ययन विषय का आधार बनाया अर्थात् उनके द्वारा प्राकृतिक विज्ञानों के सिद्धान्तों को सामाजिक घटनाओं पर लागू करने का प्रयास किया गया।
   (ii) समाजशास्त्र उस युग में विशिष्ट विज्ञान न होकर एक सामान्य विज्ञान के रूप में प्रसिद्ध था। अत: इसे मैक्स वेबर विशिष्ट विज्ञान बनाने के पक्ष के समर्थन में थे।
   (iii) समाजशास्त्र सामाजिक घटनाओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने के बदले सामाजिक सकारात्मक परिवर्तन या सुधार लाने हेतु सदैव प्रयासरत रहता है। 19वीं सदी के समस्त समाजशास्त्री समाज में परिवर्तन लाना चाहते थे। अत: सभी समाजशास्त्री इस सफलता को प्राप्त करने हेतु सामाजिक परिस्थितियों के अध्ययन की सहायता लेते थे।
   समाजशास्त्र की उपर्युक्त तीनों ही बातों को मैक्स वेबर द्वारा दूर करने का प्रयत्न किया गया एवं इसके स्थान पर नए सुझाव प्रस्तावित किए गए—
      (a) वेबर द्वारा पूर्व कल्पित सिद्धान्तों के स्थान पर सांस्कृतिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण तथ्यों के अध्ययन पर अधिक जोर दिया गया।
      (b) सामाजिक क्रियाओं को वेबर द्वारा अध्ययन की मौलिक इकाई मानकर समाजशास्त्र को सामान्य या साधारण विज्ञान के स्थान पर विशिष्ट विज्ञान का दर्जा प्रदान किया गया।
      (c) वेबर का कथन है कि समाजशास्त्री सामाजिक सुधारक नहीं हैं, उन्हें सुधार की अपेक्षा विभिन्न प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों का अवबोध करना चाहिए। अत: वेबर द्वारा समाजशास्त्र को एक सुदृढ़ विज्ञान का आधार प्रदान किया गया।

प्र.2. सामाजिक क्रिया पर वेबर के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए, सामाजिक क्रिया को समझने की विधियों का सविस्तार वर्णन कीजिए।

Explaining weber's view on social action, describe in detail the methods of understanding social action.

उत्तर

सामाजिक क्रिया पर वेबर का दृष्टिकोण
(Weber's View on Social Action)

'सामाजिक क्रिया' को मैक्स वेबर द्वारा समाजशास्त्र की विषयवस्तु माना गया है। उन्होंने इसे केन्द्रीय अध्ययन वस्तु माना है। सामाजिक क्रिया को समझाने एवं इसका प्रतिपादन करने वाले विद्वानों के नामों में मैक्स वेबर का नाम सर्वोपरि है। मैक्स वेबर सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त के माध्यम से समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति को स्पष्ट करते हैं। वेबर का यह सिद्धान्त आदर्श प्रारूप का एक प्रकार है। मैक्स वेबर ने इस सिद्धान्त को अपनी पुस्तक 'सामाजिक एवं आर्थिक संगठन' में प्रतिपादित किया। सामाजिक क्रियाओं को सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में मुख्यत: दो भागों में बाँटा गया है-वैयक्तिक क्रिया एवं सामाजिक क्रिया। वेबर ने कहा कि क्रिया तथा व्यवहार प्राय: भिन्न धारणाएँ हैं। मनोविज्ञान प्राय: सामाजिक क्रिया का अध्ययन न करके मानवीय

TOUCH 'n' PASS

व्यवहार का अध्ययन करता है। इससे यह कहा जा सकता है कि सामाजिक क्रिया वैयक्तिक क्रिया नहीं है बल्कि इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है।

वेबर के अनुसार, "किसी भी क्रिया को हमें तभी सामाजिक क्रिया कहना चाहिए जबकि उस क्रिया को करने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के द्वारा लगाए गए व्यक्तिनिष्ठ अर्थ के अनुसार उस क्रिया में दूसरे व्यक्तियों के मनोभाव तथा क्रियाओं का समावेश हो और उन्हीं के अनुसार उसकी गतिविधि निर्धारित हो।" वेबर के अनुसार, सामाजिक क्रिया सिद्धान्त को समझने हेतु 'क्रिया' एवं 'व्यवहार' को समझना आवश्यक है। सामाजिक सम्बन्धों को बनाने के लिए विभिन्न सामाजिक लोगों से अन्त:क्रिया करनी पड़ती है। सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण इन्हीं अन्त:क्रियाओं से होता है। सामाजिक सम्बन्धों से समाज की क्रिया के लिए चार आवश्यक तत्त्व निम्न हैं—

1. कर्त्ता, 2. साधन, 3. लक्ष्य, 4. परिस्थिति

किसी भी क्रिया को पूर्ण करने के लिए एक से अधिक कर्त्ता की आवश्यकता होती है। इन कर्त्ताओं का कोई विशेष लक्ष्य भी होना चाहिए। जिसके लिए विशेष अनुकूल परिस्थितियाँ भी होनी चाहिए। इसको पूर्ण करने के पर्याप्त साधन भी होना आवश्यक है। जिससे लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके। इस प्रकार की क्रियाओं को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से सामाजिक क्रियाएँ नहीं कहा जा सकता है। बल्कि वे क्रियाएँ जिनका कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध, भूतकाल, वर्तमानकाल एवं भविष्य के व्यवहार से होता है, ऐसी क्रियाएँ सामाजिक क्रियाएँ कहलाती हैं। किसी भी क्रिया को सामाजिक क्रिया कहलाने के लिए आवश्यक है कि उसमें व्यक्तियों के वैयक्तिक दृष्टिकोण को समझें। व्यक्ति या कर्त्ता उस व्यवहार का क्या अर्थ निकालता है। वेबर के मतानुसार कोई भी गतिविधि या व्यवहार स्वयं में कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। परन्तु यदि व्यवहार या क्रिया को करने में कर्त्ता किसी अन्य अर्थ को जोड़ता है तो वह क्रिया सामाजिक क्रिया कहलाती है। इसको निम्न प्रकार से स्पष्ट समझा जा सकता है—

सामाजिक क्रिया = व्यवहार (गतिविधि) + कर्त्ता द्वारा दिया अर्थ

सामाजिक क्रिया न तो अनेक व्यक्तियों द्वारा की जाने वाली एक जैसी क्रिया को कहा जाता है एवं न ही उस क्रिया को कहा जाता है जो कि मात्र दूसरे व्यक्तियों द्वारा प्रभावित होती है। जैसे—वर्षा होने के कारण सड़क पर अनेक व्यक्तियों द्वारा छाता खोल लेना सामाजिक क्रिया को प्रदर्शित नहीं करता है। क्योंकि इसमें प्रत्येक व्यक्ति की क्रिया का दूसरे या अन्य व्यक्तियों से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैक्स वेबर का कथन है कि दूसरे की क्रियाओं का अनुसरण (Imitation) करना सामाजिक क्रिया नहीं है, जब तक इस क्रिया से अर्थपूर्ण सम्बन्ध न हो या उसकी क्रिया अर्थपूर्ण रूप से प्रभावित न हो।

सामाजिक क्रिया को समझने की विधियाँ (Methods of Understanding the Social Action)

जर्मन के महान समाजशास्त्री मैक्स वेबर का कथन है कि व्यक्तियों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं को करने का कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य होता है। उन्होंने मानवीय क्रियाओं की प्रकृति को दो स्वरूपों-स्पष्ट एवं अस्पष्ट में वर्गीकृत किया। जो क्रियाएँ पूर्णत: स्पष्ट होती हैं उन्हें स्पष्ट क्रिया कहते हैं और जिन क्रियाओं का बाह्य व्यवहार पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं होता वह अस्पष्ट की श्रेणी में शामिल होती हैं।

इन प्रमुख क्रियाओं के प्रयोजनों तथा उद्देश्यों को समझना आसान नहीं होता है। जब तक मानवीय क्रियाओं के उद्देश्य, अर्थ तथा प्रयोजन को भली-भाँति न समझ लिया जाए ऐसा न करने से सामाजिक स्थिति को समझना भी कठिन कार्य है, यही कारण है कि सामाजिक क्रियाओं को समझने हेतु कुछ विधियों का उल्लेख किया गया है। जो कि निम्न प्रकार हैं—

1. **भावात्मक विधि** (Emotional Method)—मानव एक भाव प्रधान प्राणी है तथा वह सदैव अपनी बुद्धि एवं तर्क के आधार पर अपने समस्त कार्यों का संचालन करता है, परन्तु अनेक कार्य भाव प्रधान होते हैं जिन्हें समझने हेतु भावनाओं की सहायता लेनी पड़ती है। जैसे—कोई व्यक्ति डाकू या अपराधी बनकर अपराध जैसे कार्यों को करने लगता है उसकी इस क्रिया को समझने हेतु तार्किक विधि के स्थान पर भावात्मक विधि का सहारा लेना होगा तथा उन भावनाओं को ज्ञात करना होगा जिसकी वजह से वह डाकू या अपराधी बना। वेबर द्वारा भावात्मक विधियों को दो उपभागों में वर्गीकृत किया गया है—प्रत्यक्ष अवलोकन विधि तथा व्याख्यात्मक विधि।
   (i) **प्रत्यक्ष अवलोकन विधि** (Direct Observation Method)—प्रत्यक्ष अवलोकन विधि भावनात्मक आधार पर सामाजिक क्रियाओं को समझने की विधियों में से एक है। आंकलन के माध्यम से अनेक क्रियाओं को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। जैसे—खिलाड़ियों द्वारा खेले जा रहे मैच में विजय का अनुमान मैच खेलने के पूर्व में की गई तैयारियों को देखकर लगा सकते हैं। इस प्रकार पारस्परिक संघर्ष, विवाद, प्रतिस्पर्द्धा तथा अन्य कई क्रियाओं को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है उनके प्रयोजनों तथा उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

TOUCH 'n' PASS

(ii) **व्याख्यात्मक विधि** (Explanatory Method)—मैक्स वेबर का कथन है कि अनेक क्रियाओं को केवल अवलोकन द्वारा समझना संभव नहीं होगा। इन क्रियाओं को समझने के लिए इनकी व्याख्या की जानी आवश्यक है। इन प्रश्नों की व्याख्या सम्भव है। जैसे—एक छात्र के अत्यंत कठिन परिश्रम को देखकर यह अनुमान लगाया कि वह भविष्य में उच्च पद पर नियुक्ति प्राप्त करके श्रेष्ठ जीवन साथी को प्राप्त करेगा। इस प्रकार व्याख्यात्मक विधि में क्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण तथा व्याख्या करके उसे समझने का प्रयास किया जाता है।

वेबर के मतानुसार प्रत्येक सामाजिक क्रिया का कोई-न-कोई उद्देश्य तथा अर्थ अवश्य होता है जो अन्य व्यक्तियों के व्यवहारों से प्रभावित होता है। यही बात समाजशास्त्र को प्राकृतिक विज्ञानों से अलग बनाती है। प्राकृतिक विज्ञानों में घटनाओं का तार्किक विश्लेषण कारण एवं प्रभाव के आधार पर किया जाता है परन्तु इसका अर्थ एवं उद्देश्य क्या है, यह नहीं ज्ञात होता। प्राकृतिक विज्ञानों में अर्थहीन एवं जीवनरहित घटनाओं का अध्ययन किया जाता है जो प्राकृतिक नियमों के अनुसार स्वत: ही घटित होते हैं, जबकि समाजशास्त्र के अन्तर्गत घटनाओं का अर्थपूर्ण व्याख्यात्मक वर्णन किया जाता है, उनके उद्देश्यों पर भी विचार किया जाता है। मैक्स वेबर समाजशास्त्र में व्यक्ति तथा उनकी सामाजिक क्रिया के अध्ययन को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। इस प्रकार समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों से भिन्न है।

वेबर द्वारा प्राकृतिक विज्ञानों एवं समाजशास्त्र के नियमों में भी अंतर को स्पष्ट करते हैं। प्राकृतिक विज्ञानों का एक मात्र लक्ष्य नियमों की खोज करना है। जबकि समाजशास्त्रीय विद्वानों का उद्देश्य सामाजिक व्यवहार, ऐतिहासिक घटनाओं को उनके पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर कार्य कारण को ध्यान में रखते हुए समझना है। समाजशास्त्र को वेबर एक विज्ञान के रूप में प्रसिद्ध करना चाहते थे। अत: वेबर द्वारा समाजशास्त्र के विषय पर विशेष बल दिया गया है। उन्होने मानवीय सम्बन्धों के ऐतिहासिक उद्विकास, विभिन्न सांस्कृतिक कारकों की वैज्ञानिक व्याख्या तथा सामान्य नियमों की खोज करने को भी समाजशास्त्र के अन्तर्गत शामिल किया है। अत: समाजशास्त्र में वेबर द्वारा सामाजिक क्रियाओं के अर्थपूर्ण बोध तथा इन क्रियाओं के परिणाम एवं कारण व उनके सामान्य नियमों को ज्ञात करने को महत्त्व देते हैं।

2. **बौद्धिक विधि** (Intellectual Method)—मैक्स वेबर का कथन है कि बौद्धिक विधि ऐसी सामाजिक क्रियाएँ हैं जिनको समझने हेतु बुद्धि की सहायता लेनी पड़ती है, अत: इन्हें 'बौद्धिक विधियाँ' कहा जाता है। वेबर द्वारा बौद्धिक विधियों को भी दो भागों में वर्गीकृत किया गया है—

(i) तर्काश्रित तथा (ii) गणिताश्रित।

(i) **तर्काश्रित विधि** (Logical Method)—बौद्धिक विधि सामाजिक क्रिया को समझने की प्रथम विधि है जो तर्क पर आधारित है, अर्थात् मनुष्य के अनेक कारण विवेक तर्क एवं कार्य-कारण पर आधारित होते हैं; जैसे—कोई व्यक्ति गणित की शिक्षा प्राप्त करके इंजीनियरिंग महाविद्यालय में प्रवेश लेता है तब उसकी यह क्रिया तर्क धारणा पर आधारित है, वहीं यदि व्यक्ति गणित की शिक्षा प्राप्त करके चिकित्सा महाविद्यालय में दाखिला लेता है तो यह क्रिया तर्क पर आधारित नहीं समझी जाती है।

(ii) **गणिताश्रित विधि** (Mathematical Method)—गणिताश्रित विधियाँ वे विधियाँ होती हैं जिनको गणित के आधार पर समझा जा सकता है। जैसे—4 + 4 = 8 होते हैं। गणित के अन्तर्गत दो और दो मिलकर 4 होते हैं। गणित के अतिरिक्त यह क्रिया किसी अन्य आधार पर समझना संभव नहीं है।

प्र.3. वेबर के सामाजिक क्रिया सिद्धान्त की आलोचना की व्याख्या कीजिए।
Explain the criticism of Weber's social action theory.

उत्तर

वेबर के सामाजिक क्रिया सिद्धान्त की आलोचना
(Criticism of Weber's Social Action Theory)

सामाजिक क्रियाओं को वेबर ने इस प्रकार विभाजित किया है कि उसमें जीवन के धार्मिक, राजनीतिक तथा वैज्ञानिक पक्षों को शामिल किया जा सके। वे क्रिया के वर्गीकरण के माध्यम से इतनी व्यापक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं कि क्रियाओं का वर्गीकरण सार्वभौमिक रूप से सत्य स्पष्ट होता है। उन्होंने क्रियाओं के वर्गीकरण में मूल्य तथा तार्किकता दोनों में समन्वय स्थापित किया है। वेबर के मतानुसार घटनाओं के उचित परिणामों को ज्ञात करने हेतु इन दोनों की सहायता लेना आवश्यक बताया है। अत:

TOUCH 'n' PASS

सामाजिक क्रिया सिद्धान्त वेबर द्वारा समाजशास्त्र को एक मूल्यवान भेंट है किन्तु फिर भी उसकी समाजशास्त्र के द्वारा आलोचना की गई है जो निम्न प्रकार है—

1. सामाजिक क्रिया के सम्बन्ध में वेबर की एक प्रमुख आलोचना यह है कि वह नकारात्मक विश्लेषण पर ही विशेष रूप से बल देते हैं अर्थात् उन्होंने प्रमुख रूप से यह स्पष्ट किया कि कौन-सी क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं है। उन्होंने सामाजिक क्रिया के विभिन्न तत्त्वों को स्पष्ट रूप से विश्लेषित नहीं किया है।
2. वेबर द्वारा प्रदान किए गए समाजशास्त्र में मार्क्स के समाजशास्त्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मार्क्स ने जहाँ सर्वहारा वर्ग तथा पूँजीपति वर्ग के मध्य वर्ग संघर्ष में सर्वहारा वर्ग को विशेष महत्त्व दिया है। वहीं दूसरी ओर वेबर ने बुर्जुआ वर्ग (पूँजीपति वर्ग) को महत्त्व दिया है। इसलिए वेबर के विचारों को 'पूँजीपति वर्ग के पोषक के रूप में देखा जा सकता है।
3. अनेक समाजशास्त्रियों का यह मानना है कि वेबर ने सामाजिक क्रिया को मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं तथा शब्दों द्वारा वर्गीकृत कर परिभाषित किया है। इसका प्रमाण भावात्मक क्रिया है। अत: सामाजिक क्रियाएँ सामाजिक न रहकर मनोवैज्ञानिक हो जाती हैं। वेबर द्वारा क्रियाओं के प्रकारों के उल्लेख में व्यक्ति की भावनाओं, मस्तिष्क तथा आदतों को महत्त्व दिया गया जिससे मनोवैज्ञानिक जगत के दोषों का शिकार हो गए।
4. 'जर्मन फिलॉसफी' में मैलेनबोक द्वारा स्पष्ट किया गया कि वेबर का सामाजिक क्रिया का वर्गीकरण (जिसमें उन्होंने चार प्रकार की क्रियाओं का उल्लेख किया है।) गलत है। जबकि व्यवहार का आधार स्रोत उत्प्रेरणाएँ हैं। अत: मूल उत्प्रेरणाओं को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है जो निम्नलिखित हैं—
   (i) **तर्क** (Reason)—इसके अन्तर्गत व्यक्तियों का तार्किक व्यवहार सम्बन्धित होता है, इसलिए वेबर द्वारा स्पष्ट की गई प्रथम सामाजिक क्रिया (तार्किक क्रिया) इसमें शामिल होती है।
   (ii) **संवेग** (Emotion)—प्रत्येक व्यक्ति में भावात्मक व्यवहार उद्वेगों के साथ जुड़ा हुआ है, इसलिए वेबर द्वारा बताई गई तृतीय प्रकार की सामाजिक क्रिया (भावात्मक क्रिया) इसके अन्तर्गत आती है।
   (iii) **भावना** (Sentiments)—परम्परागत या संवेगात्मक व्यवहार भावना से सम्बन्धित होता है। इसलिए वेबर द्वारा स्पष्ट की गई चतुर्थ प्रकार की सामाजिक क्रिया (या परम्परागत क्रिया) इसके अन्तर्गत आती है।

   मैलेनबोक के मतानुसार व्यक्तियों का व्यवहार कुछ आधारभूत प्रेरणाओं पर आधारित होता है, इसलिए वेबर का सामाजिक क्रिया का द्वितीय प्रकार (मूल्यांकनात्मक क्रिया) पूर्ण स्पष्ट नहीं है। उपर्युक्त तीन (आधार) प्रेरणाओं में से कोई भी प्रेरणा नहीं प्राप्त होती है। उनका विचार है यहाँ व्यक्ति के व्यवहार तर्क, भावना एवं संवेग इनमें से किसी पर भी आधारित नहीं है। किन्तु टालकट पारसन्स, रेमण्ड एरॉ एवं बैण्डिक्स ने मैलेनबोक की उपर्युक्त आलोचना को उचित नहीं माना है।

   उपर्युक्त विद्वानों की यह मान्यता है कि जब व्यक्ति किसी मूल्य (Value) को महत्त्व देता है एवं उसके अनुरूप व्यवहार करते रहने से उसकी आदत बन जाती है, तो वह उसे अपना कर्त्तव्य समझ लेता है। इस स्थिति में उसका व्यवहार मूल्यांकनात्मक क्रिया के अन्तर्गत ही आएगा। रेमण्ड एरॉ के उदाहरणों के अनुसार 'कर' देने से सम्बन्धित दो प्रमुख कारण हैं—
   (i) प्रथम, यह कि 'कर' नहीं देने पर पुलिस द्वारा गिरफ्तारी हो जाने का डर रहेगा एवं अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाएँगी।
   (ii) द्वितीय कारण है कि व्यक्ति कर देना अपना पवित्र दायित्व समझता है, कर देना उसकी आदत बन चुकी है। इसलिए वह कर देता है। यदि इस दूसरी श्रेणी में आने वाले लोगों की कर भुगतान की क्रिया पर विचार किया जाए तो यह क्रिया मूल्यांकनात्मक क्रिया के अन्तर्गत शामिल हो जाएगी। पारसन्स के मतानुसार समाज की एक सांस्कृतिक व्यवस्था होती है जो कि एक समाज के मूल्यों पर निर्भर करती है। इसलिए व्यक्ति इन मूल्यों से प्रेरणा प्राप्त कर सामाजिक क्रिया करते हैं।
5. **मर्टन तथा कोहन** के अनुसार, "वेबर का क्रिया सिद्धान्त एक सीमा तक लघु स्तर पर सामान्यीकरण कर सकता है, परन्तु समाज का वृहद् स्तर पर सामान्यीकरण करने में असमर्थ है।"

TOUCH 'n PASS

6. **ऐलेन टोरेन** का कथन है कि, "वेबर का सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या नहीं करता है। वह क्रिया के सिद्धान्त में मानदण्डों (Norms) में अनुरूपता मानते हैं जो कि अत्याज्य हैं। इससे सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या नहीं की जा सकती है। वे तो यह मानकर चलते हैं कि मानदण्ड पूर्व स्थापित हैं। ये किस प्रकार स्थापित हुए हैं, इसका उल्लेख भी नहीं किया गया है।"
7. वेबर सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त के अन्तर्गत सामाजिक संस्कृति तथा संरचना की व्याख्या नहीं करते, इसे वह समाज में पूर्व से स्थापित मानकर चलते हैं।
8. वेबर द्वारा प्रदत्त सामाजिक क्रिया का विभाजन भी अपूर्ण एवं अस्पष्ट है। पारसन्स ने सामाजिक क्रिया के अनेक प्रकारों तथा आधारों का उल्लेख किया है परन्तु वेबर का वर्गीकरण अपूर्ण है। एक ही क्रिया भावात्मक, तार्किक, मूल्यांकनात्मक या परम्परात्मक में से दो या अधिक श्रेणी में भी रखी जा सकती है, तब असमंजस की समस्या उत्पन्न हो जाती है कि उसे किस प्रकार की क्रिया माना जाए। इस प्रकार वेबर द्वारा सामाजिक क्रियाओं का जो वर्गीकरण किया है वह स्पष्ट नहीं है।
9. **डर्क कास्लर, मैक्स शेलर तथा ओपनहोमर** का कथन है कि "वेबर ने समाजशास्त्र को मात्र सामाजिक क्रियाओं के अध्ययन तक सीमित रखकर इसके क्षेत्र को संकीर्ण बना दिया है। इसके साथ ही सामाजिक क्रिया को भी मात्र व्यक्तिनिष्ठ अर्थ के सन्दर्भ में देखना उपयुक्त नहीं माना जा सकता।"
10. **कोहन** का कथन है कि "वेबर का क्रिया सिद्धान्त सरल व सुस्पष्ट नहीं है वरन् घुमावदार व पुनरूक्त है।"

प्र.4. शक्ति एवं सत्ता को स्पष्ट कीजिए तथा सत्ता के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
Clarify the power and authority and describe the types of authority.

उत्तर

शक्ति एवं सत्ता
(Power and Authority)

शक्ति (Power)

सामान्यत: 'शक्ति' शब्द का अभिप्राय ताकत एवं नियंत्रण की क्षमता से है। समाजशास्त्रियों द्वारा इसे किसी व्यक्ति एवं समूह की इच्छा की पूर्ति के लिए परिभाषित किया गया है। इसमें दूसरों की इच्छाओं के विपरीत भी उन्हें प्रभावित करने एवं उनके व्यवहार को नियंत्रित करने की क्षमता निहित है। मैक्स वेबर के अनुसार, शक्ति सामाजिक सम्बन्धों का एक पहलू है। इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध एक व्यक्ति द्वारा दूसरे के आचरण पर अपनी इच्छा थोपने की सम्भावना से है। शक्ति का अस्तित्व सामाजिक अन्त:क्रियाओं में निहित होता है जिससे असमानता की स्थिति उत्पन्न होती है क्योंकि जिसके हाथों में शक्ति है उसमें इसे अन्य व्यक्तियों में थोपने की प्रवृत्ति होती है। मुख्यत: शक्ति का प्रभाव भिन्न-भिन्न स्थितियों में अलग-अलग होता है। यह प्रभाव शक्तिशाली मनुष्य की क्षमता पर निर्भर करता है। वेबर का कथन है कि जीवन के समस्त क्षेत्रों में शक्ति का प्रयोग सम्भव है। शक्ति मात्र युद्ध क्षेत्र एवं राजनीति तक ही सीमित नहीं होती है। शक्ति का प्रदर्शन बाजार, भाषण मंच एवं किसी भी सामाजिक खेल, समारोह, वैज्ञानिक संगोष्ठियों एवं दान गतिविधियों में भी देखने को मिलता है। जैसे-एक अमीर व्यक्ति अपनी आर्थिक शक्ति के माध्यम से एक गरीब व्यक्ति की मदद करके उसकी खुशी का कारण बनता है वहीं उसको इंकार करके उसकी निराशा का कारण भी बनता है।

शक्ति समाज में एकाकी न रहकर एक-दूसरे के साथ रहती है। समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को समाज की राजनीति से सम्बन्धित होना आवश्यक नहीं है एवं न ही राजनीतिक जीवन में सक्रिय रूप से प्रतिभाग करना। किन्तु साथ रहने के कारण दोनों के रिश्तों में एक-दूसरे का प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होता है। शक्ति एवं सत्ता को समझने हेतु इसके प्रभाव (Influence) को स्पष्ट रूप से समझना अति आवश्यक है। चूँकि शक्ति प्रभाव का ही एक प्रकार है। असहमति एवं विभिन्नता मनुष्य के सामाजिक जीवन की दो अतिआवश्यक स्थितियाँ बन गई हैं जिसके परिणामस्वरूप समाज में निरन्तर संघर्ष होता रहता है। इन संघर्षों का प्रमुख कारण संसाधनों का सीमित मात्रा में उपलब्ध होना है।

वेबर के अनुसार, "प्रत्येक प्रभाव को शक्ति अथवा सत्ता नहीं कहा जा सकता।" जैसे—कोई शक्ति जो किसी वस्तु पर एकाकी स्वामित्व रखती है वह उसको विनिमय करने के लिए स्वयं की शर्तानुसार सौदा करने के लिए बाध्य कर सकती है जबकि उसके पास ऐसा करने की कोई विशेष सत्ता एवं शक्ति नहीं है। अत: किसी विशेष प्रकार के गुण या श्रेष्ठता से भी कोई व्यक्ति प्रभावकारी स्थिति में आ जाता है, उदाहरण के लिए—शारीरिक सौन्दर्य या खेल में कुशलता या बौद्धिक प्रतिभा।

वेबर शक्ति को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "शक्ति वह सम्भावना है जिसमें एक व्यक्ति ऐसे सामाजिक सम्बन्ध में होता है कि वह प्रतिरोध के बावजूद भी अपनी इच्छा को मनवा सके, चाहे इस सम्भावना का आधार कुछ भी हो।" इस प्रकार शक्ति का

प्रयोग प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में किया जा सकता है। किन्तु समस्त परिस्थितियों में शक्ति के दावे (Assertion) हेतु लगभग एक जैसे तरीके प्रयोग किए जाते हैं। एक मनुष्य स्वयं की इच्छानुसार अन्य व्यक्तियों से अनुपालन या आज्ञाकारिता हेतु निम्न प्रकार के दबावों का उपयोग कर सकता है—

1. **प्रथम**—मनुष्य अन्य व्यक्तियों द्वारा स्वयं की बात का अनुपालन कराने के लिए किसी प्रकार की वांछनीय वस्तु का लाभ एवं सामाजिक दशाओं या स्थितियों का प्रलोभन दे सकता है। उदाहरण के लिए-एक माता द्वारा खरीदारी के वक्त बच्चे द्वारा अच्छा व्यवहार करने पर उसे चॉकलेट प्रदान करने का प्रलोभन देना। किसी मिल-मालिक द्वारा मजदूरों की उपस्थिति को बनाए रखने एवं उत्पादन बढ़ाने हेतु बोनस प्रदान करना एवं किसी सफल राजनीतिक नेता द्वारा स्वयं के समर्थकों को अच्छे पदों पर नियुक्ति प्रदान करने में मदद करना।
2. **द्वितीय**—किसी के द्वारा दूसरे व्यक्ति का अनुपालन हेतु दण्ड या हानि की धमकी देना; जैसे—नागरिकों को इस बात की पूर्ण जानकारी होती है कि एक तानाशाही शासन में तानाशाह का विरोध करने एवं वैज्ञानिक नियमों का उल्लंघन किए जाने पर उन्हें दंड दिया जा सकता है।
3. **तृतीय**—व्यक्ति अनुपालन हेतु सूचना एवं लोगों की मनोवृत्तियों, मूल्यों तथा भावों को कार्य साधन बना सकता है। जैसे—कुछ पत्रकारों की प्रतिक्रिया को प्रभावशाली इसलिए माना जाता है कि उनके द्वारा लिखे गए लेख एवं प्रस्तुत की गई जानकारी विश्वसनीय होती है। एक राजनीतिक नेता सामान्य जनता पर शासन बनाए रखने हेतु लोगों की मनोवृत्तियों एवं भावों को कार्य करने का माध्यम बना सकते हैं।

सत्ता (Authority)

वेबर द्वारा सत्ता हेतु जर्मन शब्द 'हैरशाफ्ट' (Herrschaft) का प्रयोग किया गया। इसका अनुवाद कई रूपों में किया गया। कुछ समाजशास्त्रियों द्वारा इसे सत्ता (Authority) कहा गया एवं कुछ विद्वानों ने इसे प्रभुत्व (Domination) एवं आदेश (Command) कहा है। हैरशाफ्ट का तात्पर्य है कि ऐसी स्थिति में 'हैर' (herr) एवं स्वामी अन्य व्यक्ति पर शासन करता है या आज्ञा देता है। रेमण्ड एरॉ (Raymond Aron) हैरशाफ्ट को परिभाषित करते हुए कहते हैं, स्वामी की वह क्षमता जिसमें वह उन व्यक्तियों से आज्ञा पालन करवाता है जो सैद्धांतिक रूप से उसके प्रति आज्ञाकारी हैं। सत्ता की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ तथा व्याख्याएँ दी गई हैं परन्तु समस्त रूपों में सत्ता शक्ति, नेतृत्व तथा प्रभाव से सम्बन्धित हैं। शक्ति को वैधानिक स्वीकृति प्राप्त हो जाने पर उसे सत्ता कहा जाता है।

बीरस्टीड का कथन है कि "सत्ता शक्ति से भिन्न होती है सत्ता शक्ति के प्रयोग का संस्थात्मक अधिकार माना गया है यह स्वयं शक्ति नहीं है।"

शक्ति का सम्बन्ध व्यक्ति से होता है वहीं सत्ता का सम्बन्ध पद या प्रस्थिति से होता है। सत्ता सदैव संस्थाकृत होती है (Authority is institutionalised) इसलिए सत्ता मूल्यवान एवं विशिष्ट समझी जाती है। सत्ता वैधानिक शक्ति है (Authority is Legitimate Power) जिसका पालन मनुष्य द्वारा स्वेच्छा से किया जाता है; जैसे—राष्ट्रपति, प्राचार्य, मेजर, प्रधानमंत्री आदि के विशेषाधिकार 'सत्ता' की श्रेणी में शामिल होते हैं। चूँकि उन्हें जो शक्ति एवं अधिकार प्राप्त हैं ये सभी संविधान, कानूनों, नियमों आदि द्वारा प्रदान किए गए हैं। अत: शक्ति एवं सत्ता दोनों ही प्रभाव के निम्नस्वरूप हैं। समाज में सत्ता अपने दायित्वों को बनाए रखती है। यह मात्र राजनीतिक श्रेय में ही नहीं अपितु सामाजिक-आर्थिक जीवन में भी क्रियाशील रहती है। शक्ति का संस्थागत रूप है।

बीच (Beach) के अनुसार, "अन्य व्यक्तियों के कार्यों के निष्पादन को प्रभावित या उन्हें निर्देशित करने के औचित्यपूर्ण अधिकार को सत्ता कहा गया है।"

यूनेस्को की रिपोर्ट के अनुसार, "सत्ता वह शक्ति है जो स्वीकृत, सम्मानित, ज्ञात तथा औचित्यपूर्ण हो।"

सत्ता के प्रकार (Types of Authority)

वैधता के आधार पर मैक्स वेबर ने सत्ता को तीन भागों में विभाजित किया है—

1. **वैधानिक सत्ता** (Legal Authority)—वेबर के कथनानुसार राज्य द्वारा निर्मित किए गए कानूनों के अनुसार कुछ ऐसे पद होते हैं जिनके साथ एक विशिष्ट प्रकार की सत्ता सम्बन्धित होती है। इसलिए जो व्यक्ति इस पद को धारण करता है वह उस पद से सम्बन्धित सत्ता का प्रयोग करता है इस सत्ता को वैधानिक सत्ता कहा जाता है। जैसे—जब एक व्यक्ति किसी महाविद्यालय का प्राचार्य बनता है तो उसे प्राचार्य के पद से सम्बन्धित सत्ता भी प्राप्त होती है एवं वह इन अधिकारों

तथा शक्तियों का उपयोग कर सकता है। उसके अधीनस्थ अधिकारियों तथा कर्मचारियों को उसके आदेशों का पालन करना आवश्यक होता है। यह सत्ता व्यक्ति की व्यक्तिगत सत्ता से सम्बन्धित नहीं होती है, वरन् जिन नियमों के द्वारा व्यक्ति एक विशिष्ट पद को प्राप्त करता है, उन नियमों की सत्ता में निहित होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यक्ति की वैधानिक सत्ता के क्षेत्र तथा उसके निजी क्षेत्र में पर्याप्त अन्तर है। प्राचार्य के रूप में व्यक्ति को जो अधिकार प्राप्त हैं वे उन अधिकारों से अलग है जो परिवार में पिता या पति की सत्ता के रूप में प्राप्त होते हैं। वैधानिक सत्ता का अधिकार क्षेत्र सीमित एवं निश्चित होता है। इसके अधिकार क्षेत्र से बाहर वह अपनी सत्ता का प्रयोग नहीं कर सकता। इसी प्रकार औद्योगीकृत समाज के समस्त व्यक्तियों में वैधानिक सत्ता एक समान नहीं पाई जाती है, क्योंकि प्राय: इसमें उच्चता एवं निम्नता का संस्तरण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, जटिल समाजों की यह विशेषता होती है कि इसमें वैधानिक आधार पर उच्च एवं निम्न सत्ताएँ शामिल होती हैं। अत: जहाँ कहीं नियमों की ऐसी प्रणाली है जो निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार न्यायिक एवं प्रशासकीय रूप से प्रयोग होती है एवं जो एक नियमित समूह के समस्त सदस्यों हेतु वैध है वहाँ वैधानिक सत्ता है।

2. **परम्परागत सत्ता** (Traditional Authority)—परम्परागत सत्ता का सम्बन्ध परम्परा द्वारा स्वीकृत पद पर आसीन होने के कारण होता है। इसलिए इस सत्ता की वैधता परम्परा पर आधारित होती है। समाज में अनेक ऐसे पद होते हैं जो दीर्घ अवधि से चले आ रहे हैं जिनका अस्तित्व परम्परागत आधार पर लम्बे समय से चला आ रहा है। इनका अस्तित्व परम्परागत विश्वासों के कारण होता है। इन पदों को धारण करने पर व्यक्ति को जो सत्ता प्राप्त होती है, 'परम्परागत' सत्ता कहलाती है। इसके विश्वास का आधार यह है कि इसके अन्तर्गत किसी विशेष सत्ता का सम्मान किया जाना चाहिए क्योंकि यह सत्ता युग-युगान्तरों से चली आ रही है। शासक पारम्परिक सत्ता के अन्तर्गत पीढ़ी-दर-पीढ़ी मिली प्रस्थिति के कारण व्यक्तिगत सत्ता का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के सत्ताधारी अपने आदेशों का पालन कराने हेतु सामान्य लोगों को इस बात पर आश्वस्त कराते हैं कि कई वर्षों से इनका पालन हो रहा है। अत: परम्परागत सत्ता को धारण करने वाले के पास व्यक्तिगत निर्णय करने का विशेष अधिकार भी प्राप्त होता है। प्राय: वे अपनी शक्तियों का दुरूपयोग करते हैं। जो लोग उनके आदेशों का पालन या अनुसरण करते हैं वह उसकी प्रजा कहलाते हैं। प्रजा प्राय: प्राचीनकाल से चली आ रही मान्यता एवं व्यक्तिगत निष्ठा के कारण और उसके प्रति पवित्र सम्मान के कारण अपने स्वामी के आदेशों का अनुसरण करती है।

भारतीय गाँवों में जाति-पंचायत तथा ग्राम पंचायत के पंचों को प्राप्त सत्ता परम्परागत सत्ता का ही एक रूप है। इसके अतिरिक्त भारत में प्रचलित जाति-प्रथा से हम भली-भाँति परिचित हैं। भारत में निम्न जातियाँ सदियों तक उच्च जातियों के अत्याचार क्यों सहती रही हैं। इसका स्पष्टीकरण यह है कि उच्च जातियों की सत्ता को परम्पराओं एवं मान्यताओं का समर्थन प्राप्त था। कुछ लोगों का कथन है कि निम्न जातियों ने अपने दमन को सामाजिक स्वीकृति दे दी थी। अत: यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि पारम्परिक सत्ता प्राचीन परम्पराओं को पवित्र मानने के विश्वास पर आधारित है। इस प्रकार सत्ता का प्रयोग करने वालो को वैधता प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार परिवार में पति, पिता, कर्त्ता एवं जनजातियों में गोत्र के मुखिया को सामन्तवादी प्रथा में दासों पर मालिकों को प्राप्त अधिकार भी परम्परागत सत्ता के ही उदाहरण हैं। पिता, पंच, मालिक एवं राजा की आज्ञाओं का पालन इसलिए नहीं किया जाता कि उन्हें कोई वैधानिक सत्ता प्राप्त है बल्कि इसलिए भी किया जाता है कि सदियों से ऐसा ही चला आ रहा है। जो एक परम्परा के रूप में विद्यमान है। परम्परागत सत्ता का संचालन लिखित नियमों एवं विधानों के अन्तर्गत नहीं होता। यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी विरासत में प्राप्त होती है। सगे-सम्बन्धियों एवं समर्थकों के बल पर पारम्परिक सत्ता का संचालन किया जाता है। आधुनिक युग में पारम्परिक सत्ता में क्षीणता आई है। वर्तमान समय में पारम्परिक सत्ता का सर्वाधिक सशक्त उदाहरण राजतंत्र (Monarchy) प्रचलित है, परन्तु इसका स्वरूप अब अत्यन्त दुर्बल हो चुका है।

पारम्परिक सत्ता की वैधता प्राचीन परम्पराओं से प्राप्त होती है जो कुछ लोगों को आदेश प्रदान करने हेतु विवश करती है। वेबर इस प्रकार की सत्ता को तर्कहीन मानते हैं। अत: वर्तमान समय में यह सत्ता बहुत कम पाई जाती है। वैधानिक सत्ता वैधानिक नियमों के अनुसार सीमित तथा निश्चित होती है, चूँकि वैधानिक नियम सुनिश्चित तथा सुस्पष्ट होते हैं जबकि परम्परात्मक सत्ता में सामाजिक नियम स्पष्ट नहीं होते हैं। एक प्राचार्य के रूप में एक व्यक्ति की सत्ता का क्षेत्र, आरम्भ एवं

अन्त कहाँ है, यह सामान्यत: पूर्व निर्धारित है, परन्तु पिता या पति के अधिकारों तथा सत्ता का दायरा निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है।

3. **करिश्माई या चमत्कारिक सत्ता** (Charismatic or Miraculas Authority)—करिश्मा का अर्थ है—व्यक्ति में सामान्य से भिन्न (असाधारण) कुछ विशिष्ट गुणों का होना। प्राय: ये गुण वास्तविक भी हो सकते हैं एवं काल्पनिक भी। करिश्माई सत्ता के अन्तर्गत असाधारण गुण रखने वाले व्यक्तियों के सम्मुख लोग अपना समर्पण कर देते हैं। जिससे चमत्कारी गुण रखने वाले सामान्यजन की निष्ठा एवं भावनाओं पर अधिकार कर लेते हैं। सामान्यजन इस प्रकार की सत्ता का आदर इसलिए करते हैं क्योंकि चमत्कारिक गुण सामान्य व्यक्तियों में नहीं पाए जाते हैं। चमत्कारिक गुणों में अलौकिक क्षमता होती है। चमत्कारी सत्ता की वैधता जादुई शक्ति, दैवीय शक्ति एवं नेतृत्व पूजा, अलौकिक शक्तियों तथा विश्वासों में निहित होती है। इस प्रकार के विश्वासों का स्रोत व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित विजय चमत्कार तथा सफलता आदि होते हैं जो अपने अनुयायियों की भलाई हेतु किए गए हों। जब तक यह करिश्माई नेता अपने अनुयायियों एवं समर्थकों की नजर में अपनी चमत्कारिक शक्तियों को सिद्ध करते हैं तब तक उनकी सत्ता बराबर बनी रहती है। चमत्कारिक सत्ता अतार्किक होती है क्योंकि यह वर्तमान व्यवस्था को नहीं मानती इसलिए यह क्रान्तिकारी भी होती है। जो करिश्माई सत्ता सामाजिक क्रिया से जुड़ी है, वह भावात्मक क्रिया है। करिश्माई नेताओं के प्रवचनों एवं उपदेशों के प्रभाव से समर्थक एवं अनुयायी अत्यन्त भावुक हो जाते हैं यहाँ तक कि ये अनुयायी अपने नेता की पूजा तक करने लगते हैं।
करिश्माई सत्ता परम्परागत विश्वासों एवं लिखित नियमों पर आधारित नहीं होती है। यह अपनी विशेष क्षमता के बल पर शासन करने वाले नेता के विलक्षण गुणों का ही परिणाम है। करिश्माई सत्ता संगठित नहीं होती है इसके अन्तर्गत प्रशासनिक तंत्र एवं कर्मचारियों की आवश्यकता नहीं होती है। करिश्माई सत्ता के नेता एवं सहयोगी प्राय: पारिवारिक दायित्वों से विमुख रहते हैं कभी-कभी इन चमत्कारिक एवं विलक्षण गुणों को प्राप्त करने हेतु मनुष्य को लम्बे समय तक साधना भी करनी पड़ती है एवं इसमें अधिक समय भी लग सकता है। चमत्कारिक सत्ता प्राप्त करने हेतु व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को इस प्रकार बनाता है कि लोग उसे विशिष्ट विलक्षण प्रतिभाओं से युक्त समझने लगते हैं। जिसकी सहायता से वह जनहित में कार्य कर सकता है। दूसरों को अपने सम्मुख झुका सकते हैं। इस बात से प्रभावित होकर लोग इसकी सत्ता प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। पीर, पैगम्बर, जादूगर, अवतार, धार्मिक नेता, सैनिक, योद्धा तथा किसी दल के नेता में इस प्रकार की सत्ता निहित होती है।

व्यक्तिगत गुणों पर आधारित होने के कारण सम्बद्ध नेता की मृत्यु अथवा लापता होने की स्थिति में उत्तराधिकार की समस्या उत्पन्न हो जाती है। यदि चमत्कारिक नेता का पुत्र या पुत्री निकट सम्बन्धी इसका उत्तराधिकारी बनता है तब पारम्परिक सत्ता का अस्तित्व बना रहता है। सुभाष चन्द्र बोस, पं० जवाहर लाल नेहरू और स्वामी विवेकानंद में चमत्कारिक सत्ता या विशेषताएँ निहित थीं। इनमें जो गुण थे वे सामान्य जन में नहीं पाए जाते हैं, इसलिए सामान्यजन में इनके प्रति स्वाभाविक श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न होती है।

प्र.5. द प्रोटेस्टेंट एथिक्स एण्ड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' पर वेबर के विचारों का वर्णन कीजिए।
Describe the Protestant Ethics and the Spirit of Capitalism.

उत्तर

प्रोटेस्टेंट एथिक्स द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म
(Protestant Ethics and Spirit of Capitalism)

परिचय (Introduction)

'धर्म का समाजशास्त्र' मैक्स वेबर द्वारा प्रदत्त एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति है। विश्व के अनेक धर्मों का वेबर ने गहन अध्ययन किया और उनका अध्ययन तीन प्रमुख ग्रन्थों में वर्णित है। इस अध्ययन में उन्होने प्रमुख रूप से धार्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक घटनाओं के मध्य सम्बन्ध दर्शाने का प्रयास किया है।

पारसन्स के अनुसार, "इसमे कोई संदेह नहीं कि वेबर समस्त सम्बन्धित क्षेत्रों में असाधारण रूप से एक योग्य सामाजिक तथा आर्थिक इतिहासकार थे और इस कारण वे सुगमता से अपने शेष शैक्षणिक जीवन को एक महान ऐतिहासिक अध्ययन हेतु लगा सकते थे, परन्तु ऐसा करने के स्थान पर वे पूर्णत: भिन्न अध्ययन क्षेत्र की ओर मुड़े तथा सभी महान विश्वधर्मों के धार्मिक आचारों (Religious Ethics) एवं उनसे सम्बन्धित सामाजिक एवं आर्थिक संगठन के बीच पाये जाने वाले विद्यमान सम्बन्धों के शुभ तुलनात्मक अध्ययन कार्य में अपने को लगा दिया।" वेबर ने इस तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि सामाजिक संरचना में विस्तृत रूप में ऐसे कौन-से तत्त्व हैं जो केन्द्रीय रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

TOUCH-n-PASS

यद्यपि वेबर ने अपने समाजशास्त्रीय जीवन में अर्थशास्त्र के विषय में विचारों को व्यक्त करने के साथ-साथ कानून, नैतिकता तथा सामाजिक इतिहास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। परन्तु वेबर के विचारों को धर्म के समाजशास्त्र के रूप में अतिमहत्त्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने संसार के विभिन्न धर्मों का विधिवत् अध्ययन किया एवं यह जानने का प्रयास किया कि आर्थिक-सामाजिक घटनाओं तथा धार्मिक घटनाओं में क्या सम्बन्ध है। उन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया कि आधुनिक पूँजीवाद मात्र पश्चिमी देशों में ही सर्वप्रथम क्यों आया, अन्य देशों में क्यों नहीं? इसके लिए वेबर ने विभिन्न धर्मों में निहित धार्मिक आचारों (Religious Ethics) का तुलनात्मक अध्ययन किया एवं उसके सामाजिक तथा आर्थिक संगठनों से सम्बन्धित सम्बन्धों का विश्लेषण किया। उन्होंने धर्म तथा आर्थिक जीवन के सम्बन्धों के अध्ययन को 'द प्रोटेस्टेंट एथिक्स एण्ड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया।

कार्ल मार्क्स की तरह ही वेबर का भी यही मत है कि सामाजिक संरचना तथा सामाजिक जीवन में आर्थिक कारक ही महत्त्वपूर्ण हैं परन्तु वेबर कार्ल मार्क्स की तरह आर्थिक कारकों को मानव के राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, दार्शनिक तथा कलात्मक जीवन को निर्धारित करने वाला एक मात्र कारक नहीं मानते है।

वेबर का धार्मिक दृष्टिकोण (Religious View- Point of Weber)

'द प्रोटेस्टेंट एथिक्स एण्ड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' में वेबर के धर्म सम्बन्धी विचारों का उल्लेख मिलता है। इस कृति के अन्तर्गत उन्होंने यह प्रश्न उठाया है कि पश्चिमी समाजों में प्रचलित विचार 'मनुष्य का कर्त्तव्य ईश्वर द्वारा प्रदत्त अपनी आजीविका कमाने में है' का आधार क्या है? इस समस्या का सम्बन्ध विभिन्न सभ्यताओं में समाज एवं धर्म से है। धर्म पर आधारित अपने शोध के आधार पर वेबर द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि किस प्रकार कुछ धार्मिक सिद्धान्तों के प्रभाव से आर्थिक जीवन को उचित ठहराने की क्षमता बढ़ी है एवं कुछ के प्रभाव से कम भी हुई है। समाजशास्त्रीय विवेचन में वेबर ने निम्नलिखित तीन प्रमुख समस्याओं के आधार पर अध्ययन कार्य प्रारम्भ किया है—

1. धार्मिक विचारों का एक औसत अनुयायी की धर्मनिरपेक्ष नीति एवं आर्थिक व्यवहार पर विशेष प्रभाव।
2. धार्मिक विचारों का सामूहिक संरचना पर प्रभाव।
3. विभिन्न सभ्यताओं में धार्मिक सभ्यता के कारणों एवं प्रभाव की तुलना के पश्चात् पश्चिमी सभ्यता के तत्त्वों का निर्णय करना।

वेबर द्वारा इन समस्याओं के स्पष्टीकरण को भली-भाँति जानने हेतु पश्चिमी पूँजीवाद के विकास का अध्ययन किया गया। वह यह जानना चाहते थे कि पूँजीपति लोगों में धार्मिक रूझान का क्या प्रारूप है? मैक्स वेबर ने अपने अध्ययन के पश्चात् पाया कि प्रत्येक समाज के बड़े व सफल व्यापारियों के मस्तिष्क में एक नैतिक कल्पना यह होती है कि देवता मनुष्य से अच्छे कार्यों की अपेक्षा करते हैं एवं उन अच्छे कार्यों हेतु पुरस्कार भी प्रदान करते हैं एवं बुरे कार्यों हेतु मनुष्य को दण्डित भी करते हैं।

उन्होने अपने अध्ययन के आधार पर धर्म के समाजशास्त्र के सम्बन्ध में निम्नलिखित निष्कर्ष प्रदान किए हैं—

1. आर्थिक तथा धार्मिक घटनाएँ एक-दूसरे पर निर्भर हैं एवं एक-दूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं। इसलिए इनमें से किसी एक को दूसरे का निर्णायक मानना उचित नहीं होगा। अत: वास्तव में ये एक-दूसरे को परस्पर प्रभावित करते हैं।
2. घटनाओं को विश्लेषित करते समय एकतरफा दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करना चाहिए इसके अतिरिक्त मात्र धार्मिक एवं आर्थिक आधार पर किसी भी घटना की विवेचना नहीं करनी चाहिए बल्कि अन्य कारकों के प्रभाव को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।
3. किन्तु अध्ययन पद्धति के आधार के रूप में किसी एक कारक को परिवर्तनीय तत्त्व माना जा सकता है। वेबर धार्मिक कारक को एक परिवर्तनशील तत्त्व मानते हैं एवं आर्थिक तथा अन्य सामाजिक स्तर पर इसके प्रभाव को ज्ञात करने की कोशिश करते हैं।
4. वेबर द्वारा प्रत्येक धर्म के समस्त तत्त्वों को उल्लेखित नहीं किया जाता है बल्कि मात्र उसके आदर्श-प्रारूपों (Ideal type) को ही उल्लेखित किया जाता हैं। इसी प्रकार उन्होंने आर्थिक कारकों के भी आदर्श प्रारूपों को ज्ञात किया है इस प्रकार पूर्णरूप से यह स्पष्ट होता है कि वेबर ने अपने धर्म के अध्ययन में आदर्श प्रारूप की अवधारणा का प्रयोग किया है।

वेबर की विश्व विख्यात पुस्तक 'प्रोटेस्टेंट एथिक्स एण्ड स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' में धर्म सम्बन्धी विचारों के विवेचन में 'प्रोटेस्टेंट नीति एवं पूँजीवाद को विशेष महत्त्व प्रदान किया। अत: इसकी संक्षेप में विवेचना करना आवश्यक है।

1. प्रोटेस्टेंट नीति (आचार) (Protestant Ethics)
2. पूँजीवाद का सार (Essence of Capitalism)

TOUCH n PASS

प्रोटेस्टेंट नीति (आचार) (Protestant Ethics)

मनुष्य के आर्थिक आचरणों पर धार्मिक प्रभावों को पूर्णत: स्पष्ट करने हेतु सन् 1904 एवं 1905 में वेबर ने जो लेख प्रदान किए उन्हीं के आधार पर सुप्रसिद्ध एवं विवादग्रस्त पुस्तक 'प्रोटेस्टेंट एथिक्स एण्ड स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' का प्रकाशन हुआ। वेबर द्वारा इस पुस्तक में इस विषय को विस्तारपूर्वक प्रकाशित किया गया कि प्रोटेस्टेंट धर्म की नीतियाँ पूँजीवाद के विकास को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। वेबर को स्वयं के पारिवारिक जीवन में आर्थिक एवं व्यक्तिवादी आचरणों से सम्बन्धित नैतिकता का एक अनोखा मिश्रण देखने को मिला। कार्ल डेविड वेबर, मैक्स वेबर के चाचा थे जो एक ऐसे उद्यम के संस्थापक थे जो ग्रामीण घरेलू उद्योग पर आधारित था। वेबर ने यह अनुभव किया कि गाँव के लोग रहन-सहन के तरीके अत्यन्त कठिन परिश्रम, दयालुता एवं तर्क परीक्षण आदि गुणों से युक्त थे। जो आधुनिक पूँजीवाद के प्रारम्भिक भाग के उद्योगपतियों में स्पष्ट रूप से दिखाई देते थे। अत: इससे वेबर को स्पष्ट विश्वास हो गया कि पूँजीवाद एक विशेष प्रकार की नैतिकता है जिसमें अनेक विचारों का मिला-जुला रूप देखने को मिलता है।

प्रोटेस्टेंटवाद जैसा कि इसके नाम से ही ज्ञात होता है कि यह एक विरोध का धर्म है। यह लगभग 16वीं शताब्दी के आस-पास यूरोप में एक 'सुधार' के रूप में जाना जाता है। इस धर्म के संस्थापक मार्टिन लूथर एवं जॉन केल्विन को माना जाता है। इसके संस्थापक पिता कैथोलिक चर्च से पृथक हो गए। उन्होंने अनुभव किया कि चर्च अनेक सिद्धान्तों एवं अनुष्ठानों में लीन हो गया है। जिससे सामान्य लोगों से सम्पर्क सम्भव नहीं हो सकता है। चर्च में भ्रष्टाचार, लालच जैसी बुराइयाँ व्याप्त हो गई थीं। पुजारियों की जीवन-शैली राजकुमारों से अधिक उपयुक्त थी। सम्पूर्ण यूरोप में फैले विरोधाभासी सम्प्रदायों ने चर्च की खोई हुई भावना को पुन: प्राप्त करने का प्रयास किया।

केल्विनवाद फ्रांसीसी जॉन केल्विन द्वारा स्थापित किया गया एक ऐसा सम्प्रदाय था जिसने तपस्या, सादगी एवं भक्ति पर विशेष बल दिया। केल्विन धर्म के अनुयायी इंग्लैण्ड में प्यूरिटन के रूप में जाने जाते थे। वेबर केल्विनवाद को अत्यधिक पसन्द करते थे। वे केल्विनवाद की निम्नलिखित विशेषताओं से प्रेरित थे—

1. **भगवान की छवि** (Image of Lord)—केल्विन के अनुसार भगवान सर्वशक्तिशाली एवं पारंगत थे उनकी दिव्य इच्छा अज्ञात थी। किसी भी मनुष्य के लिए प्रभु की इच्छा को समझने की कोशिश मूर्खता होगी। इसे समझना सम्भव नहीं है क्योंकि यह स्वयं ईश्वर की इच्छा है।
2. **पूर्व गंतव्य का सिद्धान्त** (Doctrine of Pre-destination)—केल्विनवाद का यह एक विश्वास है कि ईश्वर कुछ मनुष्यों को मोक्ष (उद्धार) के लिए चुन लेते हैं। ईश्वर ने जिन्हें चुना है मात्र वही स्वर्ग के अधिकारी हैं अन्य लोग शापित होते हैं। इसके अनुसार चुने हुए लोग स्वर्ग पहुँचेंगे चाहे पृथ्वी पर वह कोई भी कार्य करें। व्यक्ति प्रार्थना एवं बलिदान के द्वारा परमेश्वर को रिश्वत नहीं दे सकता। चूँकि यह इच्छा अज्ञात है, इसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता। हम इस कट्टर धर्म के अनुयायी की असुरक्षा की कल्पना कर सकते हैं।
3. **केल्विनवाद और सांसारिक तपस्या** (Calvinism and the Worldly Asceticism)—'तप' से अभिप्राय कठिन आत्म अनुशासन, तृष्णाओं पर नियंत्रण एवं विजय प्राप्त करने से है। प्रोटेस्टैटिज्म में विशेष रूप से केल्विनवाद में वेबर द्वारा सांसारिक तपस्या (तप) को ज्ञात किया गया है। पर्यावरण में इसने महारत हासिल करने हेतु दृढ़-आत्मानुशासन पर विशेष बल दिया। अत्यन्त कठिन परिश्रम के पश्चात् एक सरल मितव्ययी जीवन-शैली की सिफारिश की गई थी।

   केल्विन धर्म में सांसारिक वस्तुओं का सुख तथा कामुक सुखों को आतंक की दृष्टि से देखा जाता था। इसके अन्तर्गत ऐसा माना जाता था कि नृत्य, संगीत, अच्छे कपड़े, रंगमंच तथा उपन्यास आदि शैतान से उत्पन्न हुए हैं क्योंकि ये समस्त चीजें कहीं-न-कहीं मनुष्य को ईश्वर के प्रति कार्य करने से रोकते हैं। इसके अतिरिक्त हँसी की मानवीय अभिव्यक्ति पर भी ध्यान दिया जाता था। यह समस्त विरोधी सम्प्रदायों की एक सामान्य विशेषता थी। प्रारम्भिक पूँजीवाद का सिद्धान्त था कि 'ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है'।

   वेबर यह स्पष्ट करने में सफल हुआ कि जर्मनी में पूँजीवादी उद्यमी विशेष रूप से इसका विरोध करते थे। वह न केवल यूरोप में बल्कि संयुक्त राज्य अमेरिका में भी पुरीटंस, मेनोनाइट, मेथोडिस्ट, वेपटिस्ट एवं क्वेकर सम्प्रदायों की सदस्यता तथा सफल व्यावसायिक गतिविधियों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने में भी सफल हुआ था। इस सम्बन्ध को भली-भाँति समझाने के लिए उन्होंने इन सम्प्रदायों द्वारा अपनाई जाने वाली जीवन-शैली के अर्थ की व्याख्या की।

TOUCH 'n' PASS

वेबर द्वारा मेथोडिस्ट के एक उदाहरण के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया कि एक सम्प्रदाय अपने अनुयायियों को किन बातों के लिए मना करता है—

(i) खरीदते एवं बेचते समय शर्तें (परेशान करने वाली) बनाना।
(ii) देश के कानूनों से ज्यादा ब्याज दरों में परिवर्तन करना।
(iii) आवश्यक करों एवं मूल्यों का भुगतान बिना किए माल के साथ व्यापार करना।
(iv) ऋण का भुगतान करने की क्षमता के विषय में सुनिश्चित किए बिना उधार लेना।
(v) 'पृथ्वी पर खजाने इकटठा करने के लिए' (वित्त पोषित धन में निवेश पूँजी को बदलना।)
(vi) 'समस्त प्रकार की विलासिता'।

वेबर पूँजीवाद के सार/ आत्मा को स्पष्ट करने हेतु विभिन्न कारणों या प्रोटेस्टेंट के व्यवहार या नियम (आचार) को प्रस्तुत करते हैं जिसके आधार पर इसकी (पूँजीवाद) उत्पत्ति को धार्मिक परिवर्तन या सुधार आन्दोलनों के विचारों में खोजा जा सके। वेबर से पहले माण्टेस्क्यू (Montesquieu) पेटी (Petty), तथा कीटस (Keats) आदि ने प्रोटेस्टेंट धर्म एवं व्यापारिक प्रवृत्ति के विकास के सहसम्बन्धों पर अपने-अपने विचारों को प्रस्तुत किया। बाडेन (Baden) (वेबर के विद्यार्थी थे) को वेबर ने राज्य में धार्मिक सम्बन्धों तथा शिक्षा के चुनाव का अध्ययन करने हेतु कहा। बाडेन के अध्ययन के परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकला कि प्रोटेस्टेंट विद्यार्थी कैथोलिक विद्यार्थियों की अपेक्षा उन शिक्षण संस्थाओं में अधिक प्रवेश लेते थे जो औद्योगिक जीवन से सम्बद्ध है। इसका प्रमुख कारण यह था कि यूरोप में कुछ अल्पसंख्यक वर्ग समूह के लोगों ने कठोर आर्थिक परिश्रम करके स्वयं की राजनीतिक सामाजिक हानियों को पूर्ण कर लिया था। किन्तु कैथोलिक धर्म के अनुयायी ऐसा करने में सफल न हो सके। वेबर ने इन प्रमुख कारणों का यह परिणाम था कि धार्मिक नीति तथा आर्थिक क्रियाओं के मध्य सहसम्बन्ध पाया जाता है। वेबर ने इस बात को अनुभव किया कि वे प्रान्तीय एवं नगरीय लोग आर्थिक लाभ के प्रयत्न को बढ़ावा दे रहे थे जिन्होने प्रोटेस्टेंट धर्म की नीतियों को स्वीकार कर लिया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह खोज की, कि तार्किक दृष्टि से आर्थिक लाभों को प्राप्त करने वाले लोगों के लिए प्रोटेस्टेंट नीतियाँ प्रेरणा का स्रोत बन गई थीं। प्रोटेस्टेंटवाद धार्मिक विचारधारा, पोप के सर्वस्व अधिकार को स्वीकार नहीं करती और इसमें विशेष रूप से विवेक तत्त्व पाया जाता है।

प्रोटेस्टेंट धर्म के प्रमुख तत्त्व नैतिकतावादी दृष्टिकोण संग्रह की प्रवृत्ति, श्रम के प्रति निष्ठा, ईमानदारी आदि इन प्रमुख तत्त्वों से ही यूरोप के विभिन्न देशों में पूँजीवाद का विकास सम्भव हुआ। प्रोटेस्टेंटवाद की नीति के रूप में सेंट पॉल के इस आदेश को व्यापक रूप में स्वीकार किया गया—'जो व्यक्ति काम नहीं करेगा, वह रोटी नहीं खाएगा तथा निर्धन की तरह धनवान भी ईश्वर के गौरव को बढ़ाने के लिए किसी न किसी व्यवसाय में अवश्य जुटे।'

प्रोटेस्टेंट धर्मावलम्बियों को इस कथन से प्रेरणा दी गई है।

सेण्ट जॉन बनियन का कथन है कि "यह नहीं कहा जायेगा कि तुम क्या विश्वास करते थे केवल यह कहा जायेगा कि क्या तुम परिश्रम भी करते थे या केवल बातूनी ही थे।" अत: प्रोटेस्टेंट धर्म के अन्तर्गत समय का सदुपयोग करना, सक्रिय जीवन यापन करना, व्यर्थ की बातचीत न करना, अधिक न सोना एवं ईश्वर के ध्यान के स्थान पर कार्य करना आदि को मनुष्य के जीवन की नियमावली में रखा गया है।

वेबर द्वारा प्रोटेस्टेंट धर्म में पाए जाने वाले उन आर्थिक आचारों का भी उल्लेख किया गया है जिसके माध्यम से आधुनिक पूँजीवाद का जन्म हुआ। आधुनिक पूँजीवाद की उन शिक्षाओं तथा उपदेशों का उल्लेख बेन्जामिन फ्रेंकलिन के द्वारा किया गया जो सफल व्यवसायी तथा पूँजीपति बनने हेतु आवश्यक है। यह निम्न प्रकार हैं—

1. 'समय ही धन है'।
2. 'धन से धन कमाया जाता है'।
3. 'एक पैसा बचाना एक पैसा कमाना है'।
4. 'ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है'।
5. 'जल्दी सोना और जल्दी उठना व्यक्ति को स्वस्थ, धनी और बुद्धिमान बनाता है'।
6. 'कार्य ही पूजा है' आदि।

प्रोटेस्टेंट धर्म की तुलना मैक्स वेबर ने मानव जगत के अन्य धर्मों से की तो उन्होंने पाया कि प्रोटेस्टेंट धर्म ही एक मात्र ऐसा धर्म है जिसके आर्थिक परिणाम अत्यधिक सुस्पष्ट तथा दूरगामी हैं। वेबर के अनुसार, यह धर्म परिश्रम करने, उत्साही एवं ईमानदार तथा मितव्ययता बनाने के साथ ही पैसे बचाने पर विशेष बल देता है। अगर ये उपदेश तथा सिद्धान्त या आचार नहीं होते तो आधुनिक पूँजीवाद का भी उदय न होता।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. मैक्स वेबर का जन्म कब हुआ था?
(क) 1865 (ख) 1864 (ग) 1866 (घ) 1867
उत्तर (ख) 1864

प्र.2. वेबर की महत्त्वपूर्ण कृति 'द प्रोटेस्टेंट एथिक्स एण्ड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' किस वर्ष प्रकाशित हुई थी?
(क) 1905 (ख) 1902 (ग) 1907 (घ) 1909
उत्तर (क) 1905

प्र.3. मैक्स वेबर की कृतियों में शामिल नहीं है–
(क) इकोनॉमी एण्ड सोसायटी (ख) द रिलीजन ऑफ इण्डिया
(ग) एसेज इन सोशियोलॉजी (घ) माइंड सेल्फ एण्ड सोसायटी
उत्तर (घ) माइंड सेल्फ एण्ड सोसायटी

प्र.4. मैक्स वेबर का निधन कब हुआ?
(क) 1925 (ख) 1927 (ग) 1920 (घ) 1924
उत्तर (ग) 1920

प्र.5. वेबर ने अपनी कृति 'द थ्योरी ऑफ सोशल एण्ड इकानॉमिक ऑर्गेनाइजेशन' में सामाजिक क्रिया के कितने प्रकार बताए हैं?
(क) 3 (ख) 5 (ग) 4 (घ) 6
उत्तर (ग) 4

प्र.6. मैक्स वेबर के सिद्धान्तों में शामिल नहीं है–
(क) प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद (ख) सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त
(ग) सत्ता की अवधारणा (घ) धर्म का समाजशास्त्र
उत्तर (क) प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद

प्र.7. वरस्टेहन (Verstehen) का सिद्धान्त किसने दिया है?
(क) इमाईल दुर्खीम (ख) मैक्स वेबर (ग) कार्ल मार्क्स (घ) जी०एच० मीड
उत्तर (ख) मैक्स वेबर

प्र.8. मैक्स वेबर के अनुसार सत्ता का प्रकार है–
(क) वैधानिक सत्ता (ख) परम्परागत सत्ता
(ग) करिश्माई या चमत्कारिक सत्ता (घ) ये सभी
उत्तर (घ) ये सभी

प्र.9. निम्नलिखित में सामाजिक क्रिया की विशेषता नहीं है–
(क) सामाजिक क्रिया में क्रिया-प्रतिक्रिया होती है। (ख) सामाजिक क्रिया व्यवहार द्वारा प्रभावित होती है।
(ग) प्रत्येक क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं होती है। (घ) सामाजिक क्रिया एक-सी क्रियाएँ नहीं होती।
उत्तर (क) सामाजिक क्रिया में क्रिया-प्रतिक्रिया होती है।

प्र.10. वेबर ने बौद्धिक विधि में शामिल किया है–
(क) गणिताश्रित विधि (ख) तर्काश्रित विधि
(ग) (क) व (ख) दोनों (घ) प्रत्यक्ष अवलोकन
उत्तर (ग) (क) व (ख) दोनों

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VII

जी०एच० मीड
G.H. Mead

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. जी०एच० मीड ने अपने जीवनकाल में कितनी पुस्तकें लिखीं?
How many books did G.H mead write in his lifetime?

उत्तर जी०एच० मीड ने अपने जीवनकाल में कभी भी किसी पुस्तक की रचना नहीं की अपितु कुछ लेख ही लिखे जिसे इन्होंने कभी भी प्रकाशित नहीं किया। मीड की मृत्यु के बाद उसके शिष्यों ने उसके क्लास नोट्स तथा व्याख्यानों एवं अप्रकाशित पत्रों को संकलित कर चार खंडों में सम्पादित किया—

1. द फिलासॉफी ऑफ प्रजेन्ट–1932 [The Philosophy of Present (1932)]
2. माइन्ड, सेल्फ एण्ड सोसायटी–1934 [Mind, Self and Society (1934)]
3. मूवमेन्ट ऑफ थॉट इन द 19वीं सेन्चुरी, 1936 [Movements of Thought in the 19th Centurey (1936)]
4. द फिलॉसॉफी ऑफ द एक्ट 1938 [The Philosophy of the Act, (1938)]

प्र.2. प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद की प्रमुख मान्यताएँ संक्षेप में लिखिए।
Write the main assumptions of symbolic interactionism.

उत्तर प्रतीकात्मक अन्त: क्रियावाद की प्रमुख मान्यताएँ निम्नांकित हैं—

1. प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद सामाजिक संगठन को एक सावयवी प्रक्रिया मानता है।
2. अनिवार्य रूप में सामाजिक संरचनाएँ तथा अन्त:क्रियाओं की प्रकृति सावयविक व गतिशील होती हैं।
3. सामाजिक जीवन का अध्ययन अन्त:क्रिया कई वैयक्तिक इकाइयों पर केन्द्रित होना चाहिए।
4. सामाजिक जगत के बारे में व्यक्तियों के मूल्यांकन, निर्वाचन, परिभाषा व मानचित्रों द्वारा सामाजिक संगठन का विकास होता है। सामाजिक आवश्यकताओं, व्यवस्था की शक्तियों, संरचनात्मक क्रियाविधि आदि के द्वारा नहीं होता है।

प्र.3. जी०एच० मीड के अनुसार समाज क्या है?
What is society according to mead?

उत्तर मीड ने समझाया कि एक व्यक्ति को अन्य लोगों से अलग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वह व्यक्तित्व या स्वयं की भावना विकसित नहीं कर पाएगा क्योंकि ये सामाजिक संपर्क के माध्यम से हासिल किए जाते हैं। संक्षेप में, लोग जो कुछ भी करते हैं और उनकी सभी अंत:क्रियाएँ समाज का निर्माण करती हैं।

प्र.4. जॉर्ज हरबर्ट मीड का समाजशास्त्र में क्या योगदान है?
What is the contribution of George Harbert mead in sociology?

उत्तर विशेष रूप से, महत्त्वपूर्ण संचार की सामाजिक प्रक्रिया से मन और स्वयं के उद्‌भव का मीड का सिद्धांत समाजशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान के प्रतीकात्मक अंत:क्रियावादी स्कूल की नींव बन गया है।

प्र.5. मीड का सामाजीकरण का सिद्धांत क्या है?
What is mead's theory of socialization?

उत्तर बच्चे का स्व दूसरे लोगों के व्यवहार से प्रभावित होता है। मीड इसे ही सामान्यीकृत अन्य कहते है, जिसका अर्थ है—किसी व्यक्ति की स्वयं के बारे में वह धारणा जो कि दूसरे लोग उसके बारे मे रखते हैं।

TOUCH 'n PASS

प्र.6. जॉर्ज हरबर्ट मीड किस प्रकार के समाजशास्त्री थे?
What type of sociologist was George Harbert Mead?

उत्तर कई लोग उन्हें समाजशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान में प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद के स्कूल का जनक मानते हैं, हालाँकि उन्होंने इस नामकरण का उपयोग नहीं किया। शायद दार्शनिक हलकों में मीड का प्रमुख प्रभाव जॉन डेवी के साथ उनकी दोस्ती के परिणामस्वरूप हुआ।

प्र.7. मीड के अनुसार सामाजिक स्व के विकास में तीन मुख्य चरण कौन-से हैं?
According to Mead, what are the three main stages in the development of the social self?

उत्तर जॉर्ज हरबर्ट मीड ने सिद्धान्त दिया कि स्वयं का विकास तीन चरण की भूमिका लेने की प्रक्रिया के माध्यम से होता है। इन चरणों में प्रारंभिक चरण, खेल-कूद चरण और खेल चरण शामिल हैं।

प्र.8. जॉर्ज हरबर्ट मीड एक दार्शनिक के रूप में कौन हैं?
Who is George Herbert Mead as a philosopher?

उत्तर जॉर्ज हरबर्ट मीड (27 फरवरी, 1863-26 अप्रैल, 1931) एक अमेरिकी दार्शनिक, समाजशास्त्री और मनोवैज्ञानिक थे, जो मुख्य रूप से शिकागो विश्वविद्यालय से संबद्ध थे। वह व्यावहारिकता के विकास में प्रमुख व्यक्तियों में से एक थे।

प्र.9. जॉर्ज हरबर्ट मीड के सामाजिक व्यवहारवाद का सिद्धान्त क्या है?
What is the theory of social behaviorism of George Herbert Mide?

उत्तर जॉर्ज हरबर्ट मीड ने यह समझाने के लिए सामाजिक व्यवहारवाद का एक सिद्धांत विकसित किया कि सामाजिक अनुभव किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को कैसे विकसित करता है। मीड की केंद्रीय अवधारणा स्वयं है: किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का वह हिस्सा जो आत्म-जागरूकता और आत्म-छवि से बना है।

प्र.10. मीड द्वारा अधिनियम के चार चरण क्या हैं?
What are the four stages of act by mead?

उत्तर मीड ने अभिनय के चार बुनियादी चरणों की पहचान की जो द्वंद्वात्मक रूप से परस्पर जुड़े हुए हैं—

1. **आवेग**—उत्तेजना के प्रति अभिनेता की प्रतिक्रिया।
2. **धारणा**—अभिनेता आवेग से संबंधित उत्तेजनाओं की खोज करता है और उन पर प्रतिक्रिया करता है।
3. **हेरफेर**—अभिनेता वस्तु के संबंध में कार्रवाई करता है।
4. **समाप्ती**—इसमें आवेग की समाप्ती होती है।

प्र.11. प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद का क्या अर्थ है?
What does symbolic interactionism mean?

उत्तर एक सैद्धांतिक धारा जो समाजशास्त्र में उभरती है (लेकिन मानवविज्ञान और मनोविज्ञान की ओर तेज़ी से बढ़ा) और यह कि व्यक्तिगत पहचान और सामाजिक संगठन दोनों को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के रूप में बातचीत और प्रतीकों का अध्ययन करता है।

प्र.12. प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद की विशेषताएँ कौन-सी हैं?
What are the characteristics of symbolic interactionism?

उत्तर प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद सामाजिक संरचना एवं संगठन को अध्ययन का विषय नहीं मानता। वह इनकी अवधारणा को दोषयुक्त बताता है, जबकि सामाजिक संरचना एवं संगठन दोनों को महत्त्वपूर्ण सामाजिक अवधारणाएँ माना गया है। प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद की सामूहिक सामाजिक जीवन की समझ अत्यधिक विस्तृत है।

प्र.13. प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद में प्रतीकात्मक शब्द का क्या महत्त्व है?
What is the importance of the word symbolic in symbolic interactionism?

उत्तर व्यक्तियों के बीच रोजमर्रा की बातचीत पर ध्यान केंद्रित करने वाला एक दृष्टिकोण है। प्रतीकात्मक शब्द इस बात पर जोर देता है कि लोग प्रतीकों के सामान्य सेट का उपयोग करके संवाद और बातचीत करते हैं, जिसे समूह के सदस्य समझते हैं।

TOUCH 'n PASS

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद की अवधारणा दीजिए।
Give the concept of symbolic interactionism.

उत्तर

प्रतीकात्मक अंत: क्रियावाद की अवधारणा
(Concept of Symbolic Interactionism)

प्रतीकात्मक अंत:क्रियात्मक सिद्धान्त या प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद, एक समाजशास्त्रीय सिद्धांत है जो प्रतीकों पर ध्यान केंद्रित करते हुए किसी व्यक्ति द्वारा अपने समाज के साथ सम्बन्धों को समझने का प्रयास करता है साथ ही व्यक्ति के जीवन में अनुभवों को अर्थ देने में उसकी सहायता भी करता है। इसे प्रतीकात्मक अंत:क्रियात्मक परिप्रेक्ष्य या उपागम भी कहते हैं। सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रतीकात्मक अंत:क्रिया सिद्धांत को उन सिद्धांतों के निर्माण के लिए एक रूपरेखा के रूप में देखा जाता है जो समाज को प्रतिदिन की मानवीय अंत:क्रियाओं के उत्पाद के रूप में देखते हैं। प्रतीकात्मक अंत:क्रियात्मक परिप्रेक्ष्य या उपागम इस धारणा पर आधारित है कि लोग संचार एवं सामाजिक संपर्क के माध्यम से अपनी सामाजिक दुनिया का अर्थ समझते हैं तथा प्रतीकों और भाषा के माध्यम से अर्थ का आदान-प्रदान करते हैं।

इस प्रकार समाज के सानिध्य में आने से मनुष्य का सामाजीकरण होता है और वह समाज का क्रियाशील सदस्य बन जाता है। समाज से सम्पर्क के अभाव में मनुष्य की शारीरिक रचना कितनी ही सुन्दर क्यों न हो वह विकसित नहीं हो सकती है। समाज में रहते हुए व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ स्वयं की जरूरतों को पूरी करने के सन्दर्भ में परस्पर विभिन्न अन्त:क्रियाएँ करता है। इस पारस्परिक क्रिया के दौरान वह स्वयं के कुछ हाव-भाव, संकेत, प्रतीक आदि का प्रयोग करता है जिसकी अभिव्यक्ति भाषा, संकेत आदि के माध्यम से होती है।

अत: प्रतीकात्मक अन्त:क्रिया में मानव या समूह की भाषा, हाव-भाव या भाव-भंगिमाओं को संचार तथा पारस्परिक अन्त:क्रिया का मुख्य आधार माना गया है। प्रतीकात्मक अंत:क्रिया सिद्धांत के समर्थकों ने तर्क दिया कि हम अपने आस-पास की दुनिया को जो अर्थ देते हैं, वह लोगों, विचारों और घटनाओं के साथ हमारी बातचीत पर निर्भर करता है। उन्होंने कहा कि दुनिया के बारे में हमारी समझ और हम अपने समाज के साथ कैसे बातचीत करते हैं, यह इस बात पर आधारित है कि हम वस्तुगत सत्य के बजाय दूसरों के साथ अपनी बातचीत से क्या सीखते हैं। सरल शब्दों में, प्रतीकात्मक अंत: क्रियावादियों का मानना है कि हमारा समाज सामाजिक रूप से उन अर्थों से निर्मित है जिन्हें हम सामाजिक अंत:क्रियाओं और घटनाओं से जोड़ते हैं।

प्र.2. प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद के सिद्धान्त का उल्लेख कीजिए।
Explain the principles of symbolic interactionism.

उत्तर

प्रतीकात्मक अन्त: क्रियावाद के सिद्धान्त
(Principles of Symbolic Interactionism)

प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद की औपचारिक शुरूआत मीड ने की थी लेकिन इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हरबर्ट ब्लूमर ने किया था। शिकागो स्कूल के ब्लूमर ने 1969 में प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद के चार मूल सिद्धान्तों की पहचान की जो कि निम्नांकित हैं—

1. वस्तुओं तथा इशारों के अर्थों के जवाब में व्यक्तिगत क्रियाएँ होती हैं। उदाहरण के लिए हरे रंग का चिन्ह किसी विशेष स्थिति में आगे बढ़ने का संकेत है तो व्यक्ति तद्नुसार कार्य करेंगे।
2. सामाजिक सन्दर्भों के भीतर पहले से परिभाषित तथा वर्गीकृत सभी अन्त:क्रिया होती हैं। अर्थात् पहले से ही एक साझा वर्गीकरण के सन्दर्भ में सामाजिक स्थितियों को अर्थ प्रदान किया जाता है। उदाहरण के लिए—नैतिक मूल्य, तो सभी सदस्यों को उसके विषय में ज्ञात होगा और उनका आचरण उसी के अनुसार होगा।
3. निरन्तर अन्त:क्रियाओं से निकलने वाले अर्थ जो समाज में व्यक्ति एक दूसरे के साथ तथा बड़े पैमाने पर समाज के साथ होते हैं। उदाहरण के लिए- एक विद्यार्थी यह सीख सकता है कि विद्यालय शिक्षा का मन्दिर है, लेकिन इसकी पुष्टि समाज के अन्य सदस्यों द्वारा की जाएगी। इसके फलस्वरूप यह अर्थ के सामान्यीकृत प्रणाली का एक हिस्सा बन सकता है।
4. अर्थ अस्थिर होते हैं, पुराने अर्थों को दूसरों के साथ सामाजिक सम्पर्क के रूप में त्याग दिए जाते हैं और नए अर्थ लगाए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए- किसी नई वस्तु के उभरने पर तो उसे कुछ लोग पवित्र मानते हैं तथा कुछ लोग उसे अपवित्र मानते हैं। समय के साथ उसका अर्थ स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है।

TOUCH 'n' PASS

ब्लूमर ने व्यक्तियों और समाज को एक दूसरे से अलग नहीं माना है, बल्कि उसे एक दूसरे से उलझा हुआ माना है। ब्लूमर अन्त:क्रिया के विशेष रूप में प्रतीकात्मक अन्त: क्रियावाद को मानते हैं, जो कि केवल मनुष्यों के रूप में होती है। मनुष्य इस अर्थ के अनुसार अन्त:क्रिया करते हैं जिसे कि वे वस्तुओं और इशारों को प्रदान करते हैं। ब्लूमर के अनुसार केवल गुणात्मक कार्यप्रणाली के माध्यम से अर्थ निकाले जाते हैं। प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक तरीकों की प्रभावशीलता सामाजिक व्यवहार के अध्ययन के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण थी। व्यक्ति के अन्दर क्या चल रहा है, वे अपने कार्यों को दूसरों के सन्दर्भ में कैसे नियन्त्रित करते हैं। इसके लिए अधिक व्यक्तिपरक उन्मुख तकनीकी की अनुशंसा की। केवल गुणात्मक विधियों द्वारा मानव व्यवहार के एक अन्वेषक को व्यवहार की गहराई से समझ प्राप्त करनी चाहिए। ब्लूमर द्वारा संक्षेप में प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद के तीन मूल आधार दिए गए हैं—

1. समाज के अन्य सदस्यों के साथ हुई सामाजिक अन्त:क्रियाओं से ये अर्थ उत्पन्न होते हैं।
2. वस्तुओं के अनुसार अन्य सभी मनुष्य वस्तुओं या प्रतीकों के लिए कार्य करते हैं। इनका अर्थ व्यक्तिगत और सामूहिक सन्दर्भ के अनुसार अलग-अलग होता है।
3. ये अर्थ वस्तु से अंतर्निहित नहीं अपितु मानसिक प्रक्रिया का परिणाम है। इसका अर्थ व्याख्यात्मक तरीके से उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, किसी ऐतिहासिक इमारत मूल संरचना से परे को महत्त्वपूर्ण मान सकते हैं, जो किसी समुदाय के सदस्यों द्वारा उन्हें सौंपे गए ऐतिहासिक अर्थ के कारक हो सकते हैं। इस सिद्धान्त में अन्त:क्रिया नियतवाद की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है लेकिन वे भावनाएँ जो मानव प्रभाव की धारणाओं को प्रकट करती हैं, उन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। यह एक व्याख्यात्मक प्रक्रिया है, इसलिए इस तरह के सभी महत्त्व प्रकृति में प्रतीकात्मक हैं।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. जॉर्ज हरबर्ट मीड का प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद के सिद्धान्त के स्वअवधारणा का वर्णन कीजिए।

Describe the self theory of the George Herbert Mead's symbolic interactionism theory.

उत्तर

जॉर्ज हरबर्ट मीड का प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद का सिद्धान्त
(George Herbert Mead's Symbolic Interactionism Theory)

जॉर्ज हरबर्ट मीड की प्रसिद्ध कृति 'माइण्ड, सेल्फ एण्ड सोसाइटी' थी। इनकी इस पुस्तक का प्रकाशन 1934 में उनके छात्रों द्वारा उनकी मृत्यु के पश्चात् किया गया था। इनकी इसी पुस्तक ने प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद सम्प्रदाय या स्कूल की नींव रखी। स्व तथा चेतना के विकास के सम्बन्ध में उनका यह सिद्धांत वह आधार है जिसके द्वारा विभिन्न समाजशास्त्रियों ने कई सिद्धांतों का निर्माण किया था। प्राय: मीड के विचारों को 'सामाजिक व्यवहारवाद' के वर्ग में रखा जाता है। उनके इस सिद्धांत का मूल आधार या अवधारणा यह है कि 'स्व' स्वत: नहीं उभरता है, बल्कि दूसरों के साथ अन्त:क्रिया के माध्यम से उभरता है। 'माइण्ड, सेल्फ एंड सोसाइटी' में मीड ने प्रतीकात्मक अन्त: क्रियावादी सिद्धान्त के निर्माण हेतु मुख्य रूप से चार अवधारणाओं का प्रतिपादन किया है। इन्हीं अवधारणाओं के माध्यम से प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावादी सिद्धान्त का स्पष्टीकरण होता है। मीड की ये चार अवधारणाएँ निम्नांकित हैं—

1. स्व (Self)
2. स्व अन्तर्क्रिया (Self Interaction)
3. स्व का विकास (Self Development)
4. प्रतीकात्मक अर्थ (Symbolic Meaning)

स्व (Self)

हरबर्ट मीड ने 'स्व' की अवधारणा को प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद का केन्द्रीय आधार माना है। इनके अनुसार मानव के भीतर 'स्व' होता है जो उसके जन्म के समय अपने विशुद्ध रूप में होता है एवं केवल सहजवृत्ति व आवेग से भरा होता है। नवजात बालक, बच्चा या शिशु को जब चोट लगती है तब वह रोने लगता है, लेकिन जब माता उसे स्तनपान करा देती है तो वह रुदन (रोना) बन्द कर देता है। यह 'स्व' का प्राकृतिक स्वरूप है। जब इस 'स्व' का विकास हो जाता है तब वह समझ जाता है कि यदि वह रोता तो उसकी देखभाल अधिक होती है, इसलिए अब वह अपनी सुविधार्थ रोने लगता है। मीड के अनुसार 'स्व' के विकास की शायद

TOUCH 'n PASS

यही प्रारम्भिक अवस्था है। इसके बाद जब पर्याप्त रूप से 'स्व' का समाजीकरण हो जाता है, तब वह स्वयं को पास-पड़ोस, गांव-नगर, जाति-बिरादरी/नातेदारी, शिक्षा-दीक्षा में समझने लगते हैं। मीड के अनुसार, सामाजिक अन्त:क्रिया के द्वारा ही बालक या बच्चे में स्वयं या अपने बारे में समझ या बोध विकसित होती है। इसी के द्वारा 'स्व' की उत्पत्ति होती है। मीड के लिए 'स्व' सृजनात्मक सावयव है जो बराबर क्रियाशील रहता है। यह अपने आप में एक सामाजिक प्रक्रिया है। सामाजिक प्रक्रिया के रूप में अन्त:क्रिया करते समय बाहरी दुनिया की बातें सबसे पहले 'स्व' में पहुँचती हैं। 'स्व' का इन बातों से आमना-सामना होता है तथा बाहरी दुनिया की भूमिकाओं को अपना समझकर अपना लेता है। अत: 'दूसरे व्यक्तियों की भूमिकाओं को ग्रहण करने से ही उसे 'स्व' का ज्ञान होता है। मीड ने इन दूसरे व्यक्तियों को 'सामान्यीकृत अन्य' कहा है।

इस प्रकार मीड की 'स्व' की अवधारणा अत्यन्त अर्थपूर्ण है। इन्होंने 'स्व' की धारणा को समाजीकरण के समग्र दृष्टिकोण द्वारा आकार दिया था क्योंकि स्व की धारणा जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। अर्थात् मनुष्य का 'स्व' निरन्तर सृजनशील और क्रियाशील है। मीड के अनुसार 'स्व' वह सामाजिक उत्पाद है जो अन्य लोगों के साथ सम्बन्धों से उत्पन्न होता है। स्व एवं सामाजिक मूल्यों/मानकों/भूमिकाओं में अन्तक्रिया होती है, दोनों में परस्पर विनिमय होता है। 'स्व' मूल्यों, मानकों, भूमिकाओं आदि का निर्वाचन करता है। इस प्रकार से 'स्व' और समाज के मूल्यों, मानकों, भूमिका एवं प्रस्थिति दोनों के बीच निरन्तर अन्तक्रिया जारी रहती है।

स्व के मुख्य पहलू या अवस्थाएँ (Core Aspects or Stages of the Self)

हरबर्ट मीड द्वारा स्व की दो अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है। ये अवस्थाएँ निम्न हैं—

1. मैं (I)
2. 'मुझे' या मेरा (Me)

मीड ने 'मैं' तथा 'मुझे' को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'मैं' सावयव का असंगठित प्रत्युत्तर है। यह प्रत्युत्तर मूलभूत मनोभावों एवं अभिवृत्तियों से प्रेरित होता है। जबकि 'मुझे' (Me) वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति ने दूसरों से जो कुछ सीखा है, उसके दायरे में प्रत्युत्तर देता है। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि कई बार 'मैं' जब 'मुझे' (Me) की बात को स्वीकार करता है, तब ऐसी सम्भावना भी बनती है कि व्यक्ति किसी आविष्कार को जन्म दे या नवीनीकरण को प्रस्तुत करे।

इस प्रकार हरबर्ट मीड के अनुसार, 'मैं' (I) असमाजीकृत शिशु या बच्चे को इंगित करता है, जो कि स्फूर्त आवश्यकताओं एवं इच्छाओं का एक पुंज या समूह होता है। अत: 'मैं' व्यक्ति के जैविकीय पक्ष से सम्बन्धित है। इसके विपरीत 'मुझे' (Me) व्यक्ति के सामाजिक स्वचेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी उत्पत्ति अन्य व्यक्तियों के स्वयं को देखने की जानकारी से होती है अर्थात् दूसरे व्यक्ति उसे किस दृष्टि से देखते हैं, उसी रूप में वह स्वयं को देखने लगता है। मीड ने 'मुझे' की अवधारणा का प्रयोग 'सामाजिक स्व' के लिये किया है।

1. **मैं** (I)—मीड के अनुसार, मैं 'स्व' की पहली अवस्था है एवं यह सावयव का विशुद्ध रूप है। इसमें अपने मौलिक आवेग होते हैं। इन मौलिक आवेगों का समाज से कोई सम्बन्ध या सरोकार नहीं होता है। इसके प्रत्युत्तर संगठित नहीं होते हैं। 'स्व' अपनी क्रियाएँ मनमाने तरीके से करता है। 'मैं' की अवस्था में 'स्व' के लिए समाज की बातें या वस्तुएँ सर्वथा बेमतलब (अर्थहीन) होती हैं। उदाहरण के लिए—नवजात बालक/शिशु का स्व जिस समय 'मैं' की अवस्था में होता है, उस समय घर/परिवार में कोई शोक होने पर जब घर के लोग रोते-बिलखते हैं तब नवजात शिशु का स्व इस स्थिति में भी किलकारी मारता है। इससे स्पष्ट है कि 'मैं' की अवस्था में 'स्व' के लिए समाज की बातें सर्वथा अर्थहीन होती हैं।, चाहे घर में शोक या खुशी आदि कोई भी अवस्था हो।
2. **'मुझे' या मेरा** (Me)—'स्व' की दूसरी अवस्था 'मुझे' (Me) की अवस्था होती है। इस अवस्था में दूसरों के प्रति 'स्व' की अभिवृत्तियाँ संगठित हो जाती हैं। 'स्व' अपनी इस अवस्था में दूसरों से सीखता है। इस अवस्था में वह दूसरों की वस्तुओं, चीजों, मूल्यों, मानकों, भूमिकाओं आदि को वह 'मुझे' (Me) का अंग बना लेता है। दूसरों की अभिव्यक्तियाँ एवं मनोभाव इस अवस्था में 'स्व' के अपने हो जाते हैं। अत: अब दूसरों के प्रभाव के कारण स्वयं की शक्ति में चेतना आ जाती है। उदाहरण के लिए—'मुझे' (Me) की अवस्था में बच्चा यह समझ जाता है कि उसे जल्दी सो जाना है, क्योंकि प्रात:काल उसे विद्यालय जाना है। जब हर प्रकार से 'स्व' मेरा बन जाता है, तो वह समाज के मानकों, मूल्यों आदि को अपना मानने लगते हैं।

TOUCH 'n' PASS

मीड के अनुसार, यहाँ पर यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि 'मैं' व 'मुझे' कार्यात्मक भेद हैं न कि आध्यात्मिक, जो हमारे धार्मिक वाद-विवाद में होते हैं। वह उन्हें स्व की अवस्थाओं के रूप में व्यक्त करते हैं। मुझे को परिभाषित करने के लिए 'स्व' शब्द का बहुतायत से प्रयोग हुआ है। 'मुझे' को व्यक्ति का सामाजिक पक्ष माना जाता है। अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि यह अन्य व्यक्तियों तथा समाज से सीखे हुए व्यवहारों, दृष्टिकोणों तथा अपेक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता है जिनको हम अपनी बाल्यावस्था से सीखते हैं। अन्य के विचार या छवियों के लिए कदाचित इसे संदर्भित किया जाता है। 'मुझे' को स्व का एक पद माना जाता है, जो बीते समय में है तथा इसके इस तथ्य पर विचार करके अवलोकन किया जा सकता है कि चीजें क्या तथा कैसी थीं?

अत: 'मैं' को 'स्व' का वर्तमान तथा भविष्य का एक पद माना जा सकता है। 'मैं' और 'मुझे' की प्रतिक्रिया की बुनियाद पर व्यक्ति की पहचान का प्रदर्शन करता है। जो किसी व्यक्ति को सीमाओं तथा सामाजिक नियमों को खण्डित करने से रोकता है, वह 'मुझे' की अवधारणा है। इसके विपरीत 'मैं' व्यक्ति को रचनात्मक तथा व्यक्तिवाद को प्रकट करने तथा बोध की आज्ञा देता है। सामाजिक अंत:क्रियाओं को अवरोध करने वाले नियमों को कब मोड़ना तथा फैलाना है। अत: हमारे 'स्व' का यह पद मनुष्य को नवीकरण करने तथा हमारी परम्परा, रीति-रिवाजों तथा विनियमों की अनम्य सीमाओं को प्रसार की आज्ञा देता है। उदाहरण हेतु, यदि गलती वश आपने अपना हाथ आग में डाल दिया है तो यह महसूस करना कि आप कैसा महसूस करते हैं, यह अभिव्यक्ति 'मैं' से आती है। परन्तु आप अपनी इस भावना को कैसे व्यक्त करते हैं, यह आपके सामाजिक हिस्से से प्रकट होता है। प्रतीकात्मक अन्त: क्रियावाद (Symbolic Interaction) निर्धारणवाद को मान्यता नहीं देता है। इनकी मान्यता है कि मनुष्य का 'मैं' (I) जब समाज में आता है तो स्वयं 'मुझे' (Me) बनने लगता है। मीड का कथन है कि व्यक्ति का 'स्व' तथा बाह्य जगत में भी निरन्तर अन्त:क्रिया होती रहती है। इस अन्त:क्रिया की प्रक्रिया में व्यक्ति परस्पर एक-दूसरे की भूमिका को ग्रहण कर लेता है।

स्व के कार्य (Functions of Self)

मीड ने स्व के निम्नलिखित प्रकार्यों का वर्णन किया है—

1. **पहचान** (Identify)—स्वयं की पहचान अथवा परिचय देना 'स्व' का प्रमुख कार्य है। सामाजिक अन्त:क्रिया एवं स्व अनुभव की क्रिया में व्यक्तियों द्वारा 'स्व को एक नाम देकर पहचान प्रदान की जाती है। उदाहरण के लिए—किसी को मूर्ख, बुद्धिमान, डरपोक, शर्मीला या बहादुर के नाम से पहचानना। व्यक्ति भी इसी नाम से स्वयं को परिचित कराने लगता है।
2. **स्थिति का विश्लेषण** (Analysis of the Situation)—व्यक्ति को 'स्व' के माध्यम से ही सभी स्थितियों व परिस्थितियों का परीक्षण करने तथा उसके अनुसार किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की समझ विकसित होती है। व्यक्ति स्व के ही रूप में अपने अनुभवों का विवरण रखता है।
3. **संचार** (Communication)—मीड 'स्व' को सूचना देने वाली एक वस्तु (Object) के रूप में देखते हैं। चूँकि मानव संचार मूलत: प्रतीकात्मक है अर्थात व्यक्तियों के सम्पर्क या संचार का माध्यम प्रतीक होते हैं। इसलिए 'स्व' के बिना व्यक्ति स्वयं से और दूसरों से संचार या संप्रेषण नहीं कर सकता है। एक-दूसरे के साथ भावों एवं तथ्यों का आदान-प्रदान करने के लिए प्रतीक अथवा संकेतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि ये संचार का माध्यम होते हैं।
4. **स्व निर्णय** (Self Judgement)—व्यक्ति की 'स्व' की प्रतिभा का मूल्यांकन उसके अन्य के साथ स्वयं के अनुभवों के आधार पर ही करता है। जब व्यक्ति अन्य की भूमिका का निर्वहन करता है, तब ही वह यह कल्पना करने में सक्षम होता है कि अन्य व्यक्ति उसके प्रति आदर, घृणा, अथवा प्रशंसा में से किस प्रकार का भाव रखते हैं। अत: व्यक्ति भी उसी प्रकार का व्यवहार करने लगता है।
5. **स्व-निर्देशन एवं स्व-नियन्त्रण** (Self-direction and Self Control)—सामान्यत: व्यक्ति बाह्य प्रेरणाओं के प्रति निष्क्रिय रूप से प्रतिक्रिया न देकर सक्रिय प्रतिक्रिया देता है। अर्थात् वह विचार करता है, व्याख्या करता है, स्वयं की कल्पनाओं को संयोजित करता है, विकल्पों का चुनाव करता है तथा भविष्य की कार्ययोजना निश्चित करता है। इस सम्पूर्ण कार्य का आधार 'स्व' का विकास होता है।

Touch 'n' PASS

6. **मन एवं समस्या का समाधान** (Mind and Problem Solving)—'स्व' का कार्य स्वयं के मन को क्रियाशील बनाने के साथ-साथ गतिविधियों को भी संभव बनाना है। मनुष्य अपने पर्यावरण के साथ क्रियात्मक सम्बन्ध मन के कारण ही स्थापित करता है। उसके व्यवहारों में निरन्तरता विद्यमान रहे तथा समस्या का समाधान हो सके इसके लिए वह पर्यावरण के साथ बार-बार सामंजस्य स्थापित करता ही रहता है।

प्र.2. 'स्व-अन्तर्क्रिया और स्व का विकास की विवेचना कीजिए।
Discuss the self interaction and development of self.

उत्तर

स्व-अन्तर्क्रिया
(Self Interaction)

मीड का मानना है कि 'स्व' बाहरी दुनिया (बाह्य जगत) से अन्तर्क्रिया करता है, तर्क करता है। 'स्व' तथा बाहरी दुनिया (बाह्य जगत) के मध्य यह अन्तर्क्रिया अनवरत् अर्थात् निरन्तर चलती रहती है, जिसके परिणामस्वरूप नवीन प्रतीकों को अर्थ मिलता रहता है। अन्तर्क्रिया की प्रक्रिया के समय 'स्व' के कोष में प्रतीकों की गणना बढ़ती रहती है। जब बाहरी जगत के मूल्य, भूमिका, मानक आदि 'स्व' के परिवेश में पहुँचते हैं, तब 'स्व' व बाहरी जगत के बीच अन्तर्क्रियाएँ होती हैं। एक तरह का वाद-विवाद होता है। इस तर्क-वितर्क में 'स्व' अपने तर्क देता है। उदाहरणस्वरूप एक भूखे बालक का 'स्व' आग्रहपूर्वक कहता है कि अगर उसे भोजन प्राप्त नहीं हुआ तो वह भूख से मर जायेगा। बाहरी जगत की भूमिका यह तर्क देती है कि रोग के कारण उसे भोजन नहीं दिया जायेगा। इस प्रकार के वाद-विवाद बालकों के साथ-साथ वयस्कों में भी परिलक्षित होते हैं। मीड ने यह स्पष्ट किया कि संचार प्रक्रिया के माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की भूमिका को धारण कर लेता है। अत: 'स्व' की समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ अन्तर्क्रिया चलती रहती है। दूसरे लोगों के अनुभवों को 'स्व' धारण करता जाता है इसलिए 'स्व' के अनुभवों का कोष निरन्तर बढ़ता रहता है।

स्व का विकास (Development of Self)

'मैं' तथा 'मुझे' की अन्त:क्रिया के मध्य 'स्व' या 'आत्म' का निर्माण अर्थात् विकास होता है। मीड ने 'स्व' या 'आत्म' के विकास के लिए 'महत्त्वपूर्ण अन्य' तथा 'सामान्यीकृत अन्य' जैसी अवधारणाएँ भी प्रतिपादित की। जिसमें 'महत्त्वपूर्ण अन्य' का अर्थ प्राथमिक समूहों से है, जैसे- परिवार एवं 'सामान्यीकृत अन्य' का अर्थ द्वितीयक समूहों से है, जैसे-समाज। हरबर्ट मीड के मतानुसार, 'स्व' के विकास की कई विधियाँ हैं। अर्थात् 'स्व' तीन गतिविधियों के माध्यम से विकसित होता है—भाषा, नाटक और खेल। बालक प्राय: दो वर्ष की अवस्था तक खेलकूद की पूर्व अवस्था में रहता है, इसलिए समस्त क्रियाएँ उसके लिए प्राय: व्यर्थ रहती हैं। जब बालक प्रतीकों के माध्यम से अन्तर्क्रियाएँ करते हैं तो वह उसका अर्थ समझने में असमर्थ होता है। दो वर्ष का होने के बाद वह इन प्रतीकों को समझने लगता है तथा भाषा का अर्थ समझने के योग्य हो जाता है। अब वह रोटी तथा दूध का मतलब आसानी से समझने लगता है। इस प्रकार भाषा लोगों को 'दूसरे की भूमिका' लेने की अनुमति देती है और दूसरों के प्रतीकात्मक व्यवहार के माध्यम से अपने स्वयं के व्यवहार का प्रतिउत्तर देती है।

खेल के दौरान, बालक अलग-अलग लोगों की भूमिकाएँ निभाते हैं और अपनी उम्मीदों को व्यक्त करने के लिए उनकी नकल करते हैं। वह खेल-खेल में शिक्षक बन जाता है। खेल के दौरान अन्य खिलाड़ियों की भूमिकाओं को भी ग्रहण करके उनकी नकल करने लगता है। जैसे-जैसे बालक विकास की दूसरी अवस्था या चरण में प्रवेश करता है, उसकी भूमिका ग्रहण करने की प्रक्रिया जटिल व लम्बी होती जाती है साथ ही प्रतीकों की सूची भी बड़ी होती जाती है। बालक के कोष में अनेकानेक शारीरिक हाव-भावों का विस्तार होता जाता है। इस प्रकार से वह समाज के मूल्य, मानक, भूमिकाओं को धारण अर्थात् ग्रहण करने लगता है।

'स्व' के विकास की अवस्थाएँ (Stages of Self)

आत्म का विकास व उद्गम व्यक्ति द्वारा अन्य की भूमिका ग्रहण करने की क्षमता पर निर्भर करता है। 'आत्म' का विकास जन्म से नहीं होता वरन यह सीखा जाता है। मीड के अनुसार, 'स्व'/आत्मनिर्माण की प्रक्रिया तीन चरणों में पूरी होती है—

1. **नकल या अनुकरण की अवस्था** (Imitation Stage)—'स्व' के विकास के पहले चरण या अवस्था का प्रारम्भ बालक के जन्म के दूसरे वर्ष में होता है। इसलिए इसे प्रारंभिक चरण कहा जाता है। इस अवस्था में शिशु केवल अपने आस-पास के लोगों, विशेष रूप से परिवार के सदस्यों की नकल करता है जिनके साथ वह लगातार रहता है एवं बातचीत करता है। वह अपने बड़ों के व्यवहार को बिना समझे ही अनुकरण अथवा नकल करता है।

TOUCH 'n' PASS

उदाहरण के लिए, जब वयस्क हंसते तथा मुस्कुराते हैं तो शिशु भी हंसता तथा मुस्कुराता है। जैसे-जैसे वे बड़े होते हैं, बच्चे इशारों एवं शब्दों के रूप में प्रतीकों का उपयोग करने में अधिक सक्षम हो जाते हैं जो मानव संचार का आधार बनते हैं। जैसे—एक छोटा बालक अपने माता-पिता की सहायता कर सकता है। वह वैक्यूम क्लीनर को धक्का देकर फर्श को उससे साफ कर सकता है।

2. **नाटक की अवस्था** (Play Stage)—यह सामान्यत: बच्चे की तीन वर्ष की आयु में होता है। इस स्तर पर, बच्चे सामाजिक सम्बन्धों के विषय में और अधिक जागरूक हो जाते हैं। वे प्रतीकों के माध्यम से संवाद करने में कौशल विकसित करते हैं एवं दूसरे लोगों की भूमिका निभाते हैं। इस स्तर में बालक उन भूमिकाओं को निभाता है, जो उसकी स्वयं की नहीं है। अन्य शब्दों में, वे दूसरे लोगों की छवि का दिखावा करने लगते हैं। अर्थात् अब वे अन्य लोगों की भूमिका का निर्वहन करना शुरू करते हैं। वे अच्छे तथा बुरे चरित्र, डॉक्टर, मरीज और शिक्षक आदि की भूमिका सीखते हैं। इस भूमिका का निर्वहन करते समय उसे इस बात का पता होता है कि उसकी स्वयं की भूमिका एवं जिनकी भूमिका का वह निर्वहन कर रहा है, उनमें विभिन्नता है। इस प्रक्रिया के दौरान बालक सामाजिक वास्तविकताओं से अवगत होता है।
3. **क्रीड़ा स्तर** (Game Stage)—अन्तिम अवस्था में बालक में 'आत्म चेतना का विकास होता है। वे न केवल अपनी सामाजिक स्थिति बल्कि अपने आसपास के अन्य लोगों की भी स्थिति को समझने लगता है। यह अन्य वही हैं, जिसे मीड ने 'सामान्यीकृत अन्य' (Generalized Others) कहा है, जिसका अर्थ है, वह दृष्टिकोण, जिसमें एक बच्चा अपने व्यवहार के साथ-साथ अन्य लोगों के व्यवहार को भी ध्यान में रखता है। अर्थात् इस स्तर पर वह केवल अपनी मनोवृत्तियों (Attitudes) को ही नहीं बल्कि अन्य लोगों की मनोवृत्तियाँ जो उसी के सामाजिक समूह में होती हैं, को एक साथ एक समय में धारण कर लेता है। उदाहरण के लिए, बच्चा समझता है कि उससे क्या करने की अपेक्षा की जाती है तथा अपनी गतिविधियों में 'स्व' के साथ-साथ दूसरों की जिम्मेदारियों को पहचानता है। वह सहयोगी एवं विरोधी समस्त प्रकार के व्यवहारों को एक साथ कल्पनात्मक रूप से संग्रहित कर लेता है। जैसे परिवार में माता-पिता तथा दूसरे सदस्यों के सहयोग व झगड़े को एक साथ ही ग्रहण कर लेता है। इसी प्रकार से क्रिकेट के विभिन्न खिलाड़ियों जैसे—विकेट कीपर, बैट्समैन, बॉलर, फील्डर आदि सभी की भूमिकाओं को एक साथ ग्रहण कर लेता है तथा खेल को सामाजिक जगत से भी जोड़ता है। इससे आत्म की भावना की चेतना उत्पन्न होती है। मीड आत्म के विकास के लिए समूह के अस्तित्व को महत्त्वपूर्ण मानता है। मीड का 'सामान्यीकृत अन्य' अपने विस्तारित रूप में चार्ल्स कूली के लुकिंग ग्लास सेल्फ सिद्धांत या आत्म दर्पण का सिद्धान्त से मिलता जुलता है।

प्र.3. प्रतीकात्मक अर्थ एवं प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
Give the symbolic meaning and criticism of symbolic interactionism.

उत्तर

प्रतीकात्मक अर्थ
(Symbolic Meaning)

हरबर्ट मीड के अनुसार, प्रतीक 'संकेत' से सम्बन्धित है, जिसका अर्थ एक प्रकार का इशारा है। व्यक्ति की अधिकांश क्रिया प्राय: अन्तर्क्रिया प्रतीकों द्वारा सम्पन्न होती है। समस्त प्रतीकों का एक ही अर्थ समझा जाता है। मीड के अनुसार, संकेत ऐसे तत्त्व हैं जिनको 'स्व' ने अन्तर्निहित कर लिया है। इसे (संकेत को) एक सामान्य प्रतीक के रूप में माना जाता है। प्रतीक की परिभाषा करते हुए डॉ. राधाकान्त मुखर्जी लिखते है कि 'प्रतीक संचार के साधन होते हैं, जो कि चिन्हों एवं उपायों से बनते हैं। जिनके द्वारा व्यक्ति न केवल अन्य व्यक्तियों के लिए वस्तुओं के रूप में सन्दर्भित होते हैं, अपितु अन्य व्यक्तियों के विचारों, मूल्यों और अनुभवों को भी ग्रहण करते हैं और उनके पारस्परिक विनिमय और अन्त: प्रवेश में सहायक होते हैं।'

प्रतीकों के अर्थ से मनुष्य की अन्तर्क्रिया का मूल कारण परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति भौंहे चढ़ाये, मुट्ठी बांधकर, दाँत पीसते हुए किसी पर झपटता है तो इसका अर्थ है कि वह किसी पर आक्रमण करने का संकेत दे रहा है। मीड के अनुसार, संकेत (Gesture) वह तत्त्व है, जिनका 'स्व' ने आन्तरीकरण कर लिया है और जो एक ही अर्थ के प्रतीक है। एक विशेष संकेत का अर्थ प्राय: समाज के सभी सदस्य एक समान मान लेते हैं। समाज के सदस्य जानते हैं कि आँखें फेरने का मतलब उपेक्षा है और आँखें लाल-पीली करने का मतलब क्रोध ही है। प्रतीक एक प्रकार के संकेत हैं, जो व्यक्ति की शारीरिक मुद्राओं, हाव-भावों, नाच-गाने, साहित्य एवं भाषा में परिलक्षित होता है। हरबर्ट मीड का 'भूमिका ग्रहण का सिद्धान्त' यह स्पष्ट करता है कि 'स्व' के विकास में मानवीय अन्तर्क्रिया को प्रमुख आधार माना है। दूसरों की भूमिका ग्रहण के द्वारा ही व्यक्ति के 'स्व' का

विकास होता है। इस भूमिका निर्वहन के माध्यम से व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की क्रियाओं तथा अभिव्यक्तियों को स्वयं को समझने लगता है। इस प्रकार दूसरे की भूमिका को ग्रहण किए बिना प्रतीकों का विकास करना संभव नहीं है। जब तक व्यक्ति अन्य की भूमिकाओं को ग्रहण नहीं करता है, तब तक वह समाज के प्रतीकों, मूल्यों, मानकों आदि को उचित प्रकार से समझ नहीं सकता है। यद्यपि मीड का यह सिद्धान्त देखने में बहुत ही सामान्य प्रतीत होता है, परन्तु इसे अन्य विद्वानों के लिए अनुकरणीय सिद्धान्त के रूप में देखा जाता है। अत: प्रतीकात्मक अन्त: क्रियावाद का सम्बन्ध जीवन में संवेगों तथा विचारों की अन्त:क्रिया से है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में विभिन्न प्रतीकों के द्वारा सामाजिकता की शिक्षा लेता है। बच्चा जन्म के उपरान्त विभिन्न प्रतीकों के द्वारा हंसना, रोना, खेलना, भाषा आदि के माध्यम से दैनिक आचार-व्यवहार, परिवार, देश व राष्ट्र से सम्बन्धित बातें सीखता है। ये प्रतीक उसके सामाजीकरण में सहायक होते हैं। पर्व-त्योहार, धर्म, व्रत, वेशभूषा से सम्बन्धित पूजा विधियाँ, त्योहारों के प्रतीक विभिन्न अवसरों पर वेशभूषा के प्रतीक, राष्ट्रगीत, राष्ट्रध्वज आदि प्रतीकात्मक अन्त:क्रिया सामाजीकरण की एक विशिष्टता से जुड़ी हुई है।

प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद की आलोचना (Criticism of Symbolic Interactionism)

यद्यपि हरबर्ट मीड ने अपने इस सिद्धान्त को अत्यन्त व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। परन्तु इसकी कुछ आलोचनाएँ भी हुई हैं। जिन्हें निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. आलोचकों का यह कहना है कि मीड ने अपने इस विश्लेषण में संरचना, शक्ति, सत्ता व इतिहास को अनदेखा किया है। इसका कारण यह है कि उसने व्यक्ति की क्रियाओं के विश्लेषण में उसके आत्मनिष्ठ पक्ष पर आवश्यकता से अधिक ध्यान केन्द्रित किया है।
2. कुछ आलोचकों का मत है कि मीड का यह सिद्धान्त परीक्षण योग्य नहीं है। यह केवल सामान्य ज्ञान पर समाज का अध्ययन करता है।
3. आलोचकों का मत है कि मीड द्वारा केवल वही प्रतीक सामाजिक अंत:क्रिया का आधार माने गए हैं, जिनको समूह, समाज अथवा संगठन द्वारा मान्यता प्राप्त है। परन्तु कुछ प्रतीक ऐसे भी होते हैं, जिनको व्यक्ति एक सीमा तक प्रयोग करता है और ये प्रतीक सीमित व्यक्तियों के बीच में परस्पर अन्त:क्रिया का आधार होते हैं। इनकी अवहेलना नहीं की जा सकती है। मीड द्वारा अपने विश्लेषण में इन प्रतीकों की अवहेलना की गई है।
4. प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद में लघु उत्तरीय अवलोकन को महत्त्व प्रदान किया जाता है। विस्तृत सामाजिक आर्थिक संघर्षों से यह उपागम कोई सम्बन्ध नहीं रखता है। गूल्डनर का कहना है कि प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद एक ऐसा सिद्धान्त है जो सूक्ष्म अन्त:क्रियाओं के दायरे में जीवन को समझने का प्रयास करता है। इस अर्थ में यह उपागम ऐतिहासिक एवं असंस्थात्मक है।
5. प्रतीकात्मक अन्त: क्रियावाद में सत्ता को सामाजिक संगठन की बुनियाद नहीं माना जाता है। यह समाज में स्तरीकरण को आधार बनाकर छोटे-बड़ों का वर्गीकरण ग्रहण करते हैं। किस प्रकार इस समाज में सत्ता तथा शक्ति का उपयोग किया जाता है? इस प्रश्न का अवलोकन यह उपागम करता है। परन्तु इस समाज में सत्ता तथा शक्ति किन कारणों से उपस्थित है? इस प्रश्न का उत्तर यह उपागम नहीं देता। यथार्थ में सामाजिक संरचना की महत्ता को नकार देने के कारण ही प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावादी आलोचक शक्ति को कम अहमियत प्रदान करते हैं।
6. प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावादी कार्य का अवलोकन तो करते हैं, परन्तु कारणों की खोज नहीं करते। इस प्रकार यह उपागम एक नियम न होकर शोध का एक तरीका है।
7. चेतन व अचेतन मन दोनों प्रक्रियाएँ मानव व्यवहार पर प्रभाव डालती हैं, परन्तु प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद आत्मचेतना पर आवश्यकता से अधिक बल देता है।
8. इस उपागम में सामाजिक संरचना एवं सामाजिक परिवर्तन की उपेक्षा करके केवल प्रतीकों के द्वारा समझने की कोशिश करता है। केवल प्रतीकों के द्वारा समाज का अवलोकन करना संभव नहीं है।
9. प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद केवल मनुष्यों की स्थिति का अध्ययन करता है। मानव अभिलाषाओं, जरूरतों एवं प्रेरणाओं को इस उपागम में कोई महत्त्व नहीं दिया जाता है।

TOUCH 'n' PASS

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. 'माइन्ड सेल्फ एण्ड सोसायटी' की रचना किसने की है?
(क) चार्ल्स कूले (ख) जी०एच० मीड (ग) हरबर्ट ब्लूमर (घ) विलियम जेम्स
उत्तर (ख) जी०एच० मीड

प्र.2. मीड की प्रमुख अवधारणाओं में शामिल है—
(क) स्व (ख) स्व अन्त:क्रिया
(ग) प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद (घ) ये सभी
उत्तर (घ) ये सभी

प्र.3. जी०एच० मीड की स्व पहचान की अवधारणा निम्नलिखित के मध्य एक वार्तालाप है—
(क) मैं और मुझे (ख) मैं और हम (ग) हम और मैं (घ) तुम और हम
उत्तर (क) मैं और मुझे

प्र.4. मीड ने 'सामान्यीकृत अन्य' क्या कहा है?
(क) अनुकरण की अवस्था (ख) नाटक की अवस्था
(ग) क्रीड़ा स्तर (घ) नकल की व्यवस्था
उत्तर (ग) क्रीड़ा स्तर

प्र.5. प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद दृष्टिकोण या उपागम के संस्थापक जनक हैं—
(क) विलियम जेम्स (ख) फ्रांसिस अब्राहम (ग) हरबर्ट मीड (घ) इरविंग गॉफमैन
उत्तर (ग) हरबर्ट मीड

प्र.6. निम्नलिखित में से मीड से सम्बन्धित नहीं है—
(क) मन/मस्तिष्क (ख) स्व (ग) समुदाय (घ) समाज
उत्तर (ग) समुदाय

प्र.7. "प्रतीकात्मक अन्त:क्रिया से तात्पर्य व्यक्तियों के मध्य होने वाली विशिष्ट विशेषता वाली अन्त:क्रिया से है।" यह कथन है—
(क) जी०एच० मीड (ख) ओल्सेन (ग) हरबर्ट ब्लूमर (घ) फिलिप्स
उत्तर (ग) हरबर्ट ब्लूमर

प्र.8. जी०एच० मीड की पुस्तक 'Mind, Self and Society' प्रकाशित हुई थी—
(क) 1930 (ख) 1934 (ग) 1932 (घ) 1936
उत्तर (ख) 1934

प्र.9. 'प्रतीकात्मक अन्त:क्रियावाद-परिप्रेक्ष्य और विधि' (Symbolic Interactionism : perspectives and method) पुस्तक है—
(क) जी०एच० मीड (ख) इरविंग गॉफमैन (ग) हरबर्ट ब्लूमर (घ) फिलिप्स
उत्तर (ग) हरबर्ट ब्लूमर

प्र.10. जार्ज हरबर्ट मीड का जन्म हुआ था—
(क) 27 फरवरी, 1863 (ख) 29 फरवरी, 1863
(ग) 20 मार्च, 1936 (घ) 25 फरवरी, 1960
उत्तर (क) 27 फरवरी, 1863

TOUCH 'n PASS

UNIT-VIII

पारसन्स एवं मर्टन
Persons and Merton

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. पारसन्स की प्रमुख रचनाएँ लिखिए।
Write the major works of Parsons.

उत्तर पारसन्स की प्रथम पुस्तक का प्रकाशन 1937 में हुआ जिसका नाम 'द स्ट्रक्चर सोशल एक्शन था। इसके अतिरिक्त पारसन्स द्वारा रचित अन्य रचनाएँ निम्नलिखित है—

1. 'एशेज ऑन सोशियोलॉजिकल थ्योरी' (Essays on Sociological Theory), 1939।
2. 'द सोशल सिस्टम' (The Social System), 1951।
3. 'सोशल स्ट्रक्चर एण्ड पर्सनालिटी' (Social Structure and Personality), 1964।
4. 'अर्थशास्त्र और समाज' (Economy and Society), 1956। (पारसन्स एवं स्मेलसर ने एक साथ मिलकर लिखी)।

प्र.2. पारसन्स के प्रमुख सिद्धान्त को संक्षेप में लिखिए।
Write the main theories of Parsons.

उत्तर 1. संरचनात्मक कार्यात्मकता
2. अनुकूलन
3. कार्यात्मक संरचनावाद की आदर्श दृष्टि
4. सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्त
5. क्रिया सिद्धान्त
6. प्रतिमान चर

प्र.3. सामाजिक क्रिया की क्या शर्तें हैं?
What are the conditions of social action.

उत्तर सामाजिक क्रिया सिद्धान्त में आधार रूप से कुछ शर्तें होती हैं। पारसन्स के सामाजिक क्रिया सिद्धान्त की चार शर्तें हैं, ये शर्तें निम्न हैं—

1. सामाजिक परिस्थिति सामाजिक क्रिया का मुख्य कारण है।
2. सामाजिक क्रिया ही एकमात्र माध्यम है, जिससे किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।
3. सामाजिक क्रिया मूल्यों को नियन्त्रित किया जाता है।
4. सामाजिक क्रिया में शक्ति अधिक मात्रा में निहित होती है।

प्र.4. सामाजिक व्यवस्था का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
Give the introduction of social system in short.

उत्तर सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा सावयवी सिद्धान्त पर आधारित है। किसी सांस्कृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही सामाजिक व्यवस्था क्रियाशील रहती है। सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा समाजशास्त्रीय अध्ययन विषयों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। सामाजिक संगठन और व्यवस्था के अन्तर्गत स्थायित्व और निरंतरता समाहित है। समाज के विभिन्न तत्त्व संयुक्त रूप में मिलकर कार्य करते हैं। मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति तथा सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सामाजिक संरचना का निर्माण करने वाले विभिन्न अंग या इकाइयाँ सांस्कृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत निर्धारित पारस्परिक प्रकार्यात्मक सम्बन्ध के आधार पर सम्बद्ध

TOUCH 'n' PASS

समग्रता की एक सन्तुलित स्थिति उत्पन्न कराते हैं। सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा समझने के लिए हमें 'व्यवस्था' के वास्तविक अर्थ को समझना आवश्यक है।

प्र.5. व्यवस्था का अर्थ लिखिए।
Write the meaning of system.

उत्तर व्यवस्था का तात्पर्य एक संरचना के अन्तर्गत एक या एक से अधिक तत्त्वों या निर्माणक इकाइयों की उस निश्चित प्रतिमानात्मक सम्बद्धता से है जो कि एक प्रकार्यात्मक सम्बन्ध के आधार पर उन इकाइयों को क्रियाशील या गतिशील करती है या उन्हें एक सूत्र में बाँधती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि व्यवस्था एक गतिशील या परिवर्तनशील धारणा है न कि कोई स्थिर धारणा। क्रियाशीलता गतिशीलता के बिना सम्भव नहीं है और क्रियाशीलता के बिना प्रकार्यात्मक प्रक्रिया की कल्पना नहीं की जा सकती है। 'प्रकार्यात्मकता' व्यवस्था की अवधारणा का प्रमुख हिस्सा है।

प्र.6. व्यवस्था की कोई तीन विशेषताएँ लिखिए।
Write any three properties of system.

उत्तर व्यवस्था की तीन विशेषताएँ निम्न हैं—

1. व्यवस्था के निर्माण के लिए एक या एक से अधिक तत्त्वों या इकाइयों के साथ उनमें नियमितता, क्रमबद्धता तथा सम्बद्धता व इकाइयों के संयोग या योग की आवश्यकता होती है।
2. व्यवस्था की अन्य विशेषता का उल्लेख उपर्युक्त प्रकार्यात्मक सम्बद्धता के आधार पर की जा सकती है। यह प्रकार्यात्मक सम्बन्ध अवस्था इकाइयों के निर्माणक तत्त्वों को संयुक्त कर देती है तथा यही इकाइयाँ आपस में मिलकर एक 'वस्तु' को उत्पन्न करती हैं।
3. व्यवस्था की अवधारणा के अन्तर्गत यह स्पष्ट है कि एक व्यवस्था के एक से अधिक खण्ड होते हैं, जो कि उस व्यवस्था का निर्माण करते हैं।

प्र.7. मर्टन की कोई पाँच रचनाएँ बताइए।
State any two works of Merton.

उत्तर 1. विज्ञान, प्रौद्योगिकी और समाज (Science Technology and Society) 1938 (प्रथम कृति)।
2. समूह आग्रह (Mass Persuation), 1946,
3. 'सामाजिक सिद्धान्त एवं सामाजिक संरचना' (Social Theory and Social Structure) 1949,
4. कन्टीन्यूटीज इन सोशल रिसर्च द अमेरिकन सोल्जर' (Continuities in Social Research-The American Soldier) 1950,
5. रीडर इन ब्यूरोक्रेसी' (Reader in Bureaucracy) 1952।

प्र.8. मर्टन के सिद्धान्त एवं अवधारणाएँ संक्षेप में लिखिए।
Write the theory and concepts of Merton.

उत्तर 1. सामाजिक संरचना,
2. प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य (प्रकार्य एवं अकार्य, प्रगट एवं पराक्ष कार्य की अवधारणाएँ),
3. सोशल स्ट्रक्चर एण्ड एनॉमी,
4. भूमिका सिद्धांत,
5. कर्मचारी तंत्र (ब्यूरोक्रेसी),
6. मध्य सीमा सिद्धान्त,
7. विज्ञान का समाजशास्त्र,
8. सन्दर्भ समूह का सिद्धान्त।

प्र.9. प्रकार्य का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।
Write the meaning and definition of function.

उत्तर समाज में संगठन, सामाजिक व्यवस्था और सन्तुलन बनाए रखने के लिए विभिन्न सामाजिक इकाइयाँ अपनी भूमिका निभाती अथवा कार्य करती हैं यही प्रकार्य कहलाता है। समाज सम्बन्धों की अत्यन्त ही जटिल व्यवस्था है। जिसमे प्रत्येक सदस्य

TOUCH 'n PASS

का एक निर्धारित पद या स्थान होता हैं और उससे यह आशा की जाती है कि वह स्वयं के पूर्व-निश्चित स्थान पर रहकर पूर्व-निर्धारित कार्यों को पूर्ण करता रहे। जब समाज के सदस्यों द्वारा अपनी स्थिति के अनुरूप समाजिक कार्यों का सम्पादन किया जाता है तो समाज में सन्तुलन बना रहता हैं। सामाजिक संरचना के अन्तर्गत प्रत्येक इकाई की निश्चित स्थिति के अनुसार उसकी भूमिका निर्धारित होती हैं। संरचना में जिन इकाइयों के द्वारा संपादित भूमिकाओं से संतुलन आता है वह प्रकार्य कहलाती हैं। प्रकार्य सामाजिक संरचना से सम्बन्धित होता है।

प्र.10. मर्टन के संरचनात्मक-प्रकार्यवादी दृष्टिकोण के आधार बताइए।

State the basis of Merton's structural functional approach.

उत्तर 1. प्रकार्यात्मक एकता या संगठन एक प्रत्यक्षमूलक संगठन है, जो कि प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया हुआ है।

2. एक समूह के लिए जो सामाजिक रीतियाँ तथा घटनाएँ प्रकार्यात्मक हो सकती हैं, वही रीतियाँ तथा घटनाएँ दूसरे समूह के लिए अकार्यात्मक भी हो सकती हैं।
3. एक समाज या समूह के लिए जो प्रकार्यात्मक परिणाम हैं, वे दूसरे समाजों या समूहों पर भी लागू नहीं हो सकते हैं। इसलिए सार्वभौमिक प्रकार्यवाद की धारणा में संशोधन आवश्यक है।

प्र.11. प्रकट तथा अप्रकट प्रकार्यों में अन्तर लिखिए।

Write the difference between mainfest function and latent function.

उत्तर

प्रकट तथा अप्रकट प्रकार्यों में अन्तर
(Difference between Manifest Function and Latent Function)

प्रकट तथा अप्रकट प्रकार्यों के मध्य निम्नलिखित अन्तर है—

	प्रकट प्रकार्य (Manifest Function)	अप्रकट प्रकार्य (Latent Function)
1.	प्रकट प्रकार्य कर्त्ता द्वारा इच्छित होता है, अर्थात् किसी उद्देश्य या परिणाम की इच्छा से कर्त्ता द्वारा उस कार्य को किया जाता है।	अप्रकट प्रकार्य बिना उद्देश्य के किया गया कार्य होता है तथा इसके परिणाम अपेक्षित होते हैं।
2.	बाह्य तौर पर प्रगट होने वाले परिणाम प्रकट प्रकार्य कहलाते हैं।	अन्दर ही अन्दर स्वयं में क्रियाशील परिणाम परोक्ष प्रकार्य कहलाता है।
3.	प्रकट प्रकार्य में कार्य की प्रेरणा, परिस्थिति तथा परिणामकर्त्ता का इच्छित या जाना पहचाना होता है।	परन्तु अप्रकट प्रकार्य में परिणाम या परिस्थिति के विषय में कोई भी पूर्वज्ञान नहीं होता है।

प्र.12. प्रकार्य एवं अकार्य के मध्य अंतर बताइए।

State the difference between Function and Dysfunction.

उत्तर

प्रकार्य एवं अकार्य के मध्य अंतर
(Difference between Function and Dysfunction)

प्रकार्य एवं अकार्य के मध्य अंतर निम्नलिखित हैं—

	प्रकार्य (Function)	अकार्य (Dysfunction)
1.	प्रकार्य का उपयोग रुचि के उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है।	अकार्य का कोई अर्थ नहीं है और कोई उद्देश्य नहीं है।
2.	प्रकार्य व्यक्ति या समाज पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं।	यह समाज पर 'नकारात्मक प्रभाव' डालता है।
3.	प्रकार्य लक्ष्य पूर्ण होते हैं। यह समाज में अनुकूलन बनाए रखते हैं।	ये आमतौर पर बिना किसी लक्ष्य के समाज में बाधा उत्पन्न करते हैं।
4.	ये समाज और लोगों द्वारा स्वीकार्य होते हैं।	ये समाज या लोगों द्वारा स्वीकार्य नहीं होता है।

TOUCH 'n PASS

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. वेबर एवं पारसन्स की सामाजिक क्रिया के अर्थ में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
Clarify the difference of social action between Weber and Parsons.

उत्तर

वेबर एवं पारसन्स की सामाजिक क्रिया के अर्थ में अन्तर

सामाजिक क्रिया के सम्पादन के लिए किसी कर्त्ता का होना आवश्यक है। कर्त्ता द्वारा किया गया किसी भी प्रकार का कार्य क्रिया कहलाती है। वेबर और पारसन्स ने अपने सामाजिक क्रिया सिद्धान्त के अर्थ में केन्द्र में सामाजिक क्रिया को ही रखा है। यह इन दोनों के सिद्धान्तों की प्रमुख समानता है। वेबर ने 'क्रिया' की व्याख्या पर बल दिया है तो पारसन्स ने क्रिया के 'चरित्र' पर अधिक बल दिया। वेबर सामाजिक क्रिया में एक-दूसरे की अनुरूपता को महत्त्व देते हैं, लेकिन पारसन्स सामाजिक क्रिया में नियमों को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। पारसन्स ने प्रेरणा को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है, इसलिए कहा जा सकता है कि पारसन्स की सामाजिक क्रिया में मनोवैज्ञानिक झुकाव है। वेबर के अनुसार प्रत्येक संस्था, संगठन और संरचना के पीछे सामाजिक क्रिया की एक प्रणाली होती है। वेबर के अनुसार सामाजिक क्रिया की व्याख्यात्मक या निर्वाचनात्मक समझ समाजशास्त्र से जुड़ी है। इनके अनुसार सामाजिक क्रिया व्यक्ति और समूह की उद्देश्यपूर्ण क्रिया है। इस उद्देश्यपूर्ण क्रिया में उद्देश्य की पूर्ति के लिए समाज के सदस्य एक जैसी क्रियाएँ करते हैं। वही पारसन्स का सिद्धान्त सभी परिस्थितियों में सामाजिक क्रिया की व्याख्या करने का प्रयास करता है। पारसन्स के सामाजिक क्रिया सिद्धान्त में व्यक्ति के साथ-साथ समाज पर भी जोर दिया गया है। इनके सिद्धान्त में क्रिया परिस्थितियों से प्रभावित होती है, ये सामाजिक मूल्य, चरित्र, तथा व्यक्तिगत स्वभाव से उत्पन्न होते हैं।

प्र.2. सामाजिक क्रिया सिद्धान्त की विशेषताएँ बताइए।
State the features of theory of social action.

उत्तर

सामाजिक क्रिया सिद्धान्त की विशेषताएँ
(Features of Theory of Social Action)

पारसन्स के सामाजिक क्रिया सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. सभी सामाजिक क्रियाओं का लक्ष्य निर्देशित होता है।
2. किसी भी सामाजिक क्रिया के घटित होने के लिए अनेक कर्त्ताओं की भूमिका होती है।
3. सामाजिक क्रिया में कर्त्ता, कारकों की सहायता से अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, क्योंकि सामाजिक क्रिया में अनेक कारक होते हैं।
4. एक सांस्कृतिक परिवेश में समस्त सामाजिक क्रियाएँ घटित होती हैं। इस सांस्कृतिक परिवेश में कर्त्ता की जन्मजात प्रवृत्तियाँ, विशेष परिस्थितियाँ तथा उसकी अर्जित मनोदशाएँ आदि सम्मिलित होती हैं।
5. किसी भी कर्त्ता के समक्ष अनेक लक्ष्य और साधन होते हैं। कर्त्ता को अपने लक्ष्य की प्राप्ति करने के लिए उन साधनों का चुनाव करना होता है, जो अत्यन्त प्रभावशाली होते हुए भी न्यूनतम लागत से लक्ष्य की प्राप्ति को सुनिश्चित कर सकें।
6. सामाजिक क्रिया में कर्त्ता तथा कारक एक दूसरे से विशेष प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा करते हैं।
7. कर्त्ताओं तथा कारकों के मध्य एक विशेष दृष्टिकोण उत्पन्न हो जाता है, जिसका कारण समाजीकरण तथा आन्तरीकरण की प्रक्रिया होती है। यह दृष्टिकोण सामाजिक क्रियाओं को प्रभावित करता है।

प्र.3. क्रिया सिद्धान्त का मूल्यांकन कीजिए।
Evaluation of action theory.

उत्तर

क्रिया सिद्धान्त का मूल्यांकन
(Evaluation of Action Theory)

पारसन्स के द्वारा क्रिया के सिद्धान्तों का मूल्यांकन निम्नलिखित मूल्यांकित सिद्धान्त द्वारा किया गया हैं—

1. क्रिया का प्रत्यक्षवादी सिद्धान्त
2. क्रिया का मानकात्मक सिद्धान्त
3. क्रिया का स्वेच्छाचालित सिद्धान्त

TOUCH 'n' PASS

1. **क्रिया का प्रत्यक्षवादी सिद्धान्त** (Positivistic Theory of Action)—पारसन्स ने अपने से पहले के सामाजिक वैज्ञानिकों के क्रिया के सिद्धान्त का भी मूल्यांकन किया है। पारसन्स के अनुसार सामाजिक क्रिया के सिद्धान्त का एक सम्प्रदाय प्रत्यक्षवादी होता है। इस सिद्धान्त की मान्यतानुसार व्यक्ति क्रिया करने से पहले तर्कों के आधार पर लक्ष्यों एवं साधनों का चयन क्रिया करता है। क्रिया से सम्बन्धित तीन तत्वों-लक्ष्य, साधन एवं तार्किकता को यह सिद्धान्त मान्यता देता है। इस सम्प्रदाय के अनुसार मानकात्मक लक्षण तार्किकता में अन्तर्निहित हैं, इसलिए यह सम्प्रदाय मानकात्मक तत्त्व का उल्लेख अलग से नहीं करता है। पारसन्स के अनुसार, दुर्खीम और मार्क्स दोनों समाजशास्त्रियों ने अपने अन्तिम विचारों में मानकों को भी सामाजिक क्रिया का प्रमुख तत्त्व माना है। पारसन्स के अनुसार, दुर्खीम और मार्क्स इस सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं।
2. **क्रिया का मानकात्मक सिद्धान्त** (Normative Theory of Action)—इस सिद्धान्त के अनुसार, कर्त्ता पहले समाज के प्रचलित मानकों के अनुसार, लक्ष्यों एवं साधनों का चयन करता है तत्पश्चात् क्रिया को सम्पन्न करता है। पारसन्स के अनुसार सामाजिक क्रिया के मानकात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन मैक्स वेबर एवं उनके जर्मन विचारकों के द्वारा किया गया। इस सिद्धान्त में तार्किकता के लक्षणों की अलग से चर्चा करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि तार्किकता का लक्षण मानकात्मक निर्णय की प्रक्रिया में अर्न्तनिहित होता है।
3. **पारसन्स का क्रिया का स्वेच्छाचालित सिद्धान्त** (Parson's Voluntaristic Theory of Action)—पारसन्स क्रिया के प्रत्यक्षवादी सिद्धान्त और क्रिया के मानकात्मक सिद्धान्तों के मूल्यांकन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ये दोनों सिद्धान्त एक-दूसरे के पूरक हैं। पारसन्स के अनुसार प्रत्यक्षवादी सिद्धान्त में मानकों को तार्किकता में तथा मानकात्मक सिद्धान्त में तार्किकता को मानकों में अन्तर्निहित माना गया है। सामाजिक क्रिया एक पूर्ण सिद्धान्त बन सकता है यदि प्रत्यक्षवादी सिद्धान्त में मानकों को तथा मानकात्मक सिद्धान्त में तार्किकता को स्पष्ट रूप से जोड़ दिया जाए। पारसन्स ने इस सिद्धान्त को स्वेच्छाचालित सिद्धान्त कहा है। इस सिद्धान्त में लक्ष्य, साधन, तार्किकता एवं मानक तत्व शामिल हैं। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन पारसन्स ने अपनी प्रथम कृति 'द स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन में किया है। इस सिद्धान्त को पारसन्स ने क्रिया का विश्लेषणात्मक सिद्धान्त भी कहा है।

प्र.4. क्रिया सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
Explain the criticism of action theory.

उत्तर

क्रिया सिद्धान्त की आलोचना
(Criticism of Action Theory)

पारसन्स की आलोचना का मुख्य आधार अतिक्लिष्ट भाषा का उपयोग तथा भाषा सम्बन्धित है। पारसन्स के क्रिया के सिद्धान्त के प्रमुख आलोचक सोरोकिन, कोहेन, मिचेल, मैक्स ब्लेक आदि हैं। इनके द्वारा पारसन्स की क्रिया के सिद्धान्त की आलोचना निम्नांकित है—

1. **सोरोकिन** (Sorokin) के अनुसार, 'पारसन्स के सिद्धान्त के माध्यम से क्रिया की व्यवस्था को पूर्ण रूप से नहीं समझा जा सकता है। इनके द्वारा प्रयोग की गई अवधारणाएँ अस्पष्ट और भ्रामक हैं। इसके अतिरिक्त इनका सिद्धान्त कर्त्ता के विषय में स्पष्ट व्याख्या नहीं करता है।'
2. **कोहेन** (Cohen) ने पारसन्स के आलोचकों को तीन वर्गों में विभाजित किया है, जोकि निम्नलिखित हैं—
   (i) कुछ आलोचक पारसन्स के भौतिक तर्कों को स्वीकार करने के बाद भी उनकी आलोचना करते हैं।
   (ii) कुछ आलोचक जो गलत प्रश्न रखते हैं और उनके गलत समाधान के प्रस्तुतिकरण के लिए पारसन्स की आलोचना करते हैं।
   (iii) कुछ आलोचक पारसन्स द्वारा उठाए गए प्रश्नों का अलग-अलग उत्तर देते हैं।
3. **मिचैल** (Mitchell) द्वारा पारसन्स की आलोचना करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि इस क्रिया के सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें संघर्ष को कोई स्थान नहीं दिया गया है। इनके अनुसार पारसन्स ने समाज में एकात्मकता, मूल्य तथा मानक आदि को महत्त्व दिया है परन्तु समाज में विद्यमान संघर्ष, शोषण और दमन जैसे तत्त्वों को शामिल नहीं किया गया है।

TOUCH 'n PASS

4. **मैक्स ब्लेक** (Max Black) ने पारसन्स की भाषा से सम्बन्धित आपत्तियाँ उठाई हैं। इनके अनुसार पारसन्स की कृतियों में आँकड़ों, तालिकाएँ एवं तथ्यों का सर्वथा अभाव है। इनका सिद्धान्त अवलोकन पर आधारित तथ्यों से कोसों दूर है। ब्लेक का कहना है कि यह एक ऐसे सिद्धान्तवेत्ता हैं जिनके पास आनुभाविक एवं प्रयोगसिद्धि तथ्य नहीं है। ब्लेक के अनुसार, 'पारसन्स के सिद्धान्तों में तर्कों की कमी है तथा मूल तत्त्व का अभाव है। पारसन्स के परवर्ती प्रतिमान सामान्य सिद्धान्त के लिए आवश्यक नहीं है।'

प्र.5. प्रकार्य की विशेषताएँ लिखिए।
Write the characteristics of function.

उत्तर

प्रकार्य की विशेषताएँ
(Characteristics of Function)

प्रकार्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

1. प्रकार्य सामाजिक संगठन व व्यवस्था बनाए रखने में सहायक कार्य हैं।
2. यह समाज द्वारा मान्य और स्वीकृत कार्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये सामाजिक मूल्यों तथा प्रतिमानों के अधिक निकट होते हैं।
3. प्रकार्य सामाजिक संरचना के निर्माणक इकाइयों से सम्बन्धित होते हैं।
4. समाज की इकाइयां सदैव प्रकार्य के रूप में हो यह आवश्यक नही है जब इकाइयां व्यवस्था में अनुकूलन न करने या कम अनुकूलन करने वाले कार्य पूर्ण करती है तब यह अकार्य कहा जाता है।
5. सामाजिक संरचना में अनुकूलन एवं संतुलन बनाने में प्रकार्य सहायक होते है।
6. इस प्रकार, यह व्यवस्था द्वारा निर्धारित प्रतिमानित व्यवस्था द्वारा स्वीकृत एवं मान्य होते हैं।
7. यह अवधारणा में सकारात्मक है और संरचना का गतिशील पक्ष है।
8. प्रकार्य का अभिप्राय सदैव किसी आवश्यकता को संतुलित करना है। इसका उद्देश्य सामाजिक एवं मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।
9. प्रकार्य प्रकट एवं अप्रकट रूपों में भी स्पष्ट होते हैं- प्रकट कार्य वे हैं जो समाज द्वारा मान्य और इच्छित उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं। परन्तु कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिसके कभी-कभी ऐसे परिणाम भी अस्तित्व में आते हैं जो सोच से परे होते हैं, वह अप्रकट प्रकार्य कहलाते हैं।
10. प्रकार्य सामाजिक संस्कृति एवं मूल्यों के अनुरूप होता है, इसका तात्पर्य है कि यह समाज द्वारा मान्य है।

प्र.6. सामाजिक व्यवस्था के वर्गीकरण का उल्लेख कीजिए।
Explain the classification of social system.

उत्तर

सामाजिक व्यवस्था का वर्गीकरण
(Classification of Social System)

विभिन्न विद्वानों के अनुसार, सामाजिक व्यवस्था का वर्गीकरण निम्नलिखित किया गया है—

1. **दुर्खीम का वर्गीकरण** (Classification of Durkheim)-सामाजिक व्यवस्थाओं को दुर्खीम द्वारा दो रूपों में वर्गीकृत किया गया है—
   (i) यान्त्रिक सामाजिक व्यवस्था जो प्राचीन समाजों की व्यवस्था थी।
   (ii) सावयवी सामाजिक व्यवस्था जो हमारे आधुनिक समाज की व्यवस्था का रूप है।
2. **मार्गन का वर्गीकरण** (Classification of Morgan)—विकास के आधार पर मॉर्गन ने सामाजिक व्यवस्थाओं का उल्लेख किया है। मॉर्गन के अनुसार सामाजिक व्यवस्था तीन रूपों से गुजरती है—
   (i) जंगली सामाजिक व्यवस्था
   (ii) असभ्य सामाजिक व्यवस्था
   (iii) सभ्य सामाजिक व्यवस्था
   इसके अतिरिक्त उन्होंने सामाजिक व्यवस्था को जीवन-यापन के आधार पर भी वर्गीकृत किया है—
   (i) शिकार करने की सामाजिक व्यवस्था

TOUCH 'n' PASS

(ii) चारागाह की दशा में सामाजिक व्यवस्था
(iii) कृषि स्तर पर सामाजिक व्यवस्था
(iv) औद्योगिक स्तर की सामाजिक व्यवस्था।

3. **सोरोकिन का वर्गीकरण** (Classification of Sorokin)—सोरोकिन के अनुसार, सामाजिक व्यवस्था तीन प्रकार की होती है—
(i) चेतनात्मक सांस्कृतिक व्यवस्था जिसमें भौतिक व ज्ञान जनित सुख प्राप्ति को प्राथमिक महत्त्व दिया जाता है।
(ii) आदर्शात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत आध्यात्मिक तथा भौतिक सुख दोनों को महत्त्व प्रदान किया जाता है।
(iii) भावनात्मक सांस्कृतिक व्यवस्था को तीसरी व्यवस्था कहा गया है जिसमें आध्यात्मिक सुख को ही अनिवार्य माना जाता है।

प्र.7. व्यवस्था की उप-व्यवस्थाओं का वर्गीकरण कीजिए।
Give the classification of sub-system of system.

उत्तर इस व्यवस्था के अन्तर्गत तीन उप-व्यवस्थाएँ होती हैं, जो कि निम्नलिखित हैं—

1. **व्यक्तित्व व्यवस्था** (Personality System)—मानव समाज व संस्कृति के द्वारा इस व्यवस्था का निर्माण होता है। इसके निर्माण के आधारभूत तत्त्वों का स्रोत प्राणिशास्त्रीय व्यवस्था होती है।
ड्रेवर के अनुसार, 'व्यक्तित्व व्यक्ति के उन शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणों की वह सुसंगठित तथा गतिशील व्यवस्था है, जो व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ नित्य के आदान-प्रदान में एक-दूसरे के प्रति प्रदर्शित करता है।'
लैपियर एवं फ्रान्सवर्थ के अनुसार, 'व्यक्ति का अपने सामाजीकरण द्वारा प्राप्त 'सम्पूर्ण' ही व्यक्तित्व है।' जन्मजात और अनेक अर्जित तत्त्व व्यक्तित्व व्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं। मानव तथा मानव द्वारा विकसित समाज व संस्कृति का इस व्यवस्था के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। इसीलिए व्यक्तित्व व्यवस्था को मानव निर्मित व्यवस्था कहा जाता है।
2. **सांस्कृतिक व्यवस्था** (Cultural System)—सांस्कृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक भौतिक तथा अभौतिक तत्त्व जैसे धर्म, भाषा, मकान, औजार, प्रथा, उपकरण, आभूषण आदि, तत्त्व सम्मिलित होते हैं। ये तत्त्व प्राय: मानव निर्मित होते हैं। इस व्यवस्था में प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करके मानव जो कृति या तत्त्व का निर्माण करता है, उनका सम्पूर्ण प्रक्रियात्मक समुच्चय से संस्कृति का निर्माण होता है। हर्षकॉविट्स के अनुसार, 'संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग है।'
3. **सामाजिक व्यवस्था** (Social System)—व्यक्तियों के मध्य होने वाले अन्त: क्रिया व अन्त: सम्बन्ध के फलस्वरूप सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है। इन अन्त: क्रियाओं और अन्त: सम्बन्धों के परिणामस्वरूप अनेक रीति-रिवाज, अधिकार, संस्था, समूह, समिति, कार्य-प्रणाली आदि साधन स्पष्ट व विकसित हो जाते हैं। सामाजिक जीवन के ये विभिन्न तत्त्व परस्पर क्रमबद्ध व प्रकार्यात्मक रूप में संयुक्त रहते हैं। इस व्यवस्था को ही सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सामाजिक क्रिया के तत्त्वों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए तथा इस सिद्धान्त की रूपरेखा एवं प्रकारों को भी लिखिए।
Describe the elements of social action in detail and write the outline and types of social action theory.

उत्तर

सामाजिक क्रिया के तत्त्व
(Elements of Social Action)

सामाजिक क्रिया के प्रमुख आवश्यक तत्त्वों का वर्णन निम्नांकित हैं—

1. कर्त्ता एवं परिस्थिति
2. अभिप्रेरणा
3. साधन
4. उद्देश्य/साध्य

TOUCH 'n' PASS

सामाजिक क्रिया में 'कर्त्ता' और 'परिस्थिति' ('Actor' and 'Situation' in Social Action)

सामाजिक क्रिया के दो प्रमुख तत्त्व हैं, जिनकी उपस्थिति किसी सामाजिक क्रिया के सम्पन्न होने के लिए आवश्यक होती है। प्रथम तत्त्व है कर्त्ता तथा द्वितीय तत्त्व है परिस्थिति। कर्त्ता वह है जो किसी सामाजिक क्रिया को करता है, तथा उसे यह सामाजिक क्रिया करने के लिए परिस्थिति की आवश्यकता होती है। ये दोनों तत्त्व परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। कर्त्ता परिस्थितियों से सम्बन्धित स्थितियों के प्रति क्रिया करता है। यह परिस्थितियाँ आन्तरिक या बाह्य दोनों प्रकार की हो सकती हैं।

परिस्थिति का अर्थ—पारसन्स के अनुसार, परिस्थिति को समझने के लिए उन वस्तुओं का अध्ययन किया जाना चाहिए जो इसका निर्माण करती हैं। पारसन्स ने परिस्थिति में उन वस्तुओं को सम्मिलित किया है, जिनके प्रति कर्त्ता अभिमुखी होता है। कर्त्ता की अभिमुखिता इस बात पर निर्भर करती है, कि वह आवश्यकता की पूर्ति से सम्बन्धित विभिन्न वस्तुओं के प्रति भिन्न-भिन्न होता है। पारसन्स ने परिस्थिति के अन्तर्गत अभिमुखता योग्य वस्तुओं को तीन वर्गों में विभाजित किया है, निम्नलिखित रूप में दर्शाया गया है—

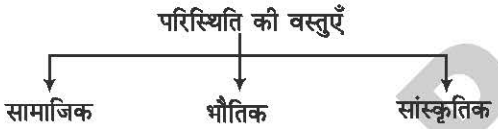

1. **सामाजिक वस्तुएँ** (Social Objects)—पारसन्स ने सामाजिक वस्तुओं के अन्तर्गत अन्त:क्रिया करने वाले व्यक्तियों/वस्तुओं अर्थात् 'जिनके मध्य क्रिया और प्रतिक्रिया हो सके को रखा है। इनमें क्रिया करने वाले कर्त्ता तथा क्रिया के फलस्वरूप प्रतिक्रिया करने वाले अन्य कर्त्ताओं या व्यक्तियों को रखा है। प्राय: इस सामाजिक परिस्थिति में वे सदस्य आते हैं, जो परस्पर एक-दूसरे की आवश्यकता पूर्ति के लिए अभिमुखी होते हैं।
2. **भौतिक वस्तुएँ** (Physical Objects)—भौतिक वस्तुएँ एक ऐसा साधन या दशाएँ हैं जिनका उपयोग कर्त्ता अपनी आवश्यकतानुसार अपने अनुभव के आधार पर करता है। ये कर्त्ता से अन्त:क्रिया नहीं करते अपितु इनका अस्तित्व भी आनुभाविक होता है।
3. **सांस्कृतिक वस्तुएँ** (Cultural Objects)—सांस्कृतिक वस्तुएँ समाज की सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रतीकात्मक तथ्य होते हैं। जब कोई कर्त्ता सामाजिक क्रिया करता है तो लक्ष्यों तथा साधनों का चयन सांस्कृतिक वस्तुओं के सन्दर्भ में करता है। पारसन्स के अनुसार, 'व्यक्तित्व के निर्माण में इन सांस्कृतिक वस्तुओं को कर्त्ता सीखकर आन्तरीकरण करता है।'

अभिप्रेरणा (Motivation)

किसी भी सामाजिक क्रिया को सम्पन्न होने के लिए उसके पीछे एक प्रेरणा का होना आवश्यक है क्योंकि सामाजिक क्रिया शून्य में रहकर नहीं की जा सकती है। प्रेरणा और मानक मूल्यों का किसी सामाजिक क्रिया के पीछे होना आवश्यक है।

अभिप्रेरणा के प्रकार (Types of Motivation)

पारसन्स का कहना है कि किसी भी सामाजिक क्रिया के सम्पन्न होने में कई कारकों की भूमिका होती है, उनमें से एक कारक अभिप्रेरणा भी है।

पारसन्स के अनुसार इन अभिप्रेरकों के तीन प्रकार हैं—

1. **संज्ञानात्मक अभिप्रेरणा** (Cognitive Motivation)—इस अभिप्रेरणा में वे सूचनाएँ होती हैं, जो केवल क्रिया से जुड़ी होती हैं, उन्हें कर्त्ता को देना होता है।
2. **केथेटिक अभिप्रेरणा** (Cathetic Motivation)—इस प्रकार के अभिप्रेरणा का संवेगात्मक जुड़ाव कर्त्ता के साथ होता है।
3. **मूल्यांकन अभिप्रेरणा** (Evaluative Motivation)—इस प्रकार के अभिप्रेरणा में कर्त्ता यह मूल्यांकन करता है, कि जिन क्रियाओं को वह कर रहा है उससे उसे लाभ होगा या हानि। अर्थात् कर्त्ता क्रियाओं का मूल्यांकन करके वांछित लाभ का अनुमान लगाता है।

सामाजिक क्रिया करने से पूर्व कर्त्ता क्रिया से जुड़े मूल्यों को भी देखता है। ये मूल्य तीन प्रकार के होते हैं—

1. **संज्ञानात्मक मूल्य**—इसमें क्रिया के स्तर का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन होता है।

TOUCH 'n' PASS

2. **प्रशंसात्मक मूल्य**—इन मूल्यों की प्रशंसा व्यक्ति, समूह तथा समाज करते हैं।
3. **नैतिक मूल्य**—इन मूल्यों का सीधा सम्बन्ध नैतिकता से होता है।

पारसन्स ने सिद्धान्तीकरण की तीनों प्रमुख धाराओं- उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद और आदर्शवाद का संश्लेषण करके सामाजिक क्रिया को अवधारणाओं के परिवेश में बाँध दिया है। पारसन्स का कहना है कि क्रिया का उद्देश्य किन्हीं निश्चित अवस्थाओं या दशाओं में लक्ष्य प्राप्त करना है।

साधन (Means)

क्रिया का एक आवश्यक पक्ष साधन भी है। क्रिया को सम्पन्न करने के लिए साधन का प्रयोग किया जा सकता है। अपनी परिस्थितियों के अनुसार चयनकर्त्ता साधनों का चयन करता है। साधन विकल्पयुक्त होता है तथा किसी क्रिया के सम्पादन में साध्य और साधनों के मध्य समुचित तालमेल होना आवश्यक है।

लक्ष्य/साध्य (End/Ends)

कोई व्यक्ति किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए क्रिया करता है। कार्य की प्रकृति लक्ष्य या साध्य के अनुरूप ही तय होती है इसीलिए साध्य या उद्देश्ययुक्त कार्य को ही क्रिया कहा जाता है। साध्य का उल्लेख करना क्रिया के विवेचन के लिए आवश्यक है। पारसन्स का मानना है कि उद्देश्य भविष्य की पूर्वानुमानित स्थिति है।

सामाजिक क्रिया सिद्धान्त की रूपरेखा (Outline of Social Action Theory)

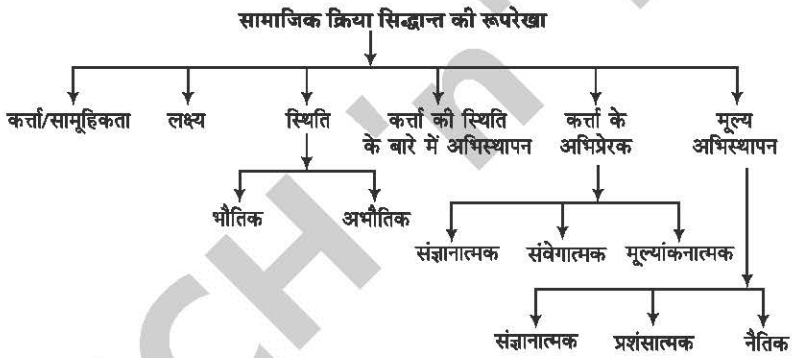

कर्त्ता द्वारा अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अभिप्रेरक अभिस्थापना तथा मूल्य अभिस्थापन को परस्पर सम्बन्धित किया जाता है अर्थात् कर्त्ता को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अभिप्रेरण और मूल्यों की आवश्यकता होती है। यह सभी क्रिया निश्चित दशाओं और स्थितियों में सम्पन्न होती है। इसे निम्न प्रकार से लिख सकते हैं—

यूनिट एक्ट्स = अभिप्रेरक अभिस्थापन + मूल्य अभिस्थापन (इकाई क्रिया)

पारसन्स द्वारा सम्पादित यह क्रिया सिद्धान्त अनेक संकल्पनाओं का संश्लेषण है। इन्होंने एक व्यवस्था में कर्त्ता द्वारा की जाने वाली क्रियाओं को, क्रियाओं की इकाइयाँ (Unit Acts) कहा है। इन इकाइयों से सामाजिक व्यवस्था निर्मित होती है। इस आशय में सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार क्रियाओं की इकाई अथवा यूनिट एक्टस होती है। जिनके पीछे लक्ष्य एवं अभिप्रेरण होते है और साथ ही भौतिक एवं अभौतिक परिस्थितियाँ भी होती है।

सामाजिक क्रिया के प्रकार (Types of Social Action)

पारसन्स ने सामाजिक क्रिया को तीन प्रकारों में विभाजित किया है—

1. **नैमित्त क्रिया/संज्ञानात्मक/प्रेरणा** (Instrumental Action/Cognitive Orientation)—नैमित्त क्रिया के अन्तर्गत वे मानव व्यवहार आते हैं, जो लक्ष्य को ध्यान में रखकर सम्पादित किए जाते हैं। प्रत्येक अभिप्रेरणा मानक मूल्यों से ही प्राप्त होती है इसलिए संज्ञानात्मक अभिप्रेरणा वो अभिप्रेरणा है, जो मात्र क्रिया या लक्ष्य से जुड़ी सूचनाएँ कर्त्ता को प्रदान करती हैं। इनके पीछे संज्ञानात्मक मूल्य कार्य करता है। संज्ञानात्मक मानक मूल्य और अभिप्रेरणा से प्रेरित होकर व्यक्ति लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए जो भी मानव व्यवहार करता है उसे नैमित्त क्रिया कहते हैं। जैसे—दौड़ में स्वर्ण पदक प्राप्त करने के लिए एथलीट द्वारा कड़ी से कड़ी मेहनत करना।

TOUCH 'n' PASS

2. **अभिव्यक्त क्रिया** (Expressive Action)—इस प्रकार की क्रिया बाह्य या ऊपर से स्पष्ट दिखायी देती है या एक विशिष्ट भाव को प्रदर्शित करती है, लेकिन वास्तव में अहं (Ego) मानसिक रूप से यह करना चाहता है। इस प्रकार की क्रिया में प्रशंसात्मक घटक प्रमुख होता है। इसी सन्दर्भ में हैबरमास ने नाट्य अभिनय प्रधान क्रिया की चर्चा की है।
3. **नैतिक क्रिया** (Moral Action)—इस क्रिया का सीधा सम्बन्ध नैतिकता से है और मानव अपने व्यवहार का मूल्यांकन इन्हीं नैतिक मानक मूल्यों द्वारा करता है। इसकी सहायता से कर्त्ता यह मूल्यांकन करता है कि उसके द्वारा की जा रही क्रिया से उसे और समाज को कितना लाभ प्राप्त हो रहा है। इस प्रकार के मानव व्यवहार के पीछे मूल्यांकनात्मक अभिप्रेरणा कार्य करती है। उदाहरण के लिए नैतिक आधार पर यह तय करना क्या उचित है या क्या नही।

प्र.2. सामाजिक क्रिया के पक्ष एवं व्यवस्थाएँ और अपव्यवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
Describe the aspects and system and sub-system of social action.

उत्तर

सामाजिक क्रिया के पक्ष
(Aspects of Social Action)

'पारसन्स, शील्स एवं ओल्ड्स के अनुसार सामाजिक क्रिया के निम्नांकित तीन पक्ष हैं—

1. सामाजिक पक्ष
2. सांस्कृतिक पक्ष
3. व्यक्तित्व पक्ष

पारसन्स ने इन्हीं तीन पक्षों से तीन व्यवस्थाओं का वर्णन किया है, जो कि—

1. सामाजिक व्यवस्था
2. सांस्कृतिक व्यवस्था
3. व्यक्तित्व व्यवस्था

मानवशास्त्र, मानव विज्ञान और समाजशास्त्र के अन्तर्गत इन तीन पक्षों तथा अवस्थाओं का अध्ययन किया जाता है। पारसन्स, शील्स एवं अन्य साथियों द्वारा सम्पादित पुस्तक 'टुवर्ड ए जनरल थ्योरी ऑफ एक्शन' में सामाजिक क्रिया के अध्ययन के निम्नांकित आधार बताए गए हैं—

1. **समाजशास्त्र और सामाजिक क्रिया** (Sociology and Social Action)—समाजशास्त्री क्रिया के अध्ययन के द्वारा हम सामाजिक व्यवस्था को समझाने का प्रयास करते हैं। पारसन्स एवं उनके अन्य साथियों द्वारा सामाजिक भूमिका को सामाजिक व्यवस्था की प्रथम इकाई बताया गया है। इन्होंने सामाजिक भूमिका को अन्त:क्रिया कहा है। समाजशास्त्र क्रिया का अध्ययन भूमिका समुच्चय के आधार पर करता है। भूमिकाओं के समुच्चय के पात्र उद्देश्यपूर्ण होते हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति का आधार क्रिया में भाग लेने वाले पात्र समाज सम्बन्धी नियम तथा मूल्य आदि होते हैं। इनके आधार पर बनने वाले सम्बन्धों के स्वरूप को पारसन्स एवं उनके साथी सामाजिक व्यवस्था कहते हैं। पारसन्स लिखते है कि, संस्कृति का संस्थाकरण ही सामाजिक व्यवस्था है। कुछ सामान्य मूल्य समाज के निर्माण का आधार होते हैं। सामाजिक व्यवस्था में सहयोग, संघर्ष, प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता आदि को अनेक साधनों द्वारा नियन्त्रित किया जाता है।
2. **मानवशास्त्र एवं सामाजिक क्रिया** (Anthropology and Social Action)—सामाजिक क्रिया के सांस्कृतिक पक्ष का अध्ययन करता है। इसके पश्चात वह सांस्कृतिक व्यवस्था की व्याख्या करने एवं सिद्धान्त के प्रतिपादन का प्रयास करता है। मानवशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक क्रियाओं का क्रमबद्ध अध्ययन एवं विश्लेषण मानकात्मक प्रतिमान के आधार पर किया जाता है। यह समाज विरोधी क्रियाओं को रोकने का कार्य करके मानकात्मक प्रतिमान समाज सम्मत क्रियाओं को करने की अनुमति प्रदान करता है।
   सांस्कृतिक प्रतिमान के अन्तर्गत निम्न तीन प्रमुख व्यवस्थाएँ होती हैं—
   (i) विचार या विश्वास व्यवस्था
   (ii) मूल्य अभिमुखता व्यवस्था
   (iii) अभिव्यक्ति योग्य प्रतीक व्यवस्था।
3. **मनोविज्ञान एवं सामाजिक क्रिया** (Psychology and Social Action)—पारसन्स एवं साथियों की मान्यता है कि सामाजिक अन्त: क्रिया के द्वारा व्यक्तित्व का विकास होता है। मनोविज्ञान क्रिया का अध्ययन आवश्यकता पूर्ति के

TOUCH 'n' PASS

दृष्टिकोण से करके व्यक्तित्व व्यवस्था को समझने एवं उससे सम्बन्धित सामान्यीकरण करने का प्रयास करता है। व्यक्ति समाज में रहकर भोजन, वस्त्र, आवास आदि आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति एक व्यक्तित्व अवस्था के रूप में विकसित हो जाता है जिसमें निम्नलिखित चार कार्य करते हैं—

(i) प्रेरणा
(ii) बँटवारा या विनिधान की प्रक्रिया
(iii) सुरक्षा और समायोजन की क्रियाविधि
(iv) विभिन्न आवश्यकता पूर्तियों का एकीकरण एक गत्यात्मक व्यक्तित्व के रूप में करना।

सामाजिक क्रिया की व्यवस्थाएँ तथा उपव्यवस्थाएँ (Systems and Sub-systems of Social Action)

पारसन्स के क्रिया सिद्धान्त एवं क्रिया की सन्दर्भ संरचना के सम्बन्ध में मुख्यत: चार व्यवस्थाओं का स्थान महत्त्वपूर्ण है, जिनका उल्लेख निम्नांकित है—

1. **सामाजिक व्यवस्था** (Social System)—किसी सांस्कृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत एक या एक से अधिक कर्त्ता अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए परस्पर सामाजिक अन्त: क्रिया करते हैं, तब सामाजिक व्यवस्था उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा परस्पर अन्त: क्रिया करते हुए सामाजिक व्यवस्था का निर्माण एक परिस्थिति में सम्पन्न होता है। पर्यावरण और भौतिक परिस्थितियों का प्रभाव भी सामाजिक व्यवस्था पर पड़ता है, इसलिए सामाजिक व्यवस्था में इनका भी महत्त्व है। सामाजिक व्यवस्था में सम्बन्धों के स्वरूप का निर्धारण, सांस्कृतिक व्यवस्था एवं सांस्कृतिक स्वीकृति पर निर्भर करता है।
2. **सांस्कृतिक व्यवस्था** (Cultural System)—सांस्कृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत धर्म, प्रथा, परम्परा, सामाजिक मूल्य, भाषा, साहित्य, आदर्श प्रतिमान आदि का एकीकृत स्वरूप शामिल हैं। सामाजिक व्यवस्था और सांस्कृतिक व्यवस्था के बीच काफी समानता पायी जाती है। पारसन्स के अनुसार, सांस्कृतिक व्यवस्था का अर्थ उस आवश्यक दशा का निर्माण करने से है, जिसमें क्रियात्मक पक्ष से प्रतीकों की विशिष्ट विशेषताओं के संगठित आधार पर स्थायी व्यवस्था निर्मित की जाती है। सांस्कृतिक व्यवस्था में विश्वासों तथा विचारों को प्रमुखता दी जाती है। इनको एक व्यक्तित्व से दूसरे व्यक्तित्व तथा एक सामाजिक व्यवस्था से दूसरी सामाजिक व्यवस्था में प्रसारित करने की आवश्यकता इन्हें लम्बे समय तक बनाए रखना ही सांस्कृतिक व्यवस्था की स्वतन्त्र संरचना के महत्त्वपूर्ण साक्ष्य हैं। सामाजिक लक्ष्यों का निर्धारण और उनकी दिशा का निश्चय सांस्कृतिक व्यवस्था के आधार पर ही होता है।
3. **व्यक्तित्व व्यवस्था** (Personality System)—पारसन्स कहते हैं कि व्यक्ति कर्त्ता के रूप में जीवित व्यक्ति का वह पक्ष जिसे उसकी व्यवहारात्मक व्यवस्था निर्मित करने वाले सामाजिक एवं सांस्कृतिक अन्तर्वस्तु के सीखे हुए प्रतिमानों के रूप में समझा जा सकता है। यह जीवित व्यक्ति का पक्ष है। सामाजिक व्यवस्था तथा राजनीतिक उप-व्यवस्था दोनों साथ मिलकर एक विशिष्ट व्यवस्था का निर्माण करते हैं। समाज के सदस्यों का व्यक्तित्व निर्माण एवं विकास सामाजिक व्यवस्थाओं का प्राथमिक लक्ष्य है। पारसन्स मानते हैं कि व्यक्तित्व व्यवस्था, सांस्कृतिक व्यवस्था, व्यवहारात्मकता का प्राथमिक स्वरूप है। व्यक्तित्व व्यवस्था के विशेष प्रकार्यों में कुछ मुख्य प्रकार्य शामिल हैं, जैसे-प्रेरकों का उचित मात्रा में अधिगम करना, विकसित करना, बनाए रखना आदि। इस प्रकार महत्त्वपूर्ण तथा नियन्त्रित गतिविधियों में लोग भाग ले सकते हैं। व्यक्तित्व व्यवहारशील लोगों का सीखा हुआ संगठन है, इसलिए सामाजीकरण की प्रक्रिया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाती है।
4. **प्राणिशास्त्रीय व्यवस्था** (Biological System)—पारसन्स के अनुसार, 'व्यवहारयुक्त सावयव ही सामाजिक व्यवस्था तथा भौतिक पर्यावरण के बीच सभी सम्बन्धों का माध्यम है। भौतिक पर्यावरण के सम्बन्ध में सूचना के स्रोत सावयव की लगातार चलने वाली प्रक्रियाएँ हैं। इन सूचना के स्रोतों द्वारा अवधारणात्मक तथा सैद्धान्तिक घटकों का संगठन प्राप्त करता है। व्यक्तियों की प्रेरणा की मूल प्रवृत्ति सम्बन्धी घटकों का स्रोत सावयव ही है।'

TOUCH 'n' PASS

पारसन्स के अनुसार प्राणिशास्त्रीय मानवीय प्रकृति की दो मौलिक विशेषताएँ हैं, जो निम्नांकित हैं—

(i) व्यक्ति की सामाजिक अन्त: क्रिया प्रक्रिया में दूसरों की अभिवृत्तियों द्वारा प्रभावित करने की सुलभता और निष्कर्ष रूप में सापेक्षत: विशिष्ट प्रक्रियाओं की प्राप्ति पर निर्भर होना।

(ii) मानव सावयव का लचीलापन व्यवहार के वैकल्पिक प्रतिमानों में से किसी भी एक प्रतिमान को अधिगम करने की क्षमता।

प्र.3. सामाजिक व्यवस्था का अर्थ एवं परिभाषाएँ तथा विशेषताएँ एवं आवश्यक तत्त्वों का वर्णन कीजिए।
Describe the meaning and definitions, characteristics and essential elements of social system.

उत्तर

सामाजिक व्यवस्था का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Social System)

कुछ समाजशास्त्रियों का मत है कि समाज को एक व्यवस्था के रूप में देखा जा सकता है तथा उसका विश्लेषण भी किया जा सकता है। सामाजिक व्यवस्था वह चरण है जिसमें विभिन्न इकाइयाँ जो समाज का निर्माण करती हैं एक-दूसरे के साथ कार्यात्मक सम्बन्धों के आधार पर सांस्कृतिक प्रणाली के भीतर उचित संतुलन की स्थिति बनाती है, जिसमें व्यक्तियों के सामाजिक सम्बन्धों और व्यवहारों का नियन्त्रण विभिन्न संस्थाओं के द्वारा निर्देशित होता है। अनेक समाजशास्त्रियों ने समाज को एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया है। ऐसे विद्वानों का संप्रदाय संरचनात्मक प्रकार्यात्मक सम्प्रदाय कहलाता है। सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था को सामाजिक इकाई के रूप में देखा जाता है। सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा द्वारा हम वास्तविकता को व्यक्त करते हैं। इस व्यवस्था का निर्माण उन अन्तर्क्रियाओं और सम्बन्धों से होता है जो सांस्कृतिक तथा व्यक्तित्व व्यवस्था के आधार पर विकसित होते हैं। जब भिन्न-भिन्न समूहों और व्यक्तियों की पारस्परिक क्रियाएँ कार्यात्मक रूप से सम्बन्धित होते हैं तब यही व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था कहलाती है। सामाजीकरण द्वारा सामाजिक व्यवस्था अधिकाधिक रूप में सम्पोषित होती है। सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा को कुछ विद्वानों द्वारा परिभाषा के रूप में स्पष्ट किया गया है, जो निम्नवत् है—

पारसन्स (Parsons) के अनुसार, 'एक विशेष सामाजिक परिस्थिति में जब अनेक कर्त्ता सामान्य रूप से स्वीकृत सांस्कृतिक प्रतीकों के अन्तर्गत अपने आदर्श लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अन्तर्क्रिया कर रहे होते हैं, तब इस दशा को हम सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।'

मैक्स वेबर के अनुसार, 'वह विधि जिसके द्वारा समाज में भाग लेने वाले विशिष्ट समूहों में सामाजिक व्यवस्था का वितरण किया है, उसे सामाजिक व्यवस्था कहते हैं।'

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार, 'समाज स्वयं एक व्यवस्था है। यह प्रचलनों, कार्यविधियों, प्रभुत्व, आपसी सहयोग और विभिन्न समूहों और श्रेणियों के नियन्त्रण व मानव व्यवहारों के नियन्त्रण और स्वतन्त्रताओं की एक व्यवस्था है।'

परेटो के अनुसार, 'समाज विभिन्न शक्तियों के साम्य की एक व्यवस्था है। सामाजिक व्यवस्था समाज की वह अवस्था है, जो किसी दिए हुए समय तथा परिवर्तन की उत्तरोत्तर दशाओं से प्राप्त होती है।'

स्पेन्सर के अनुसार, 'जिस प्रकार मानव शरीर के विभिन्न अंग परस्पर आपसी सहयोग से सम्बन्धित रहते हैं उसी प्रकार समाज के विभिन्न अंग परस्पर सम्बन्धित रहते हैं। इसी तथ्य के अनुसार सामाजिक व्यवस्था विभिन्न इकाइयों के पारस्परिक सम्बन्धों से निर्मित सामाजिक सम्बद्धता की व्यवस्था होती है।'

जोन्स (M.E. Jones) के अनुसार 'सामाजिक व्यवस्था वह दशा है जिसके अन्तर्गत समाज के विभिन्न अंग एक-दूसरे से तथा सम्पूर्ण समाज के साथ अर्थपूर्ण ढंग से सम्बन्धित रहकर कार्य करते हैं।'

सामाजिक व्यवस्था की विशेषताएँ (Characteristics of Social System)

सामाजिक व्यवस्था की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **सामाजिक परिस्थिति** (Social Situation)—प्राय: विभिन्न समाजों की सामाजिक व्यवस्था का रूप एक-दूसरे से भिन्न होता है, क्योंकि प्रत्येक समाज का पर्यावरण तथा परिस्थितियाँ अलग-अलग होती है। अपने सामाजिक पर्यावरण से ही व्यक्तियों की अन्त:क्रियाएँ प्रभावित होती हैं।
2. **सामूहिक/सामान्य लक्ष्य** (Common Goal)—सामाजिक व्यवस्था की मुख्य विशेषता सामूहिक/सामान्य लक्ष्य है। इस व्यवस्था का निर्माण उन्हीं अन्त:क्रियाओं से होता है जिनसे सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति होती है तथा इस लक्ष्य में समूह के

सभी सदस्यों का हित सम्मिलित होता है। उदाहरण के लिए—संयुक्त परिवार तथा एकाकी परिवार का एक सामूहिक लक्ष्य होता है जिसमें परिवार के सभी सदस्यों का हित होता है। जिसमें परिवार के सभी सदस्यों का हित शामिल होता है।

3. **अर्थपूर्ण अन्तः क्रिया** (Meaningful Interaction)—यह व्यवस्था अर्थपूर्ण अन्त: क्रियाओं की संरचना है। सामाजिक व्यवस्था में अर्थहीन तथा उद्देश्यहीन अन्त:क्रियाओं को शामिल नहीं किया जाता है। सामाजिक सम्बन्ध जो मानवीय अन्त:क्रिया पर स्थापित होते है। उनकी उक्ति प्रथाओं, रीति रिवाजों, संस्थाओं आदि से होती है। सामाजिक सम्बन्धों की विविध उक्तियों की रचना सामाजिक व्यवस्था है।
4. **सांस्कृतिक व्यवस्था से सम्बन्धित** (Related to Cultural System)—सामाजिक व्यवस्था सांस्कृतिक व्यवस्था से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। यह व्यवस्था जिन अन्त:क्रियाओं से निर्मित होती है वे लक्ष्यों, नियमों और मूल्यों जो कि एक मुख्य संस्कृति के होते हैं, उनसे प्रभावित होती है। अत: किसी मुख्य सामाजिक व्यवस्था को स्वयं की सांस्कृतिक व्यवस्था से सम्बन्धित करके ही समझा जा सकता है।
5. **प्रकार्यात्मक सम्बन्धों के आधार पर सम्बन्धित** (Related to Functional Relationship)—सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न अंग प्रकार्यात्मक सम्बन्धों के आधार पर परस्पर जुड़े रहते हैं। इस व्यवस्था में प्रत्येक अंग की भूमिका निर्देशित होती है जिसको वह आदर्श नियमों एवं निर्धारित क्रियाविधियों के अनुसार स्वीकारता है। वास्तविक रूप में सामाजिक व्यवस्था का स्थान अन्त:क्रियाशील एवं स्वतन्त्र अंगों की व्यवस्था का स्थान अवधारणा में महत्त्वपूर्ण है।
6. **गतिशीलता** (Mobility)—सामाजिक व्यवस्था में गतिशीलता तथा परिवर्तनशीलता मुख्य रूप से पाई जाती है। इस व्यवस्था में समय की माँग के अनुसार इस प्रकार का परिवर्तन होता है कि जिससे समूह में सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ व्यक्तियों की अन्त:क्रियाओं के सन्तुलन को भी बनाए रखा जा सके।
7. **सांस्कृतिक नियन्त्रण** (Social Control)—सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न सांस्कृतिक नियन्त्रणों का समावेश होता है। इसका अर्थ है कि हर एक सामाजिक व्यवस्था अनेक मूल्यों और सांस्कृतिक मानदण्डों के अनुसार अपने सदस्यों को अन्त:क्रियाएँ करने को प्रोत्साहित तथा बाध्य करती है। यह पक्ष सामाजिक व्यवस्था का संस्थात्मक पक्ष कहलाता है।

सामाजिक व्यवस्था के आवश्यक तत्त्व (Essential Elements of Social System)

प्रो. चार्ल्स पी. लूमिस के अनुसार, 'सामाजिक व्यवस्था समाज की एक आन्तरिक स्थिति है, इसलिए सामाजिक व्यवस्थाओं के अध्ययन के लिए आन्तरीकरण का अध्ययन आवश्यक है।' इस आन्तरीकरण के अध्ययन के अन्तर्गत सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रियाएँ हैं। सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना सामाजिक अन्त: क्रियाओं के दौरान ही स्थापित होती है तथा ये सामाजिक तत्त्वों को प्रदर्शित करते हैं। विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाओं द्वारा इन तत्त्वों का स्पष्टीकरण होता है तथा सामाजिक व्यवस्थाओं का निर्धारण इन्हीं सामाजिक प्रक्रियाओं की गतिशीलता द्वारा होता है।

प्रो. चार्ल्स पी. लूमिस ने सामाजिक व्यवस्था के नौ तत्त्व बताए है, जो कि निम्नांकित हैं—

1. **विश्वास और ज्ञान** (Faith and Knowledge)—किसी भी समाज में प्रचलित प्रथाओं और मान्यताओं का परिणाम विश्वास होता है। मानव समाज में नियन्त्रण स्थापित कर मानव व्यवहार में एकरूपता लाने का प्रयास ज्ञान और विश्वास द्वारा किया जाता है। ज्ञान और विश्वास के आधार पर मानव व्यवहार में स्थिरता, निश्चितता तथा एकरूपता विकसित होती है।
2. **भावनाएँ** (Emotions)—गिन्सबर्ग के अनुसार, 'समूह की भावनाओं के आधार पर विभिन्न प्रकार के रीति-रिवाजों और परम्पराओं का विकास होता है।' संवेगों का अधिक विषम और जटिल मानसिक क्रियाओं के रूप में संगठित होना भावनाएँ कहलाता है। सामाजिक व्यवस्था में भावनाओं का विशेष महत्त्व होता है। व्यक्ति में प्रत्ययात्मक स्तर पर भावनाओं का विकास होता है।
3. **लक्ष्य, उद्देश्य और आवश्यकताएँ** (Goal, Objectives and Needs)—सामाजिक व्यवस्था में समाज के सदस्यों की आवश्यकताओं, लक्ष्यों तथा उद्देश्यों का समावेश होता है। सामाजिक अंतर्सम्बन्ध स्थापित करने का प्रमुख कारण ही व्यक्तियों द्वारा अपनी लक्ष्यों, उद्देश्यों तथा आदर्शों की पूर्ति करना है। मनुष्य की कुछ आवश्यकताएँ जैसे—भोजन, पानी आदि की आवश्यकता प्रत्येक मानव की होती है, इन्हें प्राथमिक आवश्यकताएँ माना गया है। इन आवश्यकताओं का

TOUCH 'n PASS

अस्तित्व आदिकाल से आज तक बना हुआ है, परन्तु कई लक्ष्य, उद्देश्य और आवश्यकताएँ समय के अनुसार बदलती रहती हैं।

4. **आदर्श नियम** (Model Rule)—प्रत्येक समाज में सांस्कृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत आदर्श नियमों की व्याख्या की जाती है। इस अध्ययन का आधार सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति के व्यवहार पर नियन्त्रण बनाए रखना है।
5. **शक्ति** (Power)—विभिन्न इकाइयों के अन्तर्क्रियात्मक योग से बनी अखंड व्यवस्था ही सामाजिक व्यवस्था है। इन इकाइयों के मध्य किसी भी प्रकार के तनाव या संघर्ष से बचने इनके व्यवहार को नियन्त्रित करने के लिए शक्ति की व्यवस्था हर समाज में होती है।
6. **प्रस्थिति** (Status)—समाज के द्वारा व्यक्ति की स्थिति, उसके जन्म, रूप और जन्मगत रूप का निर्धारण किया जाता है। प्रस्थिति के साथ अन्य तत्त्व जैसे सुविधा, शक्ति, अधिकार, समाज में प्रतिष्ठा आदि भी शामिल होते हैं।
7. **सुविधाएँ** (Facilities)—सामाजिक दायित्वों को पूर्ण करने की प्रेरणा समाज द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं पर निर्भर है। प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था सुविधाओं की प्राप्ति के साथ ही अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन भली भाँति करता है।
8. **भूमिका** (Role)—प्रत्येक समाज में व्यक्ति की भूमिका की एक निश्चित व्यवस्था होती है, जो कि प्रस्थिति के समान होती है। प्रत्येक प्रस्थिति की एक निश्चित भूमिका होती है। प्रत्येक व्यक्ति समाज द्वारा निर्धारित अपनी प्रस्थिति के अनुसार अपनी भूमिका का निर्वहन करता है। भूमिका के द्वारा प्रस्थिति की बाहरी स्थिति व्यक्त की जाती है।
9. **मान्यताएँ** (Beliefs)—सामाजिक मान्यताओं की सहायता से व्यक्ति के सही और गलत कार्यों के बीच भेद किया जाता है। व्यक्ति के व्यवहार पर सामाजिक मूल्य या समाज के द्वारा स्वीकृत मान्यताओं का प्रभाव पड़ता है।

प्र.4. पारसन्स के सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्त का वर्णन विस्तार से कीजिए।
Describe the social system theory of Parsons in detail.

उत्तर

पारसन्स का सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्त
(Social System Theory of Parsons)

पारसन्स का सामाजिक व्यवस्था का विचार अधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'द सोशल सिस्टम' (The Social System) में स्वयं के विचार व्यक्त किये हैं। **टॉलकॉट पारसन्स** (Talcott Parsons) के अनुसार, 'सामाजिक व्यवस्था में वैयक्तिक कर्त्ताओं की बहुलता होती है, जो एक ऐसी स्थिति में एक-दूसरे से अंत:क्रियाएँ करते हैं जिनका कम-से-कम एक भौतिक अथवा पर्यावरण संबंधी पहलू होता है। इस व्यवस्था में कर्त्ता अत्यधिक आवश्यकताओं की संतुष्टि की भावना से प्रेरित होते हैं और अंत:क्रियाओं में लगे हुए व्यक्तियों के पारस्परिक संबंध, जिनमें परिस्थितियों के साथ उनके संबंध भी सम्मिलित हैं, सांस्कृतिक रूप से संचारित तथा स्वीकृत प्रतीकों की एक व्यवस्था द्वारा परिभाषित एवं व्यवस्थित होते हैं।'

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि एक से अधिक वैयक्तिक कर्त्ताओं की पारस्परिक अंत:क्रियाओं द्वारा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है। जिसमें कुछ प्रमुख आवश्यक तत्त्व जैसे- कर्त्ता (एक या एक से अधिक), अन्त:क्रिया, लक्ष्य या उद्देश्य, सामाजिक परिस्थिति, (भौतिक या पर्यावरण सम्बन्धी पक्ष), परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट होते हैं। पारसन्स के अनुसार शारीरिक व्यवस्था, सांस्कृतिक व्यवस्था एवं व्यक्तित्व व्यवस्था को मिला देने से सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है और समाजशास्त्र इसी सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन करता है।

पारसन्स के अनुसार प्रत्येक व्यवस्था की संरचना निश्चित होती है और यह संरचना विभिन्न इकाइयों से निर्मित होती है अर्थात संरचना का अस्तित्त्व इकाइयों पर टिका होता है। जब पारस्परिक तरीके से प्रत्येक इकाई सहयोगात्मक सम्बन्ध रखेगी और अपने-अपने प्रकार्य की पूर्ति करेगी तो संरचनात्मक अस्तित्त्व बना रहेगा। इस प्रकार 'संरचना का अस्तित्त्व इकाइयों द्वारा किये गए प्रकार्य पर निर्भर है।' जब संरचनात्मक अस्तित्त्व बने रहने से संरचना भी अपने प्रकार्य की पूर्ति करेगी तो व्यवस्था सदैव संतुलित और संगठित बनी रहेगी। 'व्यवस्था का अस्तित्त्व संरचना द्वारा किये गए प्रकार्य पर निर्भर है' चूँकि व्यवस्था में संरचना और प्रकार्य दोनों निहित हैं इसलिए पारसन्स के इस सिद्धांत को संरचनात्मक प्रकार्यवादी सिद्धांत भी कहते हैं।

व्यवस्था = संरचना + प्रकार्य

अत: प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था की भी इसी प्रकार की एक निश्चित संरचना होती है। यह संरचना सामाजिक संरचना कहलाती है। इसका निर्माण विभिन्न इकाइयों जैसे सांस्कृतिक इकाई, पारिवारिक इकाई, आर्थिक इकाई, राजनीतिक इकाई आदि से होता है। जब

अपने-अपने प्रकार्य की ये सभी इकाइयाँ पूर्ति करती हैं तो संरचना बनी रहती है तथा जब संरचना स्वयं के प्रकार्य की पूर्ति करती है तो व्यवस्था बनी रहती है और सामाजिक संगठन तथा संतुलन बना रहता है।

सामाजिक व्यवस्था के मूल पक्ष (Aspects of Social System)

समाज की किसी भी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में विभिन्न तत्त्वों का योगदान होता है। सभी तत्त्वों में कार्यात्मक भिन्नता होती है। कुछ तत्त्व सामाजिक ढाँचे के निर्माण में तथा कुछ तत्त्व समाज के लिए सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में अपना योगदान देते हैं।

पारसन्स द्वारा इन्हीं तत्त्वों को संस्थात्मक पक्ष, संरचनात्मक पक्ष एवं प्रकार्यात्मक पक्ष कहा जाता है। इन सभी सामाजिक व्यवस्था के पक्षों का वर्णन संक्षेप में किया गया है—

1. **संस्थात्मक पक्ष** (Institutional Aspect)—पारसन्स के अनुसार, प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में कुछ ऐसे तत्त्व सम्मिलित होते हैं जो आपसी संघर्ष और विरोध पर नियन्त्रण लगाते हैं। ये तत्त्व सामाजिक व्यवस्था को समाज और व्यक्ति के लिए उपयोगी बनाए रखने का प्रयास करते रहते हैं तथा यह तत्त्व अनेक संस्थाओं के रूप में होते हैं। संस्था के रूप में कुछ तत्त्वों का वर्णन इस प्रकार है—
   (i) **नियामक संस्थाएँ**—पारसन्स द्वारा इन संस्थाओं को नियामक संस्थाएँ कहा गया है जिनके द्वारा व्यक्तियों के स्वार्थवादी और व्यक्तिवादी स्वभाव पर नियन्त्रण तथा उनके व्यवहारों का नियमन किया जाता है। अधिकांशत: सामाजिक नियमों के अनुसार यह व्यक्ति को एक ओर शक्ति के द्वारा व्यवहार करने को बाध्य करती हैं और दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने हेतु दण्ड और पुरस्कार की व्यवस्था करती हैं। इस प्रकार की संस्थाओं के अन्तर्गत कानून, सरकार, राज्य आदि आते हैं।
   (ii) **सम्बन्धात्मक संस्थाएँ**—सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में व्यक्तियों के मध्य होने वाली अन्त:क्रियाओं से ही पारस्परिक सम्बन्धों की स्थापना होती है। इस दृष्टिकोण से उन संस्थाओं का सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत एक अति महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, जो विभिन्न भूमिकाओं और प्रस्थिति का निर्धारण तथा व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों को निर्धारित करती हैं। जैसे—सामाजिक मूल्य, नैतिकता, नातेदारी, परिवार आदि ये इसी प्रकार की सम्बन्धात्मक संस्थाएँ हैं। सामाजिक व्यवस्था में इन संस्थाओं का कार्य सभी व्यक्तियों को कुछ विशेषाधिकार तथा कर्त्तव्य के साथ-साथ विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करना होता है।
   (iii) **सांस्कृतिक संस्थाएँ**—प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में अन्त: क्रियाओं को व्यवस्थित बनाने के लिए कुछ ऐसे नियमों का समावेश होता है जिससे व्यक्तियों के व्यवहारों पर नियन्त्रण सांस्कृतिक आधार पर होता है। व्यवस्था के इन्हीं नियमों को हम सांस्कृतिक संस्थाएँ कहते हैं। उदाहरण के लिए, इस प्रकार की संस्था के अन्तर्गत प्रतीक, धार्मिक नियम तथा सांस्कृतिक मूल्य आदि आते हैं।
2. **संरचनात्मक पक्ष** (Structural Aspect)—इन तत्त्वों में नातेदारी, सामाजिक स्तरीकरण, सामाजिक मूल्य, शक्ति व्यवस्था आते हैं जिनको संक्षिप्त रूप में समझा जा सकता है—
   (i) **नातेदारी व्यवस्था**—सामाजिक व्यवस्था में नातेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति को विवाह तथा रक्त सम्बन्धों के आधार पर स्वयं के समूह में किन भूमिकाओं का निर्वाह तथा उसमें कौन-सी प्रस्थिति प्राप्त होती है, इन सभी का निर्धारण होता है। इससे समाज में संघर्ष और प्रतिस्पर्धा नहीं हो पाती है तथा व्यक्तियों के मध्य दायित्वों तथा अधिकारों का सन्तुलन बना रहता है।
   (ii) **सामाजिक स्तरीकरण**—सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था में कुछ व्यक्तियों को अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक एवं कम अधिकार प्रदान किए जाते हैं। इस व्यवस्था से व्यक्ति को स्वयं की योग्यता और कुशलता के आधार पर समाज में एक विशेष प्रस्थिति प्रदान की जाती है। व्यक्तियों को सामाजिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप यह विश्वास रहता है कि उन्हें समाज में उनके प्रयत्नों और योग्यता के आधार पर कई प्रकार के पुरस्कार एवं अधिकार प्राप्त होंगे। परिणामस्वरूप सामाजिक व्यवस्था का स्वयं का कार्य सन्तुलित रूप में सम्पन्न होता रहता है।
   (iii) **सामाजिक मूल्य**—सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में सामाजिक मूल्यों का विशेष स्थान है। इन मूल्यों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि व्यक्ति हेतु किसी विशेष व्यवहार का क्या अर्थ है तथा उनसे अन्य लोग किस प्रकार के

TOUCH 'n PASS

व्यवहार की प्रत्याशा रखते हैं। समाज में व्यक्ति के मनोभावों का निर्माण ये सामाजिक मूल्य करते हैं। सामाजिक मूल्यों के आधार पर किसी विशेष सामाजिक व्यवस्था की धारणा को समझा जा सकता है।

(iv) **शक्ति व्यवस्था**—प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तियों की उन अनेक क्रियाओं को जिनमें दो तरह के तत्त्व सहयोग और विरोध पाए जाते हैं उन्हें सम्मिलित किया जाता है। समाज में सहयोग और एकीकरण में वृद्धि तथा संघर्ष एवं विरोध को कम करने का कार्य शक्ति व्यवस्था का है। समाज में व्यवस्था के नियमों के विरुद्ध कार्य करने वाले लोगों पर नियन्त्रण रखने हेतु सामाजिक व्यवस्था में कुछ सदस्यों को विशेष अधिकार प्रदान किए जाते हैं। इस तरह प्रतीत होता है कि सामाजिक व्यवस्था के सभी तत्त्वों का उद्देश्य स्वयं की प्रस्थिति एवं भूमिका के अनुसार व्यवहार करने की प्रेरणा देना तथा सदस्यों की अन्त:क्रियाओं को नियमित बनाना होता है।

3. **प्रकार्यात्मक पक्ष** (Functional Aspect)—प्रकार्यात्मक विश्लेषण के आधार पर सामाजिक व्यवस्था के संरचना का विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक व्यवस्था के प्रकार्यात्मक पक्ष की चर्चा करने से पूर्व प्रकार्य शब्द की चर्चा कर लेना आवश्यक है। प्रकार्य का अर्थ उस दिए जाने वाले योगदान से है, जो किसी इकाई के अंग द्वारा उस इकाई के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए किया जाता है। दुर्खीम के अनुसार, प्रकार्य शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। प्रथम अर्थ के अनुसार, 'इसकी सहायता से किसी प्राणाधार गतिविधियों की व्यवस्था के विषय में पता चलता है, जिसके परिणामों से हमारा कोई तात्पर्य नहीं रहता है।' द्वितीय अर्थ के अनुसार, 'प्रकार्य की सहायता से इन गतिविधियों तथा जीव की आवश्यकताओं के मध्य सम्बन्ध के विषय में पता चलता है।

पारसन्स के अनुसार, सामाजिक व्यवस्था को अपने अस्तित्व की रक्षा तथा अपनी संरचना में स्थायित्व बनाए रखने के लिए निम्नांकित चार प्रकार की समस्याओं को सुलझाना पड़ता है या प्रकार्यात्मक पूर्वअपेक्षाएं को पूर्ण करना पड़ता है—

(i) **अनुकूलन** (Adaptation)—सामाजिक व्यवस्था किसी पर्यावरण के अन्तर्गत कार्यरत होती है। सामाजिक व्यवस्था के समक्ष प्रथम चुनौती इस पर्यावरण से अनुकूलन स्थापित करने की है। पर्यावरण का विभाजन दो श्रेणियों में किया जा सकता है, जो कि—

(a) भौतिक या अभौतिक पर्यावरण (Physical Environment)

(b) सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण (Socio-Cultural Environment)

सामाजिक व्यवस्था दोनों प्रकार के पर्यावरणों से अनुकूलन करके अपने सन्तुलन को बनाए रखती है तथा अपने-अपने अस्तित्व को बचाए रखने में समर्थ हो पाती है। प्रतिमानित आदर्शों और मूल्यों की सहायता से सामाजिक व्यवस्था सांस्कृतिक पर्यावरण से अनुकूलन स्थापित करती है तथा संस्कृति या सभ्यता के माध्यम से भौतिक पर्यावरण से अनुकूलन स्थापित करती है।

(ii) **लक्ष्य प्राप्ति** (Goal Attainment)—सामाजिक व्यवस्था के अस्तित्व और स्थायित्व के लिए अनिवार्य तत्त्व लक्ष्य प्राप्ति है। प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में कुछ महत्त्वपूर्ण लक्ष्य होते हैं तथा इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए साधन उपलब्ध करवाकर ही सामाजिक व्यवस्था का अनुकूलन पर्यावरण के साथ हो सकता है। व्यक्तियों में प्रेरणा उत्पन्न करके या मानवीय साधनों को जुटाकर सामाजिक सदस्यों की जैविक और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है।

(iii) **एकीकरण** (Integration)—सामाजिक व्यवस्था का निर्माण परस्पर सम्बन्धित एवं अन्तर्क्रियारत इकाइयों द्वारा होता है, इसलिए प्रकार्यात्मक आवश्यकता इसके विभिन्न अंगों में समन्वय एवं एकीकरण से सम्बन्धित है। सकारात्मक तथा नकारात्मक नियमों के विकास द्वारा एकीकरण की समस्या का समाधान किया जा सकता है, जिससे विभिन्न अंगों, उपसंरचनाओं, उपसमूहों में तालमेल तथा व्यवस्था में स्थायित्व बना रह सकता है।

(iv) **प्रतिमानात्मक स्थायित्व तथा तनाव नियन्त्रण** (Pattern Maintenance and Tension Management or Latency)—सामाजिक व्यवस्था की चतुर्थ आवश्यकता प्रतिमानों अर्थात् व्यवहार के विभिन्न अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों को बनाए रखने तथा समय-समय पर इसमें उत्पन्न तनाव को कम करने का कार्य करती है। व्यक्तित्व एवं सांस्कृतिक स्तर को संगठित एवं नियमित करने का कार्य व्यवहार के निश्चित प्रतिमानों द्वारा सम्पन्न होता है। सांस्कृतिक मूल्यों में अन्तर के कारण सांस्कृतिक व्यवस्था के स्तर पर भी इस प्रकार का तनाव पैदा हो सकता है।

TOUCH 'n' PASS

सामाजिक व्यवस्था की उपरोक्त चारों प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं/एजीआईएल मॉडल (AGIL Model) में वस्तुओं की न्यूनता, मानव की परस्पर विरोधी तथा सीमित इच्छाओं तथा लक्ष्य उन्मेषित, अनुकूलनात्मक मानव प्रकृति, मानव की अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने की प्रवृत्ति आदि के कारण संघर्ष होता है। इस संघर्ष को नियमित करना प्रत्येक व्यवस्था के लिए अनिवार्य है।

प्र.5. प्रतिमान चर/विकल्प को समझाते हुए इसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।
Describe the pattern variables and its types.

उत्तर

प्रतिमान चर/विकल्प
(Pattern Variables)

प्रतिमान चर की अवधारणा (Concept of Pattern Variables)

पारसन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'The Social System' में प्रतिमानित विकल्प/चर (Pattern Variables) की व्याख्या प्रस्तुत की। पारसन्स ने सामाजिक व्यवस्था के मुख्य रूप से दो प्रकारों का उल्लेख किया है। ये प्रकार हैं–परम्परागत सामाजिक व्यवस्था एवं आधुनिक सामाजिक व्यवस्था। दोनों प्रकार की व्यवस्था में स्थायित्व एवं संतुलन बनाए रखने के लिए कुछ निश्चित प्रतिमानों का विकास हो जाता है। इनमें से कुछ प्रतिमान ऐसे होते हैं, जो व्यक्ति के वास्तविक व्यवहार को प्रभावित करते हैं, इन्हीं को पारसन्स ने 'प्रतिमानित चर' नाम दिया है। चर वह प्रतिमान है, जिसमें कर्त्ता के सामने क्रिया के चयन में विकल्प हो। जब व्यक्ति लक्ष्यों एवं साधनों का चुनाव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करता है तो उसे दुविधा का सामना करना पड़ता है। उसे क्रिया करते हुए अपने विकल्प का चयन करना पड़ता है। प्राय: व्यवहार के दो विकल्प होते हैं, इन्हीं विकल्पों को पारसन्स दुविधा के रूप में रखते हैं। यही विकल्प अन्त:क्रिया को निश्चित करते हैं। जब कर्त्ता की अन्त:क्रिया किसी दूसरे व्यक्ति के साथ होती है, तो अन्त:क्रिया करने वाले व्यक्ति को पारसन्स ईगो (Ego) कहते हैं और जिस व्यक्ति के साथ अन्त:क्रिया की जाती है, उसे पारसन्स आल्टर (Alter) कहते हैं। ईगो तथा आल्टर दोनों की अन्त:क्रिया के दौरान व्यक्तित्व, सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। इन व्यवस्थाओं से अन्त:क्रिया करते समय व्यक्ति के समक्ष दुविधा या असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अन्त:क्रिया की इस दुविधा को पारसन्स ने पैटर्न वैरिएबल (Pattern Variables) कहा है।

क्रिया के चयन में यह विकल्प जोड़े में होते हैं, अत: जोड़ों के विकल्पों में किसी एक का चयन करना पड़ता है। कर्त्ता के विकल्प का चयन उसके अभिमुखन (Orientation), (जिसे पारसन्स ध्रुवीय विभागीकरण (Polar Dichotomies) भी कहते हैं), आन्तरिक मूल्य व्यवस्था या परिस्थिति (Situation) पर निर्भर होता है। विकल्प को प्राथमिकता वह उपर्युक्त आधार पर ही देता है। उदाहरण के लिए, जब कर्त्ता सामने वाले व्यक्ति के साथ अन्त:क्रिया करता है और उसे मदिरा पीने हेतु आमन्त्रित करता है। तब व्यक्ति सोचता है कि उसकी जाति में मदिरा पीना निषेध है और स्वयं भी मदिरा पीना पसन्द नहीं करता है, तो व्यक्ति का मदिरा के प्रति दुराव है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति को मदिरा पसन्द भी हो सकती है, अर्थात् अन्त:क्रिया में जो अभिमुखन होता है। वे संस्कृति, मूल्य और मानक पर आधारित होते हैं। इस प्रकार पारसन्स का किसी भी अन्त:क्रिया के प्रति यही मानना है कि एक प्रकार का मूल्य और संस्कृति का द्विभागीकरण होता है।

यदि प्रतिमान चर को सिद्धान्तीकरण की परम्परा में देखा जाए तो यह द्विभागीकरण वास्तव में वेबर के आदर्श प्रारूप प्रणाली का एक स्वरूप है। वेबर जैसे अधिकारी तन्त्र सामाजिक क्रिया और प्रभुत्व का आदर्श प्रारूप जिस प्रकार बनाते है उसी प्रकार पारसन्स ने भी व्यक्ति की यूनिट एक्ट को प्रतिमान विकल्प/चर में रखा है। पैटर्न चर का सम्बन्ध सामाजिक क्रिया एवं सामाजिक प्रणाली की दोनों अवधारणाओं से होता है। किसी क्रिया को करते समय कर्त्ता द्वन्द्व में होता है। इस द्वन्द्वात्मक स्थिति से बाहर आने के लिए पाँच प्रकार के प्रतिरूप चर हैं, जिन पर पारसन्स चर्चा करते हैं। चूँकि ये प्रतिमानित चर दो विरोधी अवस्थाओं से सम्बन्धित होते हैं, जो कि ये बताते हैं, कि कर्त्ता या रुझान या झुकाव किस ओर है। यह प्रतिमानित चर/विकल्प सभी समाजों में पाए जाते हैं।

प्रतिमान चर के प्रकार (Types of Pattern Variables)

पारसन्स के अनुसार प्रतिमान चर के पाँच प्रकार निम्नलिखित हैं—

1. **भावात्मकता बनाम भावात्मक तटस्थता** (Affectivity vs Affective Neutrality)—इसमें एक निश्चित परिस्थिति होती है जिसमें व्यक्तियों के मध्य अन्त:क्रिया होती है। इस अन्त:क्रिया का सम्बन्ध कर्त्ता की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से भी होता है। आवश्यकताएँ ही उसकी क्रिया को भावात्मक बनाती है और भावात्मक तटस्थता भी। वेबर ने एक उदाहरण से स्पष्ट किया है जिसमें उन्होंने पैतृक शासक को शामिल किया है। उन्होंने कहा है कि यदि अधिकारियों का चयन वह कुछ विशेष बातों को ध्यान में रखकर करता है; जैसे—कौन उसके प्रति सम्मान की भावना रखता है, कौन उसके

अधिक निकट है और कितनी योग्यता रखता है तो यह क्रिया या निर्णय भावात्मक कहलाती है। इसके विपरीत यदि अधिकारी चयन में वह केवल विशेष रूप से योग्यता का ही ध्यान रखता है तो वह भावात्मक तटस्थता कहलाती है। भावनात्मक तटस्थता सामाजिक नियमों पर अधिक बल देती है।

उदाहरण के लिए, आधुनिक सामाजिक व्यवस्था। इसके अतिरिक्त व्यक्ति किसी विशेष दशा में भावात्मक रूप से चिल्ला सकता है, रो सकता है, हँस सकता है और इसके विपरीत भी हो सकता है कि वह अपनी भावनाओं को दबा दे, उदासीन हो जाए तो यह भावनात्मक तटस्थता होगी। निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि भावात्मक दृष्टि से अथवा भावात्मक तटस्थता से दुविधा उत्पन्न होती है। सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति यदि अपने व्यवहार का भावात्मक रूप से अधिक संचालन करता है तो वह भावात्मक प्रतिमान है और यदि अपने व्यवहार में वह तर्क शक्ति का भावात्मक की अपेक्षा अधिक उपयोग करता है तो वह भावात्मक रूप से तटस्थ प्रतिमान कहलाता है।

2. **विशेषता बनाम सार्वभौमिकता** (Particularism vs Universalism)—यह भी प्रतिमान विकल्प का एक जोड़ा है। यदि व्यक्ति व्यक्तिवादी तरीके से सोचता है अर्थात् उसके विचार के अन्तर्गत अपना परिवार, अपनी जाति, नातेदारी आदि सम्बन्धित कारक आते हैं, तो यह लक्षण बिशेषता विकल्प या जोड़े के अन्तर्गत आती है। प्राय: परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में यही स्थिति पाई जाती है। इसके विपरीत इन स्थितियों से ऊपर उठकर समाज और सामूहिक हितों के लिए कर्त्ता द्वारा कार्य किया जाना सार्वभौमिकता की श्रेणी में आता है। आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में इसकी स्पष्ट झलक परिलक्षित होती है। उदाहरण के लिए, यहाँ अध्यापक को लिया जा सकता है। यदि वह अंक या ग्रेड प्रदान करते समय सिर्फ योग्यता को आधार मानता है, तो उसका यह कार्य अमूर्त, सामान्य, सार्वभौमिक सिद्धान्तों के अनुरूप है। वहीं यदि अध्यापक अंक या ग्रेड प्रदान करते समय अपने सम्बन्धों, पसन्द आदि को ध्यान में रखते हुए पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाता है, तो वह विशेषता के विकल्प का प्रयोग करता है। इस प्रकार यह वह दुविधा को स्पष्ट करता है जिसका सम्बन्ध संज्ञानात्मक एवं संवेगात्मक मानकों के मूल्यांकन से होता है। पारसंस का तर्क था जिस समाज में नौकरशाही, औपचारिक संगठनों और आधुनिक संस्थाओं की व्यापक भूमिका है वहां सार्वभौमवाद और विशिष्टतावाद के मध्य दुविधा की स्थिति प्राय: दैनिक जीवन में चुनाव का विकल्प विषय बनते हैं।
3. **विनिर्दिष्टता बनाम प्रसरणता** (Specificity vs Diffuseness)—ये प्रतिमान चर भूमिका निष्पादन के विषय क्षेत्र से सम्बन्धित है। दो लोगों के बीच की सामाजिक अन्त:क्रिया के स्वरूप के आधार पर इन प्रतिमान चरों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। जैसे किसी डॉ. को अपने मरीजों की सामाजिक या राजनीतिक पृष्ठभूमि समझने की कोई आवश्यकता नहीं होती। डॉ. के इलाज का कार्य विशिष्ट प्रकृति का है। वहीं दो मित्रों या नातेदारों के मध्य अन्त:क्रिया का सम्बन्ध सामान्य एवं व्यापक प्रकृति का है। कर्त्ता का वस्तु के साथ सम्बन्ध क्षेत्र एवं आवरण की दृष्टि से सीमित है वहीं दूसरी ओर यह सम्बन्ध क्षेत्र की दृष्टि से अनिश्चित रूप में काफी व्यापक है तथा अनेकतावादी परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए जमींदारी प्रथा में मजदूर के अपने मालिक के प्रति सीमारहित दायित्व होते हैं, इसे व्यापकता के दृष्टिकोण से देखा जाता है। किसी कारखाने में उद्योगपति तथा श्रमिकों के मध्य विशिष्ट सम्बन्ध हैं। लेकिन दोनों का दायित्व सिर्फ सेवा समझौते के विशिष्ट रूप में है।
4. **प्रदत्त बनाम अर्जित/उपलब्धि** (Ascription vs Achivement)—इस प्रतिमान विकल्प में कर्त्ता को दुविधा यह होती है कि वह अपने विषय का क्रियान्वयन गुणवत्ता के आधार पर करता है अथवा नहीं। उदाहरण के लिए कर्त्ता को यदि किसी की नियुक्ति का दायित्व दिया जाए तो वह उस पद की नियुक्ति योग्यता या कौशल के आधार पर करता है अथवा वह अपनी जाति के किसी अयोग्य व्यक्ति की नियुक्ति उस पद पर कर लेता है। इसमें अन्त:क्रिया करने वाले व्यक्ति का मूल्यांकन किस पैमाने पर किया जाए इसकी दुविधा होती है। जैसे उपर्युक्त उदाहरण में कहा गया कि व्यक्ति की नियुक्ति जाति आधार पर करेगा या योग्यता एवं कुशलता के आधार पर। जाति, लिंग, नातेदारी के प्रभाव में व्यक्ति द्वारा किसी क्रिया का निष्पादन करना, प्रदत्त प्रतिमान/व्यवहार कहलाएगा और वहीं किसी क्रिया का कौशल के आधार पर निष्पादन करना अर्जित प्रतिमान/व्यवहार कहलाएगा। इसे अब गुण बनाम उपलब्धि (Quality Vs Performance) के भी नाम से जाना जाता है। इस चर में दुविधा का कारण है कि व्यक्ति गुणवत्ता या प्रदर्शन के सन्दर्भ में अपनी भूमिका को परिभाषित करता है कि नहीं। परम्परागत सामाजिक व्यवस्थाओं में जन्मजात गुणों का महत्त्व होता था। लोगों को परिभाषित करने का आधार आयु, लिंग, रंग, वंश आदि होता है। उदाहरण के लिए राजा का बेटा राजा, पुजारी का बेटा पुजारी बनता था,

TOUCH 'n' PASS

अर्थात् ये पद वंशानुक्रम थे। जन्म तथा जाति के आधार पर भारतीय सामाजिक व्यवस्था को स्तरीकरण किया जाता है। व्यक्तियों को उनकी योग्यताओं और क्षमताओं के आधार पर स्तरीकृत करने को उपलब्धि/अर्जित के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। आधुनिक समय में प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर चयन करना उपलब्धि/अर्जित गुण के अन्तर्गत आता है। आधुनिक समाज में प्रोफेसर, डॉक्टर, इंजीनियर आदि गुणों के आधार पर नहीं अपितु उपलब्धि के आधार पर चयनित होते हैं। उदाहरण—भारत में जाति व्यवस्था द्वारा नियन्त्रित भूमिका प्रदर्शन।

5. **स्वकेन्द्रित बनाम समूह केन्द्रित** (Self-orientation vs Group Orientation)—किसी क्रिया के दौरान कर्त्ता द्वारा स्वयं के हितों या समूह के हितों को महत्त्व देना स्वहित बनाम समूह हित चर के अन्तर्गत आता है। यह कर्त्ता के स्वयं के हितों की पूर्ति के लिए प्रयत्नों को वैध ठहराते हैं या सामूहिक हित के लिए कार्य करने हेतु बाध्य करते हैं। उदाहरण के लिए कोई सेल्समैन अपनी वस्तुओं की बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा करता है, जिससे कि उसका सामान बिक जाए। सेल्समैन द्वारा ऐसा करना स्व-केन्द्रित विकल्प का उदाहरण माना जा सकता है। वहीं एक डॉक्टर से ये अपेक्षा की जाती है। कि वह अपने मरीज के इलाज के लिए सर्व उपर्युक्त माध्यम का प्रयोग करे। उसका मरीज के हित में सही बात बताना समूह केन्द्रित है। अत: इसमें कर्त्ता की क्रियाएँ एक ओर स्वयं के हित को देखकर अर्थात् स्वकेन्द्रित होकर की जा सकती हैं अथवा दूसरों के हित को ध्यान में रखकर सामूहिक रूप में भी की जा सकती है। पहली क्रिया स्वकेन्द्रित और दूसरी समूह-केन्द्रित कहलाती है। पारसन्स का इस सन्दर्भ में कहना है, यदि अधिकारी तन्त्र में अधिकांश अधिकारी स्वयं के हितों को प्रधानता देते हैं तो यह स्वरूप अधिकारी तन्त्र का आत्मकेन्द्रित है वहीं यदि समूह हितों को अधिकांश अधिकारी महत्त्व देते हैं तो वह स्वरूप समूह केन्द्रित अधिकारी तन्त्र होगा।

प्र.6. मर्टन के मध्य सीमा सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए तथा इसकी विशेषताएँ बताइए व आलोचना कीजिए।
Explain the middle range theory of Merton and state its criticism and characteristics.

उत्तर

मध्य सीमा सिद्धान्त
(Middle Range Theory)

परिचय (Introduction)

सन् 1946 में लन्दन विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता पद का पदभार ग्रहण करते समय सर्वप्रथम टी.एच. मार्शल ने अपने उद्बोधन में मध्य सीमा सिद्धान्त के विचार का प्रतिपादन किया। मध्य सीमा सिद्धान्तों की रचना आनुभविक शोध के वास्तविक तथ्यों के आधार पर होती है। इसके पश्चात् इस विचारधारा को राबर्ट के. मर्टन ने आगे बढ़ाया। मर्टन ने मध्य-सीमा सिद्धान्त को सर्वप्रथम अपनी पुस्तक 'थ्योरी एण्ड सोशल स्ट्रक्चर' (Social Theory and Social Structure, 1957) में रखा। मर्टन के अनुसार, 'हमारा प्रमुख कार्य आज सीमित वैचारिक सीमाओं पर लागू विशेष सिद्धान्तों को विकसित करना है, उदाहरण के लिए विचलित व्यवहार, उद्देश्यपूर्ण कार्रवाई के अप्रत्याशित परिणाम, सामाजिक धारणा, संदर्भ समूह, सामाजिक नियंत्रण, सामाजिक संस्थानों की अन्योन्याश्रितता के बजाए कुल वैचारिक संरचना की तलाश करे जो मध्य श्रेणी के और अन्य सिद्धान्तों को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है।'

मध्य सीमा सिद्धान्त का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definition of Middle Range Theory)

मध्य सीमा सिद्धान्त वह सिद्धान्त है जो विभिन्न छोटी-छोटी प्रकल्पनाओं में समान रूप से पाए जाने वाली अवधारणाओं से निर्मित होता है। चूँकि इस सिद्धान्त के ऊपर वृहद सिद्धान्त होते हैं तथा इसके नीचे या लघु समुदाय जैसे अध्ययनों पर आधारित लघु सिद्धान्त होते हैं। मध्य सीमा सिद्धान्त, सूक्ष्म सिद्धान्त और वृहत सिद्धान्त के बीच में स्थित सिद्धान्त है। मर्टन का यह विचार था कि जब तक सामाजिक विज्ञान की अनुसंधान पद्धति अपने विकसित अवस्था में नहीं आ जाती तब तक हमें मध्य सीमा सिद्धान्त का विकास करना चाहिए, क्योंकि वर्तमान में सामाजिक विज्ञान के सिद्धान्त भौतिकी के मॉडल के आधार पर नहीं बनाए जा सकते हैं। मर्टन के अनुसार हमें ऐसे सिद्धान्त बनाने चाहिए। जिनके निष्कर्ष भी उनसे ज्यादा व्यापक सैद्धान्तिक निष्कर्षों से मिलने चाहिए। मध्य सीमा सिद्धान्तों का प्रतिदिन की जीवन की समस्याओं पर निर्माण करके उन्हें अति व्यापक सिद्धान्तों के आलोक में देखा जा सकता है।

TOUCH n PASS

राबर्ट के मर्टन के अनुसार (According to Robert Merton), 'मध्य-सीमा सिद्धान्त तार्किक रूप से अन्तर्सम्बन्धित ऐसी अवधारणाएँ हैं जो व्यापक किन्तु महती सीमित क्षेत्र से सम्बन्धित होती है। इन सिद्धान्तों का कार्य छोटी-छोटी प्राक्कल्पनाओं और वृहद अमूर्त सिद्धान्तों के बीच की खाई को पाटना है।'

डॉ० रॉस के अनुसार (According to Dr. Ross), यह एक 'सीमित सिद्धान्त' है। 'किसी विचाराधीन विषयवस्तु से सम्बन्धित परिभाषाओं, अनुमानों तथा सामान्य प्राक्कल्पनाओं के एक ऐसे समर्पित समूह को सीमित सिद्धान्त कहा जाता है, जिसके द्वारा विशिष्ट तथा परीक्षण योग्य प्राक्कल्पनाओं के एक व्यापक तथा स्थाई समूह का तार्किक आधार पर प्रतिपादन किया जा सकता है।'

रेमण्ड बोदोन के अनुसार (According to Raymond Boudon), 'दो विचारों के प्रति प्रतिबद्धता के रूप में मध्यम श्रेणी के सिद्धान्त को परिभाषित किया है, जिसमें से एक सकारात्मक है तथा दूसरा नकारात्मक। अर्थात् 'मध्य अभिसीमा सिद्धान्त' एक विशिष्ट सिद्धान्त को संदर्भित नहीं करता है, बल्कि यह सिद्धान्त निर्माण के लिए एक दृष्टिकोण है।'

राबर्ट के. मर्टन सामान्य वैचारिक दृष्टि से अपने गुरु पारसन्स की अपेक्षा कम अमूर्त हैं और वे सामान्य सिद्धान्तों को आनुभविक परीक्षण की कसौटी में कसने में विश्वास रखते हैं। अपने मध्य सीमा सिद्धान्त की चर्चा के सन्दर्भ में मर्टन ने अपने ही गुरु पारसन्स के वृहद सिद्धान्त की खुलकर आलोचना की है।

मध्य सीमा सिद्धान्त का विश्लेषण (Analysis of Middle Range Theory)

रॉबर्ट के० मर्टन ने पूर्व प्रचलित सिद्धान्तों को अस्वीकार करते हुए इन दोनों (वृहत एवं लघु सिद्धान्त) के मध्य का सिद्धान्त प्रतिपादित किया क्योंकि मर्टन का मूल उद्देश्य समाजशास्त्र को विज्ञान बनाना था। मर्टन का मानना था कि जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञान में सार्वभौमिक या वैज्ञानिक नियमों को प्रतिपादित किया जाता है, उसी प्रकार समाजशास्त्र को विज्ञान बनाने के लिए इसमें भी उन प्राकृतिक नियमों को किया जाए तथा सार्वभौमिक नियम भी प्रतिपादित किए जाएं। मर्टन के समय तक समाजशास्त्र में दो प्रकार के सिद्धान्त कार्य करते थे—

1. **वृहत सिद्धान्त** (Macro Theory)—इस सिद्धान्त के माध्यम से सामान्य जानकारी तो प्राप्त हो सकती है परन्तु उसकी यथार्थता या वैज्ञानिकता पर संशय रहता है और ये इतने विस्तृत होते हैं कि इनमें प्रत्यक्षवादी पद्धति का प्रयोग पूर्णत: नहीं किया जा सकता है।

   उदाहरणस्वरूप, यदि हम पारसन्स के सिद्धान्त की चर्चा करें, जैसे सामाजिक व्यवस्था का सिद्धान्त। ये सिद्धान्त तथ्यों और आंकड़ों पर न आधारित होकर अनुभववाद पर आधारित होते हैं, अत: इनकी प्रामाणिकता संदेहात्मक है। यदि समाजशास्त्र में इस तरह के सिद्धान्तों का प्रयोग होगा तो समाजशास्त्र कभी विज्ञान नहीं बन पाएगा। क्योंकि इसमें वैज्ञानिक तथ्यों एवं आंकड़ों का अभाव होगा।

2. **सूक्ष्म सिद्धान्त** (Micro Theory)—इन सिद्धान्तों में तथ्यों एवं आंकड़ों का प्रयोग तो होता है, लेकिन इन सिद्धान्तों की सूक्ष्मता के कारण अपेक्षित सामान्य एवं सार्वभौमिक जानकारी प्राप्त ही नहीं हो पाती है। यह स्पष्ट है कि आंकड़ों की सूक्ष्मता के कारण उनमें तथ्यों एवं आंकड़ों का प्रयोग तो हो जाएगा, परन्तु उनके माध्यम से सामान्य जानकारी नहीं प्राप्त होगी। इसीलिए मर्टन समाजशास्त्र में मध्य स्तर के सिद्धान्त के प्रयोग के पक्षधर हैं, यदि मध्य स्तर के सिद्धान्तों में तथ्यों एवं आंकड़ों का प्रयोग किया जाए तो वह स्वत: विज्ञान बन जाएगा। उदाहरण के लिए हम दुर्खीम के आत्महत्या का सिद्धान्त तथा वेबर का प्रोटेस्टेण्ट धर्म से पूँजीवाद के विकास का सिद्धान्त इस सिद्धान्त के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार इसे मर्टन कहते है, 'मध्य सीमा सिद्धान्त वे सिद्धान्त हैं, जो कि एक ओर दिन-प्रतिदिन के अनुसंधान में प्रचुर मात्रा में प्रकट होने वाली लघु परन्तु कार्यवाहक उपकल्पनाओं एवं दूसरी ओर सामाजिक व्यवहार, सामाजिक संगठन व सामाजिक परिवर्तन में समस्त अवलोकित समानताओं की व्याख्या करने वाले एक समन्वित सिद्धान्त को विकसित करने हेतु व्यवस्थित प्रयासों के मध्य स्थित होते हैं।' राबर्ट किंग मर्टन के अनुसार समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को महत्त्वपूर्ण रूप से आगे बढ़ाना चाहिए, जो कि निम्नांकित हैं—

   (i) उन परिकल्पनाओं की, जिनकी जांच आनुभविक रूप से की जा सकती है, उनकी खोज के लिए विशेष सिद्धान्तों को विकसित किया जा सकता है।

   (ii) एक ऐसी अधिक सामान्य तथा प्रगतिशील वैचारिक योजना विकसित की जानी चाहिए जो कि पर्याप्त हो तथा विशेष सिद्धान्तों के समूहों को समेकित करें।

TOUCH 'n PASS

मध्य सीमा सिद्धान्त की प्रकृति एवं विशेषताएँ (Nature and Characteristics of Middle Range Theory)

मध्य सीमा सिद्धान्त की प्रकृति एवं विशेषताओं को निम्नांकित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

1. चूँकि सामाजिक विज्ञानों में वृहद सिद्धान्तों का निर्माण करना कठिन है और सूक्ष्म सिद्धान्तों में सिद्धान्त के अनेक लक्षण पाए ही नहीं जाते है। इसलिए समाजशास्त्र के अध्ययन में मध्य-सीमा सिद्धान्त का प्रयोग अत्यन्त उपयोगी है।
2. मध्य सीमा सिद्धान्त समाज की विशिष्ट व नियन्त्रित इकाइयों से प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्धित होती है।
3. मध्य सीमा सिद्धान्त विभिन्न समाजशास्त्रीय विचारों से तादात्म्य रखते हैं।
4. मध्य सीमा सिद्धान्त का प्रायोगिक (प्रयोगसिद्ध या आनुभाविक) परीक्षण किया जा सकता है। क्योंकि ये अवलोकित तथ्यों के अधिक निकट होते हैं।
5. ये सिद्धान्त सामाजिक घटनाओं के सीमित पहलुओं से ही सम्बन्धित होते हैं।
6. मध्य सीमा सिद्धान्त वृहत् सिद्धान्तों की तुलना में कम उलझे हुए होते हैं।
7. मध्य-सीमा सिद्धान्त का आधार सूक्ष्म व वृहत् अध्ययनों के मध्य की श्रेणी के अध्ययन होते हैं, इसलिए इनका दृष्टिकोण समन्वित होता है।
8. मध्य-सीमा सिद्धान्त की संदर्भ संरचना बहुत सीमित होती है तथा ये सिद्धान्त अधिक विशिष्ट होते हैं।
9. मध्य-सीमा सिद्धान्त पृथक न होकर बल्कि सिद्धान्त के विस्तृत कुल केन्द्रों में समाहित होते हैं, जैसे कि महत्त्वाकांक्षा स्तर, संदर्भ समूह तथा अवसर संरचना सिद्धान्त द्वारा प्रदर्शित होता है।
10. ये सिद्धान्त सीमित अनुमानों के समूहों या युग्मों से बने होते हैं, जिनमें तार्किक आधार पर परिकल्पनाएँ निगमित तथा आनुभविक अन्वेषणाओं द्वारा सत्यापित होती हैं।
11. मध्य-सीमा सिद्धान्त को गोल्डनर, हिलेरी, हॉकिन्स, सेल्जनिक आदि विद्वानों ने सामाजिक विज्ञानों में अधिक यथार्थ एवं उपयोगी बताया है।
12. मध्य-सीमा सिद्धान्त वृहद् एवं लघु समाजशास्त्रीय समस्याओं के अन्तर को समाप्त कर देते हैं।
13. मध्य-सीमा सिद्धान्त पर्याप्त मात्रा में सूक्ष्म होते हैं, जिससे सामाजिक व्यवहार तथा सामाजिक संरचना के विभिन्न स्तरों का वर्णन किया जा सके। जैसे कि नृजातीय तथा प्रजातीय संघर्ष, वर्ग संघर्ष तथा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के विश्लेषण हेतु सामाजिक संघर्ष सिद्धान्त का प्रयोग किया जाना।
14. पारसन्स का 'व्यवस्था विश्लेषण', मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद तथा सोरोकिन की समन्वित समाजशास्त्र सामान्य सैद्धान्तिक उन्मेष को व्यक्त करते हैं।
15. उपर्युक्त के परिणामस्वरूप अनेक मध्य सीमावर्ती सिद्धान्त विभिन्न समाजशास्त्रीय विचारों से तादात्म्य स्थापित करते हैं।

मध्य-सीमा सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Middle Range Theory)

परवर्ती समाजशास्त्रियों ने मर्टन के मध्य सीमा सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि मर्टन का मध्यस्तर कहाँ है? ये वह निश्चित नहीं कर पाए। उन्होंने सिद्धान्त नहीं दिया बल्कि वैज्ञानिक सिद्धान्तों की सीमा निर्धारित कर दी। वीरस्टीड ने भी इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया है, जिसके सम्बन्ध में मर्टन ने दो सम्भावित कारण बताए हैं—

1. अभी यह सिद्धान्त बहुत नवीन है।
2. वीरस्टीड यह मान लेते हैं, कि मध्य-सीमा सिद्धान्त, वृहद् सिद्धान्त को पूर्णरूप से अस्वीकृत करता है।

परन्तु यह मानना भी उचित नहीं होगा क्योंकि मध्य-सीमा सिद्धान्त वृहद् सिद्धान्त के लिए आधार प्रस्तुत कर सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

मर्टन का विचार था कि समाजशास्त्र के क्षेत्र में ऐसे सार्थक सिद्धान्तों की रचना की जाए जिनका आनुभविक परीक्षण किया जा सके। इसके लिए उन्होंने सूक्ष्म सिद्धान्त और अमूर्त अनुभववाद के मध्य का मार्ग अपनाया और मध्य सीमा सिद्धान्त के प्रयोग का सुझाव दिया। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भले ही मर्टन के इस सिद्धान्त की कितनी भी आलोचना क्यों न हुई हो लेकिन सामाजिक विज्ञानों में इनके सिद्धान्त की प्रासंगिकता से इनकार नहीं किया जा सकता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. मर्टन का संरचनात्मक-प्रकार्यवादी दृष्टिकोण क्या है? प्रकार्य के स्वरूपों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
What is the structural functional approach of Marton? Describe the forms of function in detail.

उत्तर

मर्टन का संरचनात्मक-प्रकार्यवादी दृष्टिकोण
(Merton's Structural Functional Approach)

प्रकार्यवाद के सम्बन्ध में कई विद्वानों ने अपने विचारों को व्यक्त किया है। इनमें से एक विद्वान राबर्ट के. मर्टन भी थे। मर्टन अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि प्रकार्यवादी विश्लेषण एक सर्वाधिक आशाजनक परन्तु साथ ही सम्भवत: सबसे कम विधिबद्ध प्रणाली है जो कि समस्याओं की आधुनिक समाजशास्त्रीय प्रणाली है। प्रकार्यवाद का विकास एक साथ अनेक बौद्धिक क्षेत्रों में हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि इसका खण्ड विस्तार तो हुआ परन्तु यह अपने गहन विस्तार से वंचित रहा है।

राबर्ट के० मर्टन ने प्रकार्यवाद के सिद्धान्त का विश्लेषण एवं विस्तृत व्याख्या अपनी पुस्तक 'Social Theory and Social Structure' में प्रस्तुत की है। उन्होंने प्रकार्यवादी विश्लेषण की अवधारणा को मैलिनोवस्की (Bronislaw Malinowski) एवं रेडक्लिक ब्राउन (Radcliffe Brown) से ग्रहण की है। मर्टन ने प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण को नये रूप में प्रस्तुत किया है। मर्टन के अनुसार प्रकार्यवाद या प्रकार्यात्मक पद्धति शाब्दिक भ्रम से युक्त रहा है। जैसे—कई बार एक शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता रहा है तथा कई बार एक ही अर्थ हेतु अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है।

मर्टन ने प्रकार्य शब्द को पाँच अलग-अलग अर्थों में उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं—

1. **उत्सव, सभा के रूप में प्रकार्य**—विवाह, धार्मिक आयोजन या विद्यालयी वार्षिकोत्सव आदि सार्वजनिक उत्सवों में उपयोग किया जाने वाला प्रकार्य/फंक्शन शब्द शामिल है।
2. **व्यवसाय के रूप में प्रकार्य**—प्रकार्य/फंक्शन शब्द का उपयोग व्यवसाय (Occupation) के समक्ष किया जाता है। मैक्स वेबर ने व्यवसाय की परिभाषा देते हुए इन्हीं अर्थों में प्रकार्य शब्द का प्रयोग किया है।
3. **स्थिति से संबंधित क्रियाओं के रूप में प्रकार्य**—सामान्यत: जब प्रकार्य शब्द का प्रयोग किसी स्थिति/पद से सम्बंधित क्रियाओं के सन्दर्भ में किया जाता है, तो यह स्थिति से सम्बन्धित प्रकार्य कहलाता है। हालाँकि यह व्यक्ति या पदासीन लोग ही प्रकार्य करते हैं, यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि अमूर्त वस्तुएँ जैसे- नियम, प्रथाएँ, विश्वास भी प्रकार्य करते हैं, इसलिए मर्टन इसका समर्थन नहीं करते हैं।
4. **गणितशास्त्रीय अर्थ में प्रकार्य**—लेवनीज ने सर्वप्रथम गणित में प्रकार्य शब्द का प्रयोग किया। प्रकार्य शब्द का प्रयोग एक चर का दूसरे चर से सम्बन्ध व्यक्त करने के लिए किया जाता है। मर्टन इस पक्ष से कुछ सीमा तक सहमत हैं।
5. **प्राणीशास्त्रीय प्रकार्य**—प्राणिशास्त्र में शरीर के संचालन में जो अंगों द्वारा योगदान दिया जाता है उसे प्रकार्य (Funtion) कहा जाता है। उदाहरण के लिए, यह फेफड़े का प्रकार्य है, यह हृदय का कार्य है आदि। समाजशास्त्री प्रकार्य को इसी अर्थ मे उपयुक्त मानते हैं। एक सामाजिक व्यवस्था का निर्माण कई इकाइयो, अंगों या तत्त्वों से होता है। सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के अनुकूलन या पोषण हेतु प्रत्येक इकाई जो कार्य करती है, वही प्रकार्य कहलाता है।

प्रकार्य के पाँचवें स्वरूप 'व्यवस्था को बनाए रखने में सहायक प्राणीशास्त्रीय या सामाजिक कार्य-कलापों के रूप में प्रकार्य को मर्टन ने अपने प्रकार्यवादी सिद्धान्त का आधार माना है।

प्रकार्य के स्वरूप (Forms of Function)

एक व्यवस्था विशेष के सामंजस्य को सम्भव बनाने वाले निरीक्षित परिणाम प्रकार्य (Function) कहलाते हैं। प्रकार्यात्मक विश्लेषण के सन्दर्भ में मर्टन ने प्रकार्य के दो स्वरूप बताए हैं—

1. प्रकट/व्यक्त प्रकार्य (Manifest Function)
2. परोक्ष/अव्यक्त प्रकार्य (Latent Function)

प्रकट प्रकार्य (Manifest Function)

व्यवस्था के सामंजस्य में अपना योगदान देने वाले तथा व्यवस्था में अंशग्रहण करने वालों के द्वारा मान्य तथा इच्छित निरीक्षित परिणाम प्रत्यक्ष / प्रकट या व्यक्त प्रकार्य कहलाते हैं।

मर्टन के अनुसार, 'प्रकट प्रकार्य प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाले वे परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था में अनुकूलन तथा समायोजन लाते हैं तथा जो उस व्यवस्था में सम्मिलित सदस्यों द्वारा मान्य तथा इच्छित होते हैं।'

ये प्रकार्य सदस्यों के द्वारा स्वीकार किए जाते हैं और स्पष्ट रूप से प्रकट एवं स्पष्ट होते हैं। यह कार्य किसी संस्था या दूसरी सामाजिक घटनाओं के सकारात्मक प्रभाव होते हैं जिनका प्रयोजन होता है और उन्हें शीघ्र पहचान लिया जाता है। 'इसके अतिरिक्त, ये सचेत और लाभकारी होते हैं। यह हमारे द्वारा अपेक्षित क्रिया का परिणाम है।

इसके अतिरिक्त, प्रकट कार्य सामाजिक क्रियाओं (मीडिया का प्रकट कार्य महत्त्वपूर्ण समाचारों की जनता को सूचित करना), नीतियों, नियमों, कानूनों और मानदंडों का एक उत्पाद होते हैं। परन्तु सामान्यत: उनकी चर्चा धर्म, शिक्षा, परिवार और मीडिया जैसी सामाजिक संस्थाओं के काम के परिणाम के रूप में की जाती हैं। सभी प्रकार की सामाजिक क्रियाओं के फलस्वरूप प्रकट कार्य उत्पन्न होते हैं। **उदाहरण**—एक विद्यालय का प्रकट प्रकार्य छात्रों को ज्ञान प्रदान करना है।

परोक्ष/अप्रकट प्रकार्य (Latent Function)

मर्टन के अनुसार, 'अप्रकट प्रकार्य वे परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था में समायोजन या अनुकूलन तो लाते हैं, किन्तु व्यवस्था के सदस्यों द्वारा न तो मान्य होते हैं और न इच्छित ही।'

यह प्रकार्य वे होते हैं जिनकी सदस्यों द्वारा न तो पहचान की जाती है या स्वीकार नही किये जाते है और न तो इच्छित होते है। वे प्रकार्य जिनकी पहचान न सदस्यों के द्वारा की जाती है और न ही ये स्वीकार किए जाते हैं। इन्हे अन्तर्हित प्रकार्य भी कहते हैं, इसके परिणाम दूरगामी हो सकते हैं, जिनकी कर्त्ता द्वारा इच्छा या कल्पना न की गई हो। अप्रकट प्रकार्य कहलाते हैं। ये प्रकार्य इच्छित नहीं होते हैं। अव्यक्त कार्य अभिप्रेत नही होते हैं। ये सामाजिक पैटर्न के परिणाम जो तुरंत स्पष्ट नहीं होते हैं। उदाहरण—विद्यालय में छात्रों को सामाजीकरण के अवसर प्रदान करना, छात्रों को नियमों का पालन करना सिखाना, और पाठ्यांतर गतिविधियाँ प्रदान करना शामिल है।

मर्टन के अनुसार, 'प्रकार्य शब्द का प्रयोग केवल उपर्युक्त पाँच अर्थों में नहीं अपितु एकाधिक अर्थों में प्रयोग किया जाता है।' लक्ष्य, प्रेरणा, उद्देश्य आदि के विकल्प के रूप में इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।

मर्टन के अनुसार, 'प्रातीतिक अनुभवों को प्रकार्य के स्वरूप में समझना सही नहीं होगा क्योंकि सामाजिक प्रकार्यों के 'निरीक्षणीय वैषयिक परिणाम होते हैं।'

मर्टन के द्वारा 'प्रकार्य' के दो आधारभूत अर्थों के विषय में बताया गया है—

1. प्रकार्य—एक सावयवी व्यवस्था के रूप में।
2. प्रकार्य—एक सावयवी व्यवस्था के अन्तर्गत किसी लक्ष्य, उद्देश्य आदि के परिणाम के रूप में।

प्रकार्यवादी सिद्धान्तों की तीन आधारभूत मान्यताएँ प्रचलित हैं, जो कि निम्न हैं—

1. सभी सामाजिक इकाइयाँ एक सामाजिक व्यवस्था में कुछ सकारात्मक प्रकार्यों को करती हैं।
2. सम्पूर्ण व्यवस्था के लिए प्रकार्य का कार्य यही इकाइयाँ करती हैं।
3. सामाजिक संरचना या व्यवस्था का अस्तित्व इन्हीं प्रकार्यों के आधार पर होता है।

मर्टन प्रकार्य की आधारभूत मान्यता को अस्वीकार कर देते हैं और उनके अनुसार समस्त सामाजिक इकाइयाँ केवल प्रकार्य ही करती हैं तथा सामाजिक व्यवस्था को बनाने में अपना योगदान देती हैं, यह दृष्टिकोण गलत है। मर्टन मानते है कि कुछ इकाइयाँ प्रकार्य के स्थान पर अकार्य करती है। यह अकार्य सामाजिक व्यवस्था को विघटित करने में योगदान दे सकता है। इस सन्दर्भ में मर्टन कहते हैं, 'वास्तविक स्थिति यह है कि कुछ सामाजिक इकाइयों के कार्य यदि प्रकार्यात्मक होते हैं, तो कुछ इकाइयों के कार्य अंशत: अकार्यात्मक, कुछ के नकार्यात्मक और कुछ के पूर्णत: अकार्यात्मक होते हैं।

अत: सामाजिक संरचना और व्यवस्था के अस्तित्व में निरन्तरता के लिए सभी इकाइयों के कार्य अनिवार्य नहीं होते हैं।'

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रकार्यवाद के प्रमुख प्रतिपादक रहे हैं–

(क) कार्ल मार्क्स (ख) दुर्खीम (ग) टालकॉट पारसन्स (घ) मैक्स वेबर

उत्तर (ग) टालकॉट पारसन्स

प्र.2. पारसन्स का जन्म किस वर्ष हुआ?

(क) 1902 (ख) 1905 (ग) 1906 (घ) 1908

उत्तर (क) 1902

प्र.3. सामाजिक क्रिया के तत्त्वों में शामिल हैं–
(क) कर्त्ता एवं परिस्थिति (ख) अभिप्रेरणा, साधन (ग) उद्देश्य/साध्य (घ) ये सभी
उत्तर (घ) ये सभी

प्र.4. टालकॉट पारसन्स की 'द स्ट्रक्चर ऑफ सोशल एक्शन' मूलरूप से प्रकाशित हुई थी–
(क) 1927 (ख) 1937 (ग) 1947 (घ) 1957
उत्तर (ख) 1937

प्र.5. 'द सोशल सिस्टम' (Ths Social System) 1951 किसकी प्रसिद्ध कृति है?
(क) इमाइल दुर्खीम (ख) मैक्स वेबर (ग) टालकॉट पारसन्स (घ) आर०के० मर्टन
उत्तर (ग) टालकॉट पारसन्स

प्र.6. आर०के० मर्टन हैं–
(क) संरचनावादी (ख) संरचनात्मक प्रकार्यवादी
(ग) संघर्ष सिद्धान्तवादी (घ) इंटक्शनिस्ट
उत्तर (ख) संरचनात्मक प्रकार्यवादी

प्र.7. मध्य सीमा किसने प्रतिपादित किया?
(क) मर्टन (ख) पारसन्स (ग) वेबर (घ) दुर्खीम
उत्तर (क) मर्टन

प्र.8. मर्टन किस देश के विचारक थे?
(क) अमेरिका (ख) फ्रांस (ग) इंग्लैण्ड (घ) जर्मनी
उत्तर (क) अमेरिका

प्र.9. निम्नांकित में से मर्टन ने किस एक सिद्धान्त को प्रस्तुत नहीं किया?
(क) प्रकार्यवाद का सिद्धान्त (ख) सन्दर्भ समूह का सिद्धान्त
(ग) धर्म का सिद्धान्त (घ) मध्य सीमा सिद्धान्त
उत्तर (ग) धर्म का सिद्धान्त

प्र.10. मर्टन का जन्म किस वर्ष हुआ?
(क) 1910 (ख) 1915 (ग) 1912 (घ) 1920
उत्तर (क) 1910

❑

TOUCH 'n PASS

- यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।
- इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अतः कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।
- इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप info@vidyauniversitypress.com पर भी ई-मेल कर सकते हैं।